कथा कहो उर्वशी

देवेन्द्र सत्यार्थी

कथा
कही
उर्वशी

कथा कहो उर्वशी

देवेन्द्र सत्यार्थी

राजकमल प्रकाशन

उन चट्टानों के नाम
जिन्हें किसी मूर्तिकार का
इन्तज़ार नहीं

गोपी बाबू [नवीन प्रेस, दिल्ली] ने बुद्धा के असन्तुष्ट शिष्यों की कथा सुनाकर इस उपन्यास की नींव डाली। और देवजी [राजकमल प्रकाशन, दिल्ली] ने इस आग्रह द्वारा कि जो भी स्याह-सफ़ेद करना है, पाण्डुलिपि में ही अन्तिम बार कर लें, यह कड़वा घूँट भरने की प्रेरणा दी।

कलकत्ता-निवासी सर्वश्री पृथिवीनाथ शास्त्री, जगदीश, गौरीशंकर भट्टाचार्य, सुभो ठाकुर, शरद देवड़ा, कृष्णाचार्य, दीनानाथ कश्यप और पूनमचन्द वैद ने कथा की रूपरेखा में अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये।

दिल्ली-निवासी सर्वश्री युगजीत नवलपुरी, क्षेमचन्द्र सुमन, देवकीनन्दन पालीवाल, 'साठ फुट ऊँचे इन्सान' विश्वनाथ दर्द और नगेन्द्र भट्टाचार्य ने अनेक अध्याय पढ़-सुनकर संकल्प, साधना और संस्कार की चिन्तन-धारा में हाथ बटाया।

नन्ददुलाल कुण्डु ने उड़ीसा की एक मूर्ति पर आधारित चित्र बनाया, जिससे प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में 'सिगनेचर ट्यून' का काम लिया गया है। बीरेन राही ने तीन खण्डों के लिए तीन मूर्तियों पर आधारित तीन चित्र तैयार किये। नरेन्द्र सेठी [ऐसोसिएटिड आर्टिस्टस, दिल्ली] ने आवरण चित्र बनाया।

तुम भी आ गई हो

अन्तिम पृष्ठों के प्रूफ पढ़कर मैंने अनेक यात्राओं की सहचारिणी अपनी रेखा से कहा, "चलो यह काम समाप्त हुआ।" पर प्रूफों की हालत देखी तो वह झुँझलाकर बोली, "प्रेस वाले फिर चीखेंगे। यह काँट-छाँट की आदत कब छोड़ोगे?"

मैंने कहा, "कथाकार कथा नहीं कहता, स्वयं कथा ही कथाकार की कथा कहती है। कभी शब्द नहीं मिलते, कभी भाव नहीं बैठते। यही मुसीबत है।"

श्रीमती ने चुटकी ली, "तुम्हें लिखना नहीं आता, तो इससे अच्छा है कि तरखाना-लुहारा शुरू कर दो।"

मुझे याद आया व्यंग्य के इस शूल-भरे पथ पर कब से चलता आ रहा हूँ। अलका और पारुल—मेरी बच्चियों ने जहाँ गरम चाय और मीठी मुस्कान द्वारा मेरे काम में योग-दान दिया, वहाँ मेरे अतीत को रूपायित करते हुए मेरे खुल खेलने के स्वभाव को भी जीवित रखा और बड़ी कन्या कविता वसुमती ने इस बार भी जहाँ पाण्डुलिपि को साथ-साथ पढ़कर कृति में कृतिकार का विश्वास संजोये रखा, वहाँ मधुर प्रोत्साहन द्वारा माँ के तानों की कड़वाहट से भी मेरे मस्तिष्क को मुक्त

कर दिया ।

श्रीमती ने कहा, "जब तक तुम एक ही चीज़ को बार-बार लिखने की आदत छोड़कर पूरे विश्वास से काम नहीं लेते, बात नहीं बनेगी ।"

मैंने कहा, "शब्द मेरी भुजाएँ हैं और भाव मेरे प्राण । या यह समझो, शब्द घोड़े हैं और भाव शहसवार । दोनों की खोज में रहता हूँ । कभी तो रचना का अश्वमेध घोड़ा मुझे चक्रवर्ती बना ही देगा ।"

श्रीमती ने हँसकर कहा, "तुम चक्रवर्ती बन चुके ! तुम्हारे किसी उपन्यास का दूसरा संस्करण भी छपा ?"

मैंने कहा, "शायद 'कथा कहो उर्वशी' का दूसरा संस्करण भी छपे । पर पहला संस्करण तो निकलने दो । इस पत्रिका में सूचना छपी है कि मास्को के पाण्डुलिपि विभाग में टालस्टाय के हस्त-लिखित पृष्ठों की संख्या एक लाख अस्सी हज़ार से ऊपर होगी ।"

श्रीमती बोली, "तुम भी तो लिख-लिखकर कागज़ काले करते रहते हो । उनकी संख्या कहाँ तक पहुँची होगी !"

मैंने कहा, "यहाँ लिखा है कि मास्को म्यूज़ियम में टालस्टॉय के 'युद्ध और शान्ति' के आरम्भ के १५ रूप, 'पुनर्जीवन' के ११ रूप और इतने ही 'ऐना करेनीना' के आरम्भ के रूप सुरक्षित हैं ।"

श्रीमती झुँझलाई, "एक ही चीज़ को बार-बार लिखते रहना तो समय नष्ट करने के सिवा कुछ नहीं ।"

मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, "पूरी बात तो सुन लो । टालस्टाय ने 'पुनर्जीवन' की नायिका कातयूशा मासलोवा का चौदह पंक्तियों वाला वक्तव्य बीस बार लिखा था । और सुनो, मास्को म्यूज़ियम में टालस्टाय की एक सौ से अधिक डायरियाँ और नोट बुकें सँभाल कर रखी हैं ।"

"तुम्हारे काले किये हुए कागज़ तो किसी म्यूज़ियम में जाने से रहे !" श्रीमती हँस पड़ी, "तुम ऐसी चीज़ क्यों नहीं लिखते जो ख़ूब बिक सके ?"

मैंने कहा, "शायद मैं वह नहीं लिख पाता, जो लोग चाहते हैं । मैं तो वह लिखता हूँ, जो मैं स्वयं चाहता हूँ ।"

"तो तब तक चूल्हा ठण्डा रहेगा ?" व्यंग्य का तीर मेरे सीने पर आ लगा।

मैंने कहा, "टालस्टाय ने अपनी अन्तिम पंक्तियाँ मृत्यु से चार दिन पहले अस्तापोवो रेलवे स्टेशन से लिखी थीं, जब वे पत्नी की जली-कटी बातों से तंग आकर घर छोड़कर चले गये थे।"

"बस इतनी कसर और रहती है।" श्रीमती भी चुप न रह सकी, 'फिर तो तुम भी शायद एक-न-एक दिन टालस्टाय बन ही जाओगे।"

उस समय मैंने श्रीमती को उसी उर्वशी के रूप में देखा, जिस में 'कथा कहो उर्वशी' के नायक ने अपनी श्रीमती को देखा था। वह बोली, "टालस्टाय बनने के सपने छोड़ो, और सो जाओ।"

मैंने कहा, "सोऊँगा तो सपने और भी सतायेंगे।"

मुझे नींद नहीं आ रही थी। नींद की प्रतीक्षा में मैं सोचने लगा—कल फिर सूरज उगेगा और मेरी खिड़की के शीशे से भीतर झाँकेगा। कल फिर अखबार की कोई-न-कोई खबर मेरी किसी रचना में प्यार और दर्द भर देगी। कल फिर शब्दों के घोड़े दौड़ पड़ेंगे, भावों के शहसवारों को लेकर। कल फिर जाने किस-किस आवाज़ की गूँज मुझ तक पहुँचेगी, जैसे रेडियो पर देश-देश का संगीत सुनने को मिल जाता है। और मैंने अपनी उर्वशी से कहा, "मैं इस उपन्यास का नायक तो न बन सका, पर कहीं मैंने अपना वह रूप अवश्य छिपा रखा है। इस में तुम भी आ गई हो।"

मैंने आँखें मूँद लीं। श्रीमती शायद पहले ही सो चुकी थी।

५ जनवरी, १९६१

—देवेन्द्र सत्यार्थी

मूर्ति तो चट्टान में स्वयं प्रकृति ने ही बना रखी होती है। मूर्तिकार तो बस अपनी छेनी द्वारा अनावश्यक अंश छील कर मूर्ति को निरावरण कर देता है।

—माईकेल एंजेलो

जगन्नाथ का रथ

'कथा कहो उर्वशी' की पृष्ठभूमि है उड़ीसा का धौली गाँव। इस उपन्यास की भी वही बात समझिए—कभी नाव माँझी पर तो कभी माँझी नाव पर। पतवार तो माँझी के हाथ में ही रहनी चाहिए।

पहली बार जब मैंने धौली की यात्रा की तो तेईस वर्ष पूरे करके चौबीसवें में प्रवेश कर रहा था। आठ वर्ष पश्चात् दूसरी बार धौली गया। फिर पिछले साल धौली की तीसरी यात्रा की तो इक्यावनवाँ चल रहा था। तब तक इस उपन्यास की रूपरेखा बन चुकी थी। फिर भी धौली देखने की लालसा बनी ही रही।

बंगला लोक-साहित्य की एक उलटबाँसी है :

ऊपरे बाजे मेघ दुमदुमी, बामुणी नाचे सेंटे।
मरा मेये आहार करे, अजन्मा तार पेटे॥

[ऊपर मेघ-दुंदुभि बज रही है, नीचे ब्राह्मणी नाच रही है डटकर खाने के बाद। मरी हुई कन्या आहार कर रही है, जो अजन्मा है वह उसके पेट में है।]

यह उपन्यास लिखने की समस्या भी कुछ-कुछ ऐसी ही थी।

धौली की प्रसिद्धि अश्वत्थामा शिला के कारण है, जिस पर अशोक

की राजाज्ञा अंकित है। यह वही राजाज्ञा है, जिसमें कलिंग-युद्ध के पश्चात् 'देवानां प्रिय' ने घोषणा की थी कि अब वे कभी युद्ध नहीं करेंगे और शान्ति तथा अहिंसा के व्रती बने रहेंगे।

तीसरी धौली-यात्रा में उड़ीसा सरकार के टूरिस्ट विभाग के रथ बाबू और बम्बई से आये मेरे मित्र रतनलाल जोशी साथ थे। अश्वत्थामा धौली से एक मील है। अश्वत्थामा के रास्ते में एक उड़िया युवक हमारा मार्ग-दर्शक बन गया। उसने बताया कि हर शनिवार को ठीक सन्ध्या-समय अश्वत्थामा के पास एक आलोक दिखाई देता है। अश्वत्थामा पहुँचकर हमने इस शिला के ऊपरी भाग पर बना हाथी-मुख देखा। रथ बाबू और जोशीजी के लिए एकदम अशोककालीन इतिहास में खो जाने की बात थी, क्योंकि उन्होंने अश्वत्थामा शिला पहली बार देखी थी। मैं भी बाल-सुलभ कौतूहल से देखता रह गया, जैसे पहली दो यात्राओं की स्मृति तनिक भी साथ नहीं दे रही हो। हम शिलालेख पर हाथ फेरते रहे। वह युग बहुत पीछे छूट गया था, जब 'देवानां प्रिय' के आदेश पर उनकी राजाज्ञा का प्रत्येक शब्द ब्राह्मी लिपि में पत्थर पर छेनी से अंकित किया गया था। हम चारों ब्राह्मी लिपि से अनभिज्ञ थे। वह पुस्तक भुवनेश्वर में छूट गई थी, जिसमें अशोक की राजाज्ञाओं का देवनागरी लिप्यान्तर और अंग्रेज़ी अनुवाद उपलब्ध था।

मुझे शिलालेख पर हाथ फेरते देखकर वह उड़िया युवक बोला, "श्रीमान्, यहाँ हर रविवार को बहुत-से लोग आते हैं, पर यहाँ आकर कोई भी यह लेख पढ़ नहीं पाता।"

धौलगिरि के कारण यह गाँव धौली कहलाता है। धौलगिरि कोई बहुत ऊँची पहाड़ी नहीं है। इस पर बेंत की भरमार है, जो अपने मौसम में तीस-चालीस फुट ऊँचा उठ जाता है। पहाड़ी के चरण-स्थल में एक शिव-मन्दिर अच्छी अवस्था में है, जिसका द्वार उत्तर दिशा में खुलता है। पर धौलगिरि का शिखर-स्थित मन्दिर तो थोड़ा-सा ही बचा रह गया है। उसे परजीवी पेड़ों ने नष्ट कर डाला। रथ बाबू कह रहे थे, "बहुत-से

टूरिस्ट तो हमारे विभाग से अश्वत्थामा का फोटो लेकर ही धौली आने के झमेले से बच जाते हैं। उन्हें बताना पड़ता है कि अश्वत्थामा तक जीप के योग्य सड़क नहीं है। मैं स्वयं भी तो पहली बार धौली आया हूँ।"

जोशीजी बोले, "फोटोग्राफी से तो काम नहीं चलेगा। उपन्यासकार को तो चित्रकार वाली दृष्टि रखनी होगी। और देखिए, उपन्यास तो जगन्नाथ का रथ है, जिसे बहुत से प्राणी मिलकर खींचते हैं।"

धौलगिरि के शिखर पर हमें नीचे बहती दया नदी का दृश्य बहुत सुन्दर लगा। पर गाँव में पहुँचे तो जोशीजी को यह बहुत ही छोटा प्रतीत हुआ। मैंने कहा, "यहाँ कल्पना से नई बस्ती बसानी होगी।"

गाँव में कई जगह लोगों ने कहा कि यहीं रात गुज़ारें। एक वयोवृद्ध सज्जन बोले, "हमारा अहोभाग्य, जो आप पधारे! कहाँ दिल्ली, कहाँ धौली!"

हमारे दायें हाथ अमराई से इधर बाँस-कुञ्ज भला लग रहा था, बायें हाथ पहले केवड़े के पौधे आये, फिर नागफनी की कतार। ऐसा लग रहा था मानो ताल वृक्ष गाँव के प्रहरी बने खड़े हों। रथ बाबू कह रहे थे, "नारियल यहाँ नहीं हैं, सागर दूर है, और नारियल के लिए चाहिए रेतीली ज़मीन।"

हम दया नदी के पुल की ओर जा रहे थे। पीछे मुड़कर गाँव पर नज़र डाली तो सूर्यास्त के कारण गगन रक्ताभ हो उठा था। आगे कुछ मछुआरे जाल उठाये आ रहे थे। वे न जाने किस प्रसंग पर हँस रहे थे। जोशीजी बोले, "लगता है, बहुत मछलियाँ हाथ लगी हैं। दया नदी तो इन पर दयावान होगी ही।"

आज भी लगता है, मछुआरों की टोली जाल उठाये धौली की ओर जा रही है और उड़िया गीत की स्वर-लहरी थिरक रही है, जैसे दूर से गाँव के मन्दिर से आती आरती के घण्टे की आवाज उस गीत में ताल दे रही हो। और जैसे गीत का वह बोल आज भी उत्तर न पा सका हो—मछली, ओ री मछली, तेरी माई कहाँ गई? जाल देखकर कहाँ जा छिपे

तेरे गूँगे-बहरे प्राण ?···

और कथा की मछली भी मछुआरे के जाल में नहीं आ रही थी।

धौली से लौटकर बहुत दिन तो यही मुश्किल रही कि धौली का बाह्य रूप ही सामने आने लगता। मुझे कैन्वेस पर कल्पना के रंग उभारने के लिए नई ज़मीन चाहिए थी। कभी मैं सोचता—धौली की तीसरी यात्रा की ही क्यों ? मन से पूछता—आखिर मैं क्या लाया ?

जहाँ भी बैठता, कथा के पात्र बनने-मिटने लगते। कई बार लगता, जाल भारी हो रहा है। निकालता तो पानी निकल जाता और मछलियों के दर्शन न होते, जैसे जाल फट गया हो। पुराने जाल की मरम्मत पर ही जैसे घण्टों बीत जाते। सोचता—कथा क्या बस कथा ही होती है ? पत्थर देवता का रूप कैसे लेता है ? कभी ऐसा प्रतीत होता कि जिस उर्वशी के चक्कर में हूँ, उसकी तो हड्डियाँ भी स्वर्ग में ही मिलें तो मिलें। केवड़े के फूल याद आते, जो काँटों और पत्तों में छिपे-छिपे महक बिखेरते हैं। कान में केवड़े की बात कहने वाली हवा तो बहुत पीछे रह गई थी। कहाँ धौली, कहाँ दिल्ली !

फिर देखा, यह दूरी ही वरदान बनती जा रही है।

मन को समझाया—पगले, इस दूरी से लाभ उठा ! अलगाव के बिना कब रचना हो सकी ! किसी की निकटता हमें किसी उपन्यास की प्रेरणा तो दे सकती है, पर उसकी पूर्ति के लिए अपेक्षा के बिना काम नहीं चलता। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता कि मन्दिर के अँधेरे कोने में टार्च की रोशनी डालकर कोई खोयी हुई वस्तु ढूँढ रहा हूँ। सपने में कोणार्क का सूर्य-मन्दिर गतिमान प्रतीत होता। फिर यह आग्रह भी छोड़ना पड़ा कि पात्रों का मूल्यांकन अपने आकार के अनुसार ही किया जाए। कोई-कोई पात्र तो बाँहें फैलाकर मानो धरती और आकाश को एक साथ समेटने की चेष्टा करने लगता। यह था एक साधक का लेखा-जोखा। वही लोक-गायक वाली बात कि जब मन का पंछी गाने लगे तो बोलो नहीं, बस चुपके-चुपके बात गुनो।

पुरी के वयोवृद्ध मूर्तिकार अपरति महापात्र की याद तो बहुत बार आई। वे पुरी की जिस मूर्तिशाला में काम कर रहे थे, वह पुरी के गवर्नमेंट एम्पोरियम की ओर से चलाई जा रही थी। अपरति दादा ने अपनी बात जैसी भाषा में कही, मैंने उन्हीं के शब्दों में उसे हू-ब-हू डायरी में उतार लिया था।

अपनी बात आरम्भ करते हुए अपरति महापात्र बोले, "अभी हमको चौंसठ हो गया। बाबा भी एई काम करता है, और लड़का हरिहर भी। ई बैठा है हरिहर। एक और ठो लड़का है घर में—भास्कर।"

मैंने कहा, "यह पत्थर कहाँ से आया, दादा ?"

"ए पत्थर दिल्ली से आया। ऑफ़िसर बाबू लाया।" अपरति महापात्र ने छेनी के ताल पर उत्तर दिया।

मैंने कहा, "दिल्ली का पत्थर क्यों लाते हैं ?"

"जो ऑफ़िसर बाबू मँगवा दिया," अपरति महापात्र ने हँसकर कहा, "दिल्ली का पत्थर बहुत 'टाणा' [कड़ा] होता है।" और फिर वे गम्भीर होकर बोले, "नारायणगढ़ [पुरी ज़िला] का लाल पत्थर कमती टाणा है। इसमें सफ़ेद 'टिपटिप' [धब्बा] बहुत है। दिल्ली का पत्थर में सफ़ेद टिपटिप नहीं होता। ओ एक जात है, एक बराबर है।"

मैंने कहा, "दादा, यह लाल पत्थर दिल्ली का नहीं, जयपुर का है। ख़ैर आप लोगों को कोई कठिनाई तो नहीं है ?"

अपरति महापात्र ने मेरी ओर बड़ी पैनी दृष्टि से देखा। थोड़ी ख़ामोशी के बाद बोले, "छः-सात वर्ष हुआ, सरकार ए डिपार्टमंट खोल दिया। पहले हम लोग बाज़ार में मूर्ति देता था। कोई-कोई का ऑर्डर होता था। आगे काम भी कम था, पत्थर का दाम भी कम था। मजूरी भी कम था। अभी तो मँहगाई बहुत हो गया। चार रुपया, पाँच रुपया रोज़ का मिलता है, फिर भी गुज़र नहीं होता। एई सरकारी एम्पोरियम में भी काम होता है और पुरी का पाथुरिया साही [गली] में घर पर भी काम करता है कारीगर लोग। हमारे उड़ीसा में पत्थर का काम मरने नहीं सकता। महाप्रभु की

दया है।"

"मूर्ति की कीमत कैसे आँकते हैं, दादा ?" मैंने पूछ लिया।

"बीस इंच ऊँची मूर्ति के लिए पत्थर का हो गया दस रुपया।" अपरति महापात्र हिसाब बताने लगे, "बीस दिन में मूर्ति बनेगा। उसका सौ रुपया। सौ और दस, एक सौ दस। अपना काम तो नहीं है, सरकार का काम करते हैं। ग्यारह बजे आता, पाँच बजे चला जाता।"

"घर में करने से एक सौ दस वाली मूर्ति कितने में मिलेगी, दादा ?"

"दस का पत्थर, सत्तर मजूरी। अस्सी में देगा।"

मैंने कहा, "जानते हैं, दादा ! यहाँ एम्पोरियम में एक सौ दस में मिलने वाली मूर्ति दिल्ली पहुँचने पर डेढ़ सौ की हो जाएगी।"

अपरति महापात्र हाथ की मूर्ति पर छेनी चलाते हुए बोले, "हम क्या करेगा, बाबू ? अपना काम तो नहीं है, सरकार का काम है।"

मैंने प्रसंग बदलकर कहा, "एक बात पूछूँ, दादा ? आपके बाप-दादे तो मन से मूर्ति गढ़ते थे, और आप केवल पुरानी मूर्ति का फोटो देखकर पत्थर में उसकी नकल उतारते ही छुट्टी पा जाते हैं।"

अपरति महापात्र को जैसे मेरी बात चुभ गई। बोले, "हमारे पास यह सोचने का समय नहीं रहता। आॅफ़िसर बाबू का हुकम है। आॅफ़िसर बाबू बोलता—ए कलकत्ता का आॅर्डर आया, ए बम्बई का, मद्रास का, बनारस का, दिल्ली का। हमको तो हुकम नहीं कि मन से बनाओ। मन का आॅर्डर होगा, तो वह भी बनाने सकता। पर मन का आॅर्डर होने से पहले पेट का आॅर्डर हो जाता है। विकट समस्या है, बाबू !"

मैंने कहा, "कहते हैं न दादा, कि पत्थर में ब्रह्मा प्राण डाल देते हैं। इसका क्या मतलब ?"

अपरति महापात्र गम्भीर होकर बोले, "मन-माफ़िक काम होने से मूर्ति में प्राण आने सकता। जैसा कारीगर होगा, वैसा प्राण डालेगा। ब्रह्मा कहाँ से आ गया ? पाथुरिया ही मूर्ति का ब्रह्मा है।"

फिर हम चुप हो गए, जैसे हमारे सब प्रश्नोत्तर शेष हो गए। इतने

में अपरति के पुत्र हरिहर ने अपनी बात छेड़ दी, "कभी-कभी कारीगर से, काम करते समय, मूर्ति भाँग जाता है, बाबू ! भाँगा हुआ मूर्ति बहुत पड़ा है।"

मैंने कहा, "टूटी हुई मूर्ति को तो निर्जीव समझो। उसमें प्राण कहाँ से पड़ेंगे ! यह बताओ, मूर्ति टूटने से ऑफ़िसर बाबू नाराज़ तो नहीं होते हैं ?"

हरिहर ने मुँह बनाकर कहा, "हमारा मेहनत गया, बाबू का पत्थर गया। बाबू का नाराज़ होने का तो कोनो मतलब नहीं।"

अपरति ने हरिहर को डाँटते हुए कहा, "ऐसा बात क्यों बोलता है, हरिहर ? अरे हम इससे भी जायेगा !" और फिर उसने छैनी-हथौड़ी रखकर आकाश की ओर हाथ उठाते हुए कहा, "महाप्रभु ! जगन्नाथ स्वामी ! नयन-पथ-गामी !"

इस बात को बहुत दिन हो गए। आज भी जैसे अपरति महापात्र की आवाज़ कान में आ रही हो—"मन-माफ़िक काम होने से पत्थर में प्राण आने सकता।..."

अपरति महापात्र ने बताया था कि उड़ीसा के श्यामवर्ण 'मुगनी' पत्थर का अपना स्वभाव है, जिसे समझे बिना उसे ठीक माध्यम नहीं बनाया जा सकता। उन्होंने शिकायत की थी कि आज के पाथुरिया अपने बाप-दादों की अनुभूति के उत्तराधिकारी नहीं रहे। साथ ही उन्होंने कला-प्रेमियों की भी शिकायत की थी, जो अपना ऑर्डर भेजते समय किसी-न-किसी पुरानी मूर्ति की अनुकृति की ही माँग करते हैं और वे मूर्तिकला की प्रगति में तनिक भी बढ़ावा नहीं देते। और जब मैंने कहा, "क्या ऑफ़ि-सर बाबू ऐसी मूर्तियाँ बनाने की छूट नहीं दे सकते, जिनमें नई कल्पना, अनुभूति और संवेदना को स्थान मिल सके ?" तो वे बोले, "यह आप बोलो ऑफ़िसर बाबू से कि मन-माफ़िक मूर्ति होने से ही उसमें प्राण आ सकते हैं।"

सोचता हूँ, यह उपन्यास तो ठीक मन-माफ़िक लिखा जा सका है। भले ही कई बार पत्थर टूटा और नया मुगनी पत्थर लेना पड़ा। अब ऐसा लगता है कि मैंने न किसी ऑफ़िसर बाबू का पत्थर खराब किया और न

मूर्ति बिगड़ने दी। चलो. आज यह मूर्ति सम्पूर्ण हुई।

मैंने सोचा, अपरति दादा लाल जयपुरिया पत्थर से उड़ीसा की मूर्ति बना सकते हैं, तो मैं उड़ीसा से बाहर की भाषा में उड़ीसा की कथा क्यों नहीं लिख सकता?

कथा तभी कथा है, जब वह उदात्तीकरण की वाणी बने, और हर कथा अपनी भाषा और विचारधारा अपने साथ लाती है। आप भी चाहें तो धौली के वयोवृद्ध मूर्तिकार चतुर्मुख की तरह अश्वत्थामा के शिलालेख पर हाथ फेरते हुए कह सकते हैं, "हे सम्राट्, कलिंग के युद्ध में लाखों प्राणियों को मौत के घाट उतारकर आपको जिस अहिंसा और शान्ति के व्रती बनने की बात सूझी, वह क्या युद्ध से पहले नहीं सूझ सकती थी? तब तो इसका श्रेय आप ही को जाता। अब तो इस श्रेय के भागी वे लोग हैं जो मर गए। इस शिलालेख को तो आप ही ने महत्त्व दिया। पर इसकी महत्ता से तो आपको महान् होने का भ्रम न होना चाहिए।···"

चतुर्मुख के पीछे शताब्दियों की कला और संस्कृति का वरदान है। पर वे परम्परा की चट्टान को भी नूतन कल्पना, अनुभूति और संवेदना से तराशने की क्षमता रखते हैं। वे धौली की पाथुरिया गली को कभी नहीं छोड़ सकते। धौली एक छोटा-सा गाँव ही सही, पर उसकी पाथुरिया गली में किसी नीलकण्ठ और रूपम के आने की सम्भावना तो बनी ही रहेगी।

धौली की मूर्तिशाला में तो वही मूर्ति बनेगी, जिसमें आज के ब्रह्मा प्राण डाल सकें और जिसके सहारे जगन्नाथ का रथ आगे बढ़ेगा।

'कल्पना'
५ सी / ४६, रोहतक रोड, नई दिल्ली — **देवेन्द्र सत्यार्थी**
१४ सितम्बर, १९६०

संकल्प

उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई मूर्ति-कला की जाँच से पता चलता है कि उसमें स्थानीय विशेषताएँ होते हुए भी वह भारतीय संस्कृति की एकता की प्रतीक है।...

ईसा की पहली सदी में भारतीय मूर्ति-कला में एक अपूर्व घटना घटी जिसने भारतीय कला को एक नई गति दी। इस सदी में किसी अज्ञातनामा मूर्तिकार ने भगवान् बुद्ध की मूर्ति की रचना की। कुछ यूरोपीय विद्वानों का मत है कि इस मूर्ति का आदर्श कोई ग्रीक मूर्ति रही होगी, पर ऐसा सोचना ठीक नहीं है, क्योंकि ईसा पूर्व की बनी हुई यक्ष-मूर्तियों के आधार पर बुद्ध-मूर्तियों का सृजन अधिक सम्भव है। मथुरा की प्राचीन बुद्ध-मूर्तियों में हम यक्ष-मूर्तियों की विशालता और गंभीरता के साथ-ही-साथ एक नये आत्म-चिन्तन का भाव पाते हैं, पर यह आध्यात्मिक भाव इस काल में मनुष्योचित है, देवोचित नहीं।...कुशान-युग की बुद्ध-मूर्ति के निर्माण का उदाहरण लेकर हिंदू धर्मानुयायियों ने भी विष्णु, शिव तथा अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ गढ़ीं और अपने विश्वासों को मूर्त रूप दे डाला; इतना ही नहीं, गुप्त-युग में उत्तर और दक्षिण भारत में मूर्ति-शास्त्र लिखे गए और देवताओं के रूप विशेष लक्षणों के आधार पर स्थिर किये गए, सौन्दर्य की परिभाषा निश्चित की गई।...

...आठवीं सदी के बाद तेरहवीं सदी तक तो सारे भारत में मन्दिरों की बाढ़-सी आ गई तथा मन्दिर बनवाने वाले हिन्दू और जैन इस होड़ में लग गए कि उनमें से कौन बाजी मार ले जाय।...बुन्देलखण्ड से उड़ीसा तक फैली हुई इस युग की मूर्ति-कला में स्त्री-सौंदर्य और तन्त्रमार्गी यौनाचारों का हम नग्न दर्शन करते हैं।...

—डॉ० मोतीचन्द्र

"छेनी के घाव खाए बिना पत्थर देवता नहीं बनता। कुछ अंशों में पत्थर मूर्ति के अनुसार होता है, रूपक ! कुछ अंशों में मूर्ति पत्थर के अनुसार। भुवनेश्वर के काले मुगनी पत्थर का एक स्वभाव है, पुरी ज़िले के नारायणगढ़ के सफ़ेद धब्बों वाले लाल पत्थर का दूसरा।" कहते-कहते बूढ़े मूर्तिकार चतुर्मुख रुक गए। फिर रूपक से बोले, "अच्छा तो वैद्यजी की दुकान से खबर-कागज़ तो लेते आओ। शायद सात सागर तेरह नदियाँ पार की कोई खबर मिल जाए।"

रूपक चला गया। चतुर्मुख जाड़े की धूप तापते मूर्तिशाला के द्वार पर खड़े रहे। गली के उत्तरी छोर पर ऊँची चट्टान उन्हें अच्छी लगती है। भले ही आँखों पर चश्मा लगा है, पर उस चट्टान पर बनी अधूरी नारी-मूर्ति तो इतनी दूर से नज़र नहीं आ सकती।

रूपक ने अख़बार देते हुए कहा, "लो गुरुदेव !"

चतुर्मुख के दिल में खुशी उमड़ पड़ी। विचारशील ढंग से सिर हिलाकर रूपक की पीठ थपथपाते हुए बोले, "अन्दर चलकर काम शुरू करो। देखो मूर्ति शुरू करने से पहले पत्थर से पूछो—अच्छे तो हो, मित्र !"

"पत्थर की भाषा मुझे न जाने कब आयेगी, गुरुदेव ?" रूपक हँस

पड़ा, और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना अन्दर चला गया।

मुगनी पत्थर की बनी हुई है मूर्तिशाला। पूरब की ओर द्वार है। उत्तर और दक्षिण में खिड़कियाँ खुलती हैं। सामने बरामदा है। बरामदे के आगे बगिया, जिसमें सिंचाई के लिए कुआँ मौजूद है। बगिया की दीवार नारायणगढ़ के लाल पत्थर की है। उस पर द्वार के दोनों ओर रास-लीला के दृश्य अंकित हैं।

द्वार पर खड़े-खड़े चतुर्मुख चश्मे के पीछे घूरती आँखों से कोई सात सागर तेरह नदियाँ पार की खबर ढूंढ रहे हैं। मन मूर्ति में रमा है, जिस पर आज काम करना है।

पास से गुज़रते हुए जागरी ने कहा, "ख़बर-कागज़ में नीलकण्ठ की ख़बर नहीं मिलेगी, बाबा!"

"तुम किधर चले, जागरी?" चतुर्मुख मुस्कराये, "अच्छा जाओ। भुवनेश्वर के यात्री ही तुम्हारे अन्नदाता हैं। जाओ, हो आओ भुवनेश्वर!"

"आज तो मेरी छुट्टी है, बाबा!" जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "आज तो आपका सत्संग करूँगा। वैद्यजी के पास हो आऊँ ज़रा। उन्होंने बुलाया था।"

जागरी चला गया। चतुर्मुख ने उत्तरी छोर वाली चट्टान की ओर देखकर दक्षिणी छोर वाली चट्टान पर नज़रें जमा दीं, जिस पर किसी समय उनके मामा केलू काका ने ब्रह्मा की मूर्ति बनाई थी, और स्वयं उन्होंने विष्णु की मूर्ति बनाकर त्रिमूर्ति की ओर दूसरा कदम उठाया था। उनके दिल की एक-एक धड़कन गुनगुना उठी—महादेव की मूर्ति बनने पर त्रिमूर्ति पूरी हो जाएगी। नीलकण्ठ विलायत से लौटकर त्रिमूर्ति का संकल्प पूरा करेगा। मूर्तिशाला के भीतर आकर चतुर्मुख ने अखबार परे रख दिया और बाहर फैली हुई धूप की ओर देखकर बोले, "जाड़े की धूप का रंग ऐसा है जैसा कल की ब्याई गाय का दूध।"

"हाँ, गुरुदेव!" रूपक मुस्कराया, "वैसी ही पीली-पीली-सी है जाड़े की धूप।"

मूर्तिशाला में छोटी-बड़ी तीन-सौ से ऊपर मूर्तियाँ पड़ी हैं। इनसे कहीं अधिक मूर्तियाँ गाहक ले गए। खिड़कियाँ खुली हैं। छेनी की ठक-ठक में गुरु-शिष्य की बात बन्द नहीं होती। मूर्तियों पर धूल की तहें जमती चली गईं। कहीं-कहीं मकड़ी के जाले मुँह चिड़ा रहे हैं। यह सब देखकर चतुर्मुख मन-ही-मन हँसते हैं कि धूल और मकड़ी को यही जगह प्रिय है। मूर्तिशाला की सफ़ाई से भी कहीं अधिक नई मूर्ति की तराश का ध्यान रहता है। कितनी ही सफ़ाई करो, धूल आ जमती है, और मकड़ी भी ज़िद नहीं छोड़ती।

जिन मूर्तियों को गाहक ले गए, उनकी याद सताती है। चतुर्मुख बोले, "मेरी मूर्तियाँ जहाँ भी हैं, प्रसन्न रहें।"

"आजकल तो आप मूर्ति बेचते ही नहीं, गुरुदेव !" रूपक मुस्कराया, "मूर्ति-पर-मूर्ति चढ़ती चली जाती है, और मूर्तियों पर धूल की तहें। मूर्ति बेचना ही ठीक है। पैसा आये तो क्या बुरा है, गुरुदेव ?"

"अरे थोड़ी ज़मीन है अपनी। दाल-भात चल जाता है। फिर क्यों चिन्ता करें ? मूर्ति वैसे ही गढ़ी जाती है, जैसे शिशु माँ के गर्भ में शारीरिक रूप धारण करता है। इसलिए मूर्ति बेचते दुःख होता है। नीलकण्ठ को आने दो। मैं कहूँगा, अब तो तुम लोगों का युग है। उन्नासी बरस उमर भोग चुका। ऐसे ही इतने दिन बैठा रह गया। अब तो मुझे चल देना चाहिए।"

"ऐसा मत कहो, गुरुदेव ! मैं कहता हूँ, हमारी उमर भी आपको लग जाए।"

"अब तो जाना ही होगा, बेटा ! बस ज़रा नीलकण्ठ आकर त्रिमूर्ति पूरी कर दे।"

"नहीं, गुरुदेव ! आपकी कीर्ति तो अभी दूर-दूर फैलेगी।"

"कीर्ति की भी भली कही, बेटा! जस एक कोस, अपजस अठारह कोस। कीर्ति सिकुड़कर कितनी छोटी हो सकती है, फैल कर कितनी बड़ी ! कला तो वही है जो जागृत होकर मूर्तिमान् हो उठे जिसमें हमारी खोज अनुभव लेकर

आगे बढ़े। पत्थर पर छेनी चलती है, जैसे मन सपना देखता है, चुपके-चुपके। जैसे दूर से बजते घण्टे की आवाज़ धीमे स्वर में आती है, वैसे ही पहले के मूर्तिकारों की कथा याद आने लगती है। कीर्ति पर भी कोई क्या भरोसा करेगा ? आज है, कल नहीं। समय कीर्ति-कथा को क्षीण करता चला जाता है। कितने मूर्तिकार आये और चले गये। हमें किस-किसकी याद है ? काल-देवता तो बहुत-सी कला-कृतियों को भी समेट लेते हैं।"

"पर कला की महान् कृतियाँ तो कथा कहने को शेष रह जाती हैं, गुरुदेव !"

"अरे बेटा, गुड़ की मिठास मुँह तक ही रहती है।"

"पर आप ही तो कहा करते हैं, कथा दूर तक जाती है।"

"अरे बेटा, कितने ही लोग आये और गये। कुछ कहावतों में गुम हो गए, कुछ पहेलियों में पहेली बन गए। सबने बचपन में उड़ते हंसों का खेल खेला। सबने रेत के घर बनाये। सबने मछली से पूछा—बोल मेरी मछली, कित्ता पानी ? सबने कला की गहराई में उतरना चाहा। बेटा, अनेक कथाएँ मिलती हैं, अनेक दिशाओं से आकर, जैसे एक ही कथा में सब कथाएँ मुखरित होना चाहती हों।"

गली के उत्तरी छोर वाली चट्टान से कौशल्या पुखरी का पक्की सीढ़ियों वाला घाट पास पड़ता है। इस चट्टान की अधूरी नारी-मूर्ति की रेखाएँ किसी सिद्धहस्त शिल्पी की याद दिलाती हैं। कहते हैं, कोणार्क के महा-शिल्पी बिशु ने जीवन के अवसान-काल में यौवन की प्रेयसी की छवि अंकित करते प्राण त्याग दिए थे। आधी रात के बाद ठक-ठक सुनाई देती है, जैसे मूर्तिकार का प्रेत आकर छेनी चला रहा हो। पर अधूरी मूर्ति चिरकाल से वैसी-की-वैसी चली आ रही है। पूरी होने के लक्षण नहीं दीखते।

केलू काका ने किसी यात्री से माईकेल एंजेलो की यह सूक्ति सुन रखी थी : 'पत्थर में मूर्ति तो प्रकृति ने ही बना रखी होती है, मूर्तिकार तो बस अपनी छेनी द्वारा अनावश्यक अंश छीलकर मूर्ति को निरावरण कर देता है।'

इसी से प्रेरणा लेकर ब्रह्मा की मूर्ति बमायी गई। इसी से विष्णु की मूर्ति बनी।

चतुर्मुख का जन्म मयूरभंज में हुआ। वह नौ बरस के थे, जब उनके पिता मूर्तिकार उपेन मारे गए। महाराज से उपेन की ठन गई थी। महाराज उनकी बनायी हुई नटराज की मूर्ति माँगते थे। उपेन ने गड्ढा खोदकर मूर्ति छिपा दी। महाराज के आदमी आये और मूर्ति का पता न बताने पर उपेन की बहुत पिटाई की। मूर्ति तो न मिली, पर उपेन की मृत्यु हो गई। फिर धौली से केलू काका बहन और भानजे को लिवाने आये तो जाते समय उदारतापूर्वक वह मूर्ति महाराज को देते आए।

सत्तर बरस पहले की वह घटना चतुर्मुख के मन पर अंकित है।

भुवनेश्वर से दो-ढाई कोस होगा धौली। पास से दया नदी बहती है। जो लोग भुवनेश्वर आते हैं, धौली की यात्रा अवश्य करते हैं।

दूर से सुन्दर दीखता है धौलगिरि के शिखर वाला मन्दिर। उसके खण्डहर ही शेष रह गए हैं।

धौली की शोभा हैं ताल गाछ, जैसे सभा की शोभा पंच परमेश्वर होता है और गोठ की शोभा दुधारू गाय। बन्धु को सुन्दर बनाती है दूरी, जैसे सागर-तट की शोभा है लहरों का आलिंगन।

धौलगिरि के चरण-स्थल में, गाँव से आध-एक कोस हटकर, ऊँची जगह पर स्थित है अश्वत्थामा चट्टान, जिसके ऊपरी सिरे पर हाथी का मस्तक बना है, और नीचे इसे छेनी से समतल करके कलिंग की हार होने पर अशोक ने राजाज्ञा अंकित कराई थी।

"असली धौलगिरि तो नेपाल में है, छब्बीस हज़ार फुट से भी ऊँचा!" कोई-कोई यात्री कह उठता है, "यह दो-तीन सौ फुट ऊँची पहाड़ी किधर का धौलगिरि हैं!"

धौली वाले यही उत्तर देते है, "हमारी पहाड़ी का नाम तो अशोक से भी पहले का है।"

चतुर्मुख समझाते हैं, "अश्वत्थामा का हाथी-मुख बुद्ध का प्रतीक है।

बुद्ध की मूर्ति अशोक के समय तक बननी शुरू नहीं हुई थी ।"

रूपक पर चतुर्मुख से कहीं अधिक जागरी का प्रभाव है । जागरी के यात्रा-अनुभव के सामने रूपक को धौली के लोग बौने प्रतीत होते हैं । वह जागरी से यही प्रश्न करता है, "हमें कलकत्ता कब दिखलाओगे, काका ?" चतुर्मुख चिढ़कर सदा यही कहते हैं, "कलकत्ते में कौनसा दूध रखा है तुम्हारे लिए ? वहाँ जाओगे तो रिक्शा खींचनी पड़ेगी ।"

कलकत्ते ने चतुर्मुख का इकलौता पुत्र नारायण छीन लिया । आरक्योलोजिकल विभाग के बुलके साहब ने उसे वहाँ नौकर करा दिया । चलो नारायण ने अपना पुत्र नीलकण्ठ दे दिया । बुलके साहब दौरे पर भुवनेश्वर आते तो धौली भी पधारते । साथ ही उनका परिवार रहता । उनकी बेटी अलवीरा और नीलकण्ठ रेत के घर बनाकर खेलते । नीलकण्ठ को सरकारी वजीफा दिलाकर बुलके साहब ने ही मूर्ति-कला सीखने के लिए लन्दन भिजवाया । पाँच बरस का कोर्स पूरा करके अब वह वापस आने वाला है ।

सहसा रूपक की मूर्ति का किनारा टूट गया । चतुर्मुख बोले, "यह हथौड़ी जो तुमने मारी तो सत्यानाश कर डाला । तुम उठ जाओ, मैं ठीक करता हूँ ।" वे रूपक की जगह बैठकर छेनी चलाने लगे । थोड़ी खामोशी के बाद बोले, "अब यहाँ से गोलार्द्ध दे डालते हैं । पर यह कायदा नहीं । अब तो मजबूरी है । इसलिए मैं कहता हूँ, सोच-समझकर हाथ चलाओ, क्योंकि एक गलत हाथ कई दिन के काम पर पानी फेर सकता है । देखो बेटा, कला साधना चाहती है । अब तुम कुछ खा-पी लो । मेरे लिए भी खाना भीतर से लाओ ।"

गुरु और शिष्य पास बैठकर खाना खाने लगे । रूपक बोला, "नील-कण्ठ का जहाज़ कलकत्ते कब पहुँचेगा, गुरुदेव ?"

"पिछली चिट्ठी में चौदह नवम्बर की तिथि लिखी थी । अब तो दिसम्बर लग गया ।"

इतने में जागरी आकर चतुर्मुख से लिपट गया ।

"क्या बात है ? कुछ बताओगे भी ?"

"बूझ लो तो मान जाऊँ, बाबा !"

"सोना की बात होगी। तुम तो उसी की राह देख रहे हो।"

जागरी ने बाबा के हाथ में चिट्ठी देकर कहा, "नीलकण्ठ की चिट्ठी है। वह कलकत्ते आ पहुँचा। अब वह एक-दो दिन में यहाँ आ रहा है। बाबा, मैं कहता हूँ, क्यों न हम नीलकण्ठ के धौली लौटने की खुशी में धौली का नाम बदल दें ?"

बाबा ने हँसकर कहा, "यह तो गाँजे का नशा बोल रहा है।"

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर धुआँ नाक के रास्ते रूपक पर छोड़ते हुए कहा, "क्यों, बच्चे जमूरे ! वह बोल तो सुना होगा—

पूरब दिशा कबूतर बोले पच्छिम नाचे मोर।
ता थई थई ता नाचे राधा कहाँ छिपा चितचोर।

क्यों, रूपक ? पत्थर की राधा तो नाचने से रही ?"

बाबा प्रसंग बदलकर बोले, "आगरा से आने वाला वह यात्री उस दिन कह रहा था—यह इश्क नहीं आसाँ बस इतना समझ लेना, इक आग का दरिया है और डूब के जाना है ! मैंने उसे नचिकेता की कथा सुनाई··· नचिकेता के पिता बोले—तुझे यम को दूँगा···यमलोक में जाकर नचिकेता ने यम से आत्मा का स्वरूप जानना चाहा—"

"पर नचिकेता जीते-जी यमलोक में पहुँचा कैसे ?" रूपक बोल उठा।

"आग के दरिया में डूबकर पहुँचा होगा।" जागरी ने चुटकी ली।

बाबा बोले, "हाँ तो अन्त में यम ने कहा—आत्मा न मरता है, न मारा जाता है।"

"यह अशोक का किधर का शिलालेख है, बाबा ?" जागरी ने व्यंग्य किया।

"अशोक का नहीं तो मेघवाहन खारवेल का सही।" बाबा मुस्कराये।

रूपक ने आँखें नचाकर कहा, "अब बोलो, जागरी काका !"

"तुम किधर के खारवेल हो जी !" जागरी हँस पड़ा।

धौली से दूर नहीं भुवनेश्वर से आगे वाली उदयगिरि की हाथी-गुम्फा, जिसके द्वार पर खारवेल का लेख अंकित है। मगध के दाँत दो बार खट्टे करके कलिंग-नरेश खारवेल ने अशोक की सन्तान से कलिंग का बदला लिया था। कलिंग की जय-पराजय की कहानी विस्मृति के गर्भ में होती हुई जीवन से बहुत दूर जा पड़ी है।

बाबा तरंग में आकर छेनी के ताल पर गाने लगे :

जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपत भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहिं सूनल स्रुति-पथे परस न भेल।
कत मधु-जामिनि रभस गमाओल न बूझल कइसन केलि।
लाख लाख जुग हिय हिये राखल तैओ हिय जुड़ल न गेलि।

जागरी बोला, "विद्यापति की कविता छोड़ो, बाबा ! इस समय तो यह बताओ कि क्या नीलकण्ठ धौली में आकर बसेगा ? कलकत्ते में उसकी माँ है। वहाँ नीलकण्ठ का काम भी अच्छा चल सकता है।"

"कलकत्ते में उसकी माँ है, तो यहाँ उसकी दादी और बहन हैं।" बाबा ने चिढ़कर कहा, "कलकत्ता तो कल पैदा हुआ है, और धौली कलिंग के साथ पहले से है। यहीं उस युग की तोषली बसी होगी।"

"कोई तोषली भी कौनसी दुधारू गाय बनेगी हमारे लिए ? शान तो पैसे से है, बाबा ! धौली में तो कई-कई दिन ठनठन गोपाल रहता है।"

"यह पैसे वाली बात तो गले नहीं उतरती, जागरी ! पैसा बुरा नहीं, पर पैसा ही सब-कुछ नहीं।"

"पर ज़रूरत तो पूरी होनी चाहिए, बाबा !"

बाबा बोले, "अपना हाथ जगन्नाथ ! हाथ के घट्ठे अब जाने वाले नहीं। अरे घट्ठे तो नीलकण्ठ के हाथ में भी पड़ गए होंगे !"

रूपक ने धोती पहन रखी है। उसकी शिला-जैसी छाती चमकती है। चतुर्मुख ने धोती के साथ बिना बाँहों की बण्डी पहन रखी है। जागरी ने धोती पर कुरता और कुरते पर बण्डी सजाकर गाँजे की चिलम सँभाल

रखी है ।

चतुर्मुख नर्तकी की कमर पर छेनी चला रहे हैं । तीन फुट ऊँची मूर्ति पर काम करने के लिए चौकी पर बैठना ज़रूरी है । पत्थर का चूरा रूपक की ओर गिर रहा है, जो दायें बैठा है । बायें जागरी बैठा है, आलथी-पालथी मारे ।

"हम धौली का नाम नहीं बदल सकते, तो धौली की पाथुरिया गली का नाम तो बदल सकते हैं ।" जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा ।

"ऐसा तो हो सकता है। पर सबसे पूछना होगा, बेटा !"

"सब राज़ी हो जायेंगे । नीलकण्ठ गली कैसा नाम रहेगा ?"

चतुर्मुख बोले, "नीलकण्ठ का आना तो मुझे ऐसा लग रहा है, जैसे स्वर्ग से उर्वशी का आगमन ।"

"मुझे तो ऐसा लगता है बाबा, जैसे अधूरी नारी-मूर्ति का शिल्पी आज अपना काम पूरा करके छोड़ेगा । और किसी ने सुनी हो या नहीं, मैंने तो आधी रात के बाद वाली ठक-ठक में शिल्पी की यह आवाज़ भी सुनी है—कथा कहो, उर्वशी !"

रूपक हँस पड़ा , "नीलकण्ठ काका भी मूर्ति गढ़ते हुए यही कहेंगे—कथा कहो, उर्वशी !"

चतुर्मुख नर्तकी की कमर पर छेनी रोककर बोले, "आज बात उर्वशी पर आकर ही रुकती है । तुम्हारा मतलब है, कन्ध जाति की जिस कन्या से बिशु का प्रेम हो गया था, उसे उसने उर्वशी कहकर पुकारा था ?"

रूपक ने मुस्कराकर कहा, "कथा कहो, उर्वशी !"

जागरी ने गाँजे के नशे में कहा, "बेटा जमूरे, मैं समझ गया । यह नाम स्वर्ग से तैरता हुआ आया है । हम आज से पाथुरिया गली को उर्वशी गली कहेंगे । इस खुशी में गीत सुनो ।"

वह गाने लगा :

बिखरे मेघों का बादबान बाँधे,
बन्धु, तुम किधर चले ?

पिंजरे की चिड़िया पूछ रही,
बन्धु, तुम किधर चले ?
नींद न टूटे, दिल न जागे,
नारी के पुष्पों पर सिर ।
नाव की वेला बीती जाये,
माँझी क्यों बैठा है थिर ?
गगन-मेहराब तले ।
बिखरे मेघों का बादबान बाँधे,
बन्धु, तुम किधर चले ?

चतुर्मुख छेनी चलाते हुए बोले, "विद्यापति कहते हैं, जन्म-भर रूप निहारा, नयन तृप्त न हुए । माँझी को तो एक ही रात का ताना दिया गया है कि नाव की वेला हो गई और तुम नारी की रूप-माधुरी में खोए जा रहे हो । विद्यापति कहते हैं, लाख-लाख युग दिल में प्यार संजोये रखा, दिल न जुड़ सके । एक बात समझ लो । इस रूप-लीला से ही कला जन्म लेती है ।"

"तो फिर यह दूरी कहाँ से आती है, जिसे लाख-लाख युग मिलकर भी नहीं पाट सकते ?"

"सीमा ही असीम को सौन्दर्य देती है, जागरी !"

"हमारी समझ से तो परे है यह भाषा । बाबा, इसीलिए लोग आपकी मूर्तियों को नहीं समझ पाते ।"

"लोग मुझ तक नहीं पहुँच सकते, तो क्या मैं अपना स्थान छोड़कर नीचे उतरूँ ?"

"थोड़ा लोग ऊँचे उठें, थोड़ा कलाकार नीचे उतरे । फिर बात बनेगी, बाबा !"

"जिनमें दम नहीं, वे सीधा और छोटा रास्ता पसन्द करते हैं, बेटा ! जिनमें दम है, वे लम्बे रास्ते से शिखरों पर चढ़ते हैं । हमें कौनसी किसी दफ़्तर में हाज़िरी देनी है ?"

"भुवनेश्वर और कोणार्क की कला में काम-लीला का इतना ज़ोर क्यों है ? यात्री यह प्रश्न बहुत पूछते हैं, जिन्हें मन्दिर दिखाकर मैं चार पैसे वसूल करता हूँ।"

"जब ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की, तो उनके मन में एक शंका हुई कि हमारी रची हुई सृष्टि हमारे मार्ग तक पहुँचते-पहुँचते कहीं शेष तो नहीं हो जाएगी।"

"तो ब्रह्मा ने क्या उपाय सोचा, बाबा ?"

"वही तो बता रहा हूँ। ब्रह्मा ने सोचा, वह जो असीम या विराट है, जहाँ मनुष्य को पहुँचना है, उसके आगे एक आवरण डालना होगा। ब्रह्मा ने काम-लीला का आवरण डाल दिया। अब रचना का क्रम युग-युग तक चलता रहेगा।"

"क्या भुवनेश्वर और कोणार्क की कला भी यही दरसाती है, बाबा ?"

"बेटा, कला में तो एक ही कथा चली आ रही है युग-युग से। बचपन में तुम नीलकण्ठ के साथ बैठकर कथा कहने को कहा करते थे। कथा आदमी को हँसाती है, रुलाती है और गम्भीर भी बनाती है। किसी तरह कथा शेष हो जाती है। पर असल बात यह है कि कथा शेष नहीं होती। उर्वशी स्वर्ग से धरती पर उतरी, तो धरती वालों ने स्वर्ग की कथा कहने को कहा, और जब वह दोबारा धरती से स्वर्ग में गई, तो स्वर्ग वालों ने धरती की कथा में उत्सुकता दिखाई होगी। हम जहाँ भी जाते हैं, कथा साथ-साथ चलती है। पर कथा असल में पीछे छूट जाती है। कथा ही शेष रह जाती है।"

"बाबा, धौली में ऐसा कौन है, जिसके बारे में एक-न-एक कहानी नहीं गढ़ी गई ?"

"अरे बेटा, कोई घटना घटेगी, तो उसके साथ जुड़े हुए प्राणी की कहानी कैसे नहीं चलेगी ?"

बाबा मुगनी पत्थर की मूर्ति गढ़ रहे हैं, रूपक सफेद धब्बों वाले लाल पत्थर की।

जागरी ने अपनी जगह से उठकर रूपक की मूर्ति पर नज़र जमाते हुए कहा, "देवयानी के जूड़े का फूल खिला हुआ है, पर उसका चेहरा क्यों उदास है ?"

"वाह, काका !" रूपक हँस पड़ा, "कच वापस स्वर्ग को जा रहा है, तो देवयानी कैसे उदास नहीं होगी ?"

जागरी ने बाबा की मूर्ति की ओर नज़रें जमाकर कहा, "इस नर्तकी की रूप-छवि तो अलवीरा से मिलती है। बाबा, मेरे मन में एक बात आती है। धौली में बुलके साहब की बेटी अलवीरा से नीलकण्ठ की भेंट हुई, तो रेत के घर बनाते हुए किसे मालूम था कि बड़े होकर एक ही जहाज़ में लन्दन जायेंगे। एक साथ गये थे, तो शायद एक साथ ही वापस आयेंगे, बाबा !"

बाबा ने हाथ लहराकर धीर-गम्भीर स्वर में कहा :

"नीलकण्ठ आचरण का सच्चा है। अलवीरा के साथ मेल-जोल रखते हुए उसने कुल-मर्यादा को नहीं भुलाया होगा।"

जागरी चुप खड़ा रहा।

बाबा ने जागरी की ओर देखा, जैसे मछुआरा बीच सागर में घबराकर दिशा-ज्ञान के निमित्त आकाश की ओर देखता है और बादलों के कारण मार्ग-दर्शक नक्षत्र का पता नहीं चल पाता। फिर वे प्रसंग बदलकर बोले :

"कई बार मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे साथ बैठे अनेक मूर्तिकार अपनी-अपनी मूर्ति गढ़ रहे हैं। सबको अपनी-अपनी मूर्ति गढ़नी है। सबकी अपनी-अपनी पद्धति है।"

"और अपनी-अपनी कला-कहानी।" जागरी ने थाप लगाई।

चतुर्मुख एक विशिष्ट पद्धति की अँगुली पकड़कर चलते आए हैं। उन्होंने प्रायः पत्थर को ही माध्यम बनाया है। पंचधातु-शिल्पी के रूप में भी उन्होंने कुछ प्रयोग किये हैं।

जागरी बोला, "देखें नीलकण्ठ आकर किस तरह की मूर्तियाँ बनाता

है। उसकी कला को विलायत की हवा लग गई होगी। परसों एक यात्री कह रहा था, जिसने एक बार लन्दन का पानी पी लिया, वह बार-बार लन्दन देखने को ललचाता है।"

"अभी क्या नीलकण्ठ के लन्दन देखने की कसर रह गई, जागरी ? अब हम उसे कहीं नहीं जाने देंगे।"

"कोई नौकरी मिल गई तो भी नहीं, बाबा ?"

"हमें नौकरी नहीं चाहिए।"

समुद्र यहाँ से काफ़ी दूर है। उधर से आने वाली हवा समुद्र की कथा कह रही है।

रूपक बोला, "छेनियों के नाम किसने रखे, गुरुदेव ? 'सज', 'मूना', 'तागी', कैसे-कैसे नाम रख दिए। सबसे छोटी छेनी को ही 'तागी' क्यों कहा गया ? नीलकण्ठ काका से पूछेंगे कि 'तागी' का विलायती नाम क्या है ?"

जागरी बोला, "नीलकण्ठ इस समय यहाँ होता तो हवा का नमक चख लेता। आये तो सही, मैं उसकी खबर लूंगा। विलायत जाकर बाबा की मूर्तियों पर लेख अलवीरा ने लिखा, नीलकण्ठ ने क्यों नहीं लिखा ?"

बाबा नर्तकी की नाक को 'तागी' से थोड़ा बारीक करते हुए बोले : "नीलकण्ठ से और जो चाहो कहना। पर यह न कहना, जागरी !"

"अच्छा तो बाबा, मैं उससे कहूँगा, आज ही त्रिमूर्ति पूरी करने बैठ जाओ।"

"और गली का नाम कब बदलोगे, जागरी काका ?" रूपक मुस्कराया।

"यह काम तो आज ही कर छोड़ते हैं।" जागरी ने गाँजे का दम लगाया, "बेटा जमूरे, बस यह समझ लो कि गली का नया नाम पत्थर की छाती चीरता हुआ आया है।"

"और हमें कलकत्ता कब दिखाओगे, जागरी काका ?"

"कलकत्ते में ऐसा कौनसा जादू है तेरे लिए ?" बाबा ने चिढ़कर कहा। और फिर थोड़ी ख़ामोशी के बाद बोले, "पुराने नाम की जगह

नया नाम चलाना सहज नहीं, जागरी ! तुम जतन कर देखो ।"

दोपहर कभी का ढल चुका है ।

साँझ से पहले ही जागरी ने ढोल बजवा दिया :

"धौली की पाथुरिया गली का नाम आज से उर्वशी गली होगा । और वह इस खुशी में कि नीलकण्ठ पाँच बरस बाद विलायत से घर आ रहा है ।"

पुरी एक्सप्रेस तेज़ी से चली जा रही थी। हवा की ठण्डी उँगलियाँ नीलकण्ठ के चेहरे पर सुइयाँ-सी चुभो रही थीं। खिड़की के पास बैठा वह बाहर झाँक रहा था। सवेरा होने का कोई लक्षण नज़र नहीं आया। बाहर अँधेरा-ही-अँधेरा था। उसे ध्यान आया, धौली की कौशल्या पुखरी की सीढ़ियों पर युवतियाँ उसी तरह हिल-मिलकर नहाती होंगी, वैसे ही कमल खिलते होंगे। पुखरी के बीच वाले द्वीप पर कभी कौशल्या राजकुमारी का चन्दन-द्वारों वाला सतखण्डा महल रहा होगा, यह कथा तो बचपन से ही सुनते आ रहे हैं। पाथुरिया गली के उत्तरी छोर पर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान वैसी ही खड़ी होगी। दक्षिणी छोर पर ब्रह्मा-विष्णु वाली चट्टान तो मेरी छेनी की राह देख रही होगी। बाबा यही चाहते हैं, महादेव की मूर्ति बनाकर त्रिमूर्ति पूरी कर डालूं। मेरे वहाँ पहुँचते ही जागरी और गुरुचरण मेरे साथ-साथ नाचते फिरेंगे। कोइली 'भैया-भैया' कहती नहीं थकेगी। आँख में पानी भरकर दादी गले लगाएगी। बाबा कहेंगे, सँभालो घर-बार, हम तो तीर्थ-यात्रा को चले!

उसे वह दिन याद आया, जब अलवीरा उसे लन्दन में जहाज़ पर चढ़ाने आयी थी। वह बहुत आवेश में थी। बराबर तीन घण्टे जाने क्या-क्या

बोलती रही। आखिर उसे शेक्सपीयर की शरण लेनी पड़ी : 'जीवन तो निरी चलती-फिरती छाया है, किसी सामान्य अभिनेता की तरह, जो यह-वह करते समय पूरा करके मंच से चला जाता है और फिर सुनायी नहीं पड़ता !...' 'वह मात्र एक ऐसी कहानी है, जिसे कोई पागल मूर्ख सुनाता हो और जिसमें बोल और आवेश तो बहुत हो, पर अर्थ और भाव कुछ न हो !...' अलवीरा तो 'मेकबेथ' पर जान देती है। वही उसकी बाइबल है। जब जहाज़ चलने में थोड़ी देर रह गई, तो अलवीरा ने आवेश में आकर कहा था :

"आज से पाँच सौ बरस बाद भी लोग तुम्हारा नाम लेंगे, जैसे कोणार्क के महाशिल्पी विशु की कहानी चलती है। तुम्हारा नाम किसी 'आर्टिकिल' के 'फुट-नोट' में नहीं 'हैडिंग' में सजेगा। तुम्हारी परछाईं तुम्हारा पीछा करेगी, यह देखने के लिए कि तुमने कैसे पत्थर में साँसों का संगीत भर दिया। छेनी की सलाह लेना, हथौड़ी की भी पूछना और पत्थर की राय लेने में भी कोई हर्ज न समझना। पत्थर भी भूखा है, उसे प्यार चाहिए। पत्थर को मन की गवाही देने दो। दिन चढ़ता है, जैसे दीवार पर 'पोस्टर' लगता है, पर मूर्ति की बात तो आज के अखबार की 'हैड-लाइन' नहीं है। वह तो सदियों का सपना देखती है।"

एक साथ गये थे, तो एक साथ ही लौटना चाहिए था। अलवीरा ने चाहा, मैं एक साल और रह जाऊँ। घर से बाबा की चिट्ठी-पर-चिट्ठी आ रही थी, चलना पड़ा। जहाज़ चलने से थोड़ा पहले अलवीरा बोली, "मेरी आत्मा परछाईं बनकर तुम्हारा पीछा करेगी..."

लड़ाई छिड़ जाने से कुछ सप्ताह पहले ही वह लन्दन से चल पड़ा था, जैसे हिटलर की पद-चाप सुनायी दे गई हो। उसने सोचा, आजकल सभी अखबार युद्ध की खबरों से भरे रहते हैं, अलवीरा बहुत घबराती होगी।

सवेरा होने में अभी देर थी। वह बाहर अंधेरे में झाँकता रहा, भले ही कुछ नज़र नहीं आता था।

धीरे-धीरे बाहर का दृश्य बदलने लगा। डिब्बे में सोते हुए मुसाफिर जाग उठे। अँधेरे का आँचल छोड़कर उभरती-सी चट्टानें देखकर उसे बाबा की विशाल देह का ध्यान आया। जीवन की चिनगारी! अद्‌भुत प्राणी! महान् मूर्तिकार!

वह मन से बातें करता रहा: कुछ ही क्षणों में सवेरा हो जाएगा। सूरज को समय से पहले उगने को कौन कह सकता है?

पास ही किसी ने दियासलाई जलाकर सिगरेट सुलगाई।

कुछ लोग इस बात को लेकर बहस कर रहे थे कि लड़ाई दो शक्तियों में हो रही है। एक सज्जन ने ऐनक में से देखते हुए ज्ञान बघारा, "एक शक्ति है जर्मनी का नाज़ीवाद, दूसरी फ्रांस-ब्रिटेन का साम्राज्यवाद। श्रीमान् जी, यह लड़ाई तो लम्बी चलेगी। नाटक के बहुत-से परदे खुलेंगे। हिन्दुस्तान अंग्रेज़ों के हाथ से किसी भी समय निकल सकता है।" बात को यहाँ पहुँचाकर उसने सिगरेट का कश खींचा और धुआँ छोड़ा।

फिर किसी ने कहा, "अंग्रेज़ों के दलाल हैं हमारे राजे-महाराजे, जो कहते हैं—हमारी जान हाजिर है।"

ऐनक वाले सज्जन बोले, "अहमदाबाद में पटेल ने भाषण दिया कि जर्मनी आकर बम्बई के बन्दरगाह में दो गोले फेंक दे तो क्या हमारे पास दो पटाखे भी छोड़ने को हैं?"

फिर किसी ने रोना रोया, "हिन्दुस्तान के तीन तरफ़ समुद्र है। मगर हमारा न जहाज़ है, न व्यापार। हमारे हाथ में सत्ता नहीं, हमारा देश हमारे पास नहीं।"

नीलकण्ठ ने अपना स्वर मिलाया, "मिट्टी का लोंदा चाक पर चढ़ा है। मालूम नहीं, मटका उतरेगा या मटकी। मगर यह तो अंग्रेज भी जानते हैं कि एक दिन हिन्दुस्तान आज़ाद होके रहेगा।"

बाहर का दृश्य अब साफ़ दिखायी देने लगा था। गाड़ी महानदी के पुल से गुज़र रही थी।

नीलकण्ठ ने कुछ पैसे निकालकर, दूसरे यात्रियों की देखा-देखी, पानी

में फेंक दिए। श्रद्धा से उसका माथा झुक गया। गाड़ी मुश्किल से पुल के बीच में पहुँची होगी। उसे महानदी से सम्बन्धित पुरानी कहावत याद आ गई।

'महान्ती, महानदी, महापो, याँ को विश्वास नाहीं!' अर्थात् महान्ती [कायस्थ], महानदी और जारज सन्तान, इनका कुछ विश्वास नहीं।

उसने मन-ही-मन कहा, "ये महान्ती लोग तो सरकारी मुन्शी रहे। जो भी सरकार आयी, उसी के साथ हो लिये। इनका क्या भरोसा? महानदी में बाढ़ आती है, तो इसका भी क्या भरोसा कि किस-किसको ले डूबे! और जारज सन्तान का भी कौन विश्वास करेगा?"

पुल पीछे छूट गया था। गाड़ी कटक के रेलवे स्टेशन पर रुकी। दोबारा चली तो डिब्बे में अधिक जान आ गई। कुछ नये यात्री आ गए थे।

ऐनक वाले सज्जन ऐनक को नाक की बिन्दी से ऊपर सरकाते हुए बोले, "हर रोज़ दस करोड़ रुपये लड़ाई में खर्च करते हैं, दस करोड़!"

दूसरे ने कहा, "हमें बहुत दूर तक देखना चाहिए। भले ही हमारी इच्छा के विरुद्ध ही फिरंगी ने हमें युद्ध में झोंक दिया है, पर समझौते की अब भी गुन्जाइश है।"

बाहर का दृश्य प्रकाश और रंग के खेल से सजीव हो रहा था।

नीलकण्ठ को धौली के जुलाहों की याद आई। पुरातन ऋषि-कवि की सूक्ति, जो बाबा को बहुत पसन्द थी, मन के तार हिला गई :

'सूत के तार कातते समय चमकीले रंग का ध्यान करो···बिना गाँठ के तार बुनो!'

उसने अपने मन से कहा, "वह तो बहुत पहले की बात है। अब तो पश्चिम को पूर्व से गले मिलना चाहिए।" उसका ध्यान जेब में पड़े मानचेस्टर के रूमाल की तरफ़ चला गया।

डिब्बे के एक कोने से आवाज़ आई, "जैसे पिंजरे में तोता रहता है, वैसे ही हिन्दुस्तान फिरंगी की मुट्ठी में है। उस बाबू को ही लो। कोट-पेंट में फिरंगी का बेटा बना बैठा है।"

नीलकण्ठ समझ गया कि यह बाण उसी पर छोड़ा गया है। जिस यात्री ने यह फबती कसी थी, उसकी लम्बी-दोहरी देह थी। गोल चेहरे पर गोल-गोल आँखें। गेहुँए रंग में थोड़ा काजल मिल गया था। उसने उचक-कर आगे होते हुए कहा, "युद्ध आता है, तो कारोबार पहले से अच्छा चलने लगता है।"

नीलकण्ठ ने उसके समीप होकर कहा, "अजी श्रीमान् जी, युद्ध को तो पीछा करने वाला हाथी समझो।"

पास से कोई बोला, "घोड़ा हवा के उलट भागता है, गाय हवा के साथ।"

फिर एक तरफ़ से आवाज़ आई, "बुद्धिमान की सलाह तो यही है कि दो प्राणियों को एक साथ कुएँ में नहीं झाँकना चाहिए। इंग्लैण्ड और फ्रांस तो यही कर रहे हैं।"

कोई बोला, "नौका महानदी के बीच में हो, तो उसका सूराख़ बन्द करने का सवाल बहुत टेढ़ा है। पर सूराख होगा ही क्यों? हिटलर इतनी कच्ची गोलियाँ खेला हुआ तो नहीं है, श्रीमान् जी!"

नीलकण्ठ उठकर बिस्तर बाँधने लगा।

किसी की आवाज़ आई, "खोटा सिक्का कब तक चलेगा?"

ऐनक वाले सज्जन बोले, "अजी श्रीमान् जी, पिछली लड़ाई में हिटलर एक सिपाही ही तो था। अंग्रेज जीत गए तो उन्होंने सन्धि करके जर्मनी की नाक रगड़वाई। समय-समय की बात है। हिटलर ने अपने साथियों के साथ शराबखाने में बैठकर कसम खाई कि उस सन्धि का गला घोंटकर दिखायेंगे। उसी में से नाज़ी पैदा हुए।"

गाड़ी भुवनेश्वर के स्टेशन पर रुकी।

नीलकण्ठ नीचे उतरा। उसे लगा, भुवनेश्वर की हवा उसका स्वागत कर रही है।

स्टेशन के बाहर उसे धौली की बैलगाड़ी मिल गई।

बैलगाड़ी की मेहराब से नीलकण्ठ ने देखा, जाड़े की धूप फैली है।

उसने गाड़ीवान से कहा, "भुवनेश्वर का रंग तो ज़रा भी नहीं बदला, काका! वही मन्दिर, वही घर, वही लोग, वही पेड़।"

गाड़ीवान बोला, "हम तो एक बात जानते हैं। तुम्हें याद करते-करते चतुर्मुख रोने लगते हैं। विलायत में पाँच बरस लगा दिए। ऐसी क्या पढ़ाई थी? जागरी और गुरुचरण हर समय तुम्हारा नाम रटते हैं। वैद्य-जी को भी तुम्हारी याद बहुत सताती रही।"

"और कोई खबर?"

"पाथुरिया गली का नाम बदल दिया गया।"

"कब?"

"परसों की बात है। जागरी ने ढोल बजवा दिया।"

"क्या नाम रखा है?"

"उर्वशी गली।"

"किस उर्वशी पर यह नाम रखा गया है?"

"वह अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान है न! उसके बारे में जागरी ने यह बात मशहूर कर दी कि आधी रात की ठक-ठक में, जब मूर्तिकार का

प्रेत आकर मूर्ति का काम पूरा करने का जतन करता है, उसने अपने कानों से यह आवाज़ सुनी है—कथा कहो, उर्वशी ! इसका मतलब साफ है। महाशिल्पी ने जिस कन्ध लड़की से गन्धर्व-विवाह किया था, उसका नाम उर्वशी रखा होगा। इसी गली में विशु का घर था। विशु की उर्वशी का चेहरा हमारी गली की चट्टान पर मौजूद है। इस हिसाब से तो उर्वशी गली नाम बुरा नहीं।"

दया नदी का पुल पार करके बैलगाड़ी कच्चे रास्ते पर चलने लगी।

घर के सामने गाड़ी रोककर गाड़ीवान ने आवाज़ लगाई, "बाहर आकर देखो, काका ! मैं तुम्हारे पोते को ले आया।"

चतुर्मुख तुरन्त बाहर आये और उन्होंने नीलकण्ठ को बाँहों में भर लिया। घने मेघों की तरह भीड़ जमा होने लगी। हर किसी का चेहरा खुशी से खिल उठा। भीड़ को चीरकर बुढ़िया दादी और बहन आगे आईं।

नीलकण्ठ ने दादी के चरण छूकर प्रणाम किया। बहन के सिर पर हाथ फेरकर प्यार दिया, "अच्छी तो रही, कोइली ? सबसे ज़्यादा तुम्हारी ही याद आती थी।"

उसकी आँखों में आँसू आ गए।

इतने में रूपक ने आगे बढ़कर नीलकण्ठ के चरण छू लिए।

"अरे रूपक, तुम तो बड़े हो गए !" नीलकण्ठ ने उसके सिर पर प्यार देते हुए कहा, "ज़रा और बड़े हो लो। तुम्हें भी लन्दन भिजवायेंगे।"

भीड़ में तरह-तरह की बातें होने लगीं। हर किसी को अपनी-अपनी कहने की पड़ी थी। किसी ने कहा, "समय सबको ठीक कर रहा है। अखबार हम नहीं पढ़ते। हम जानते हैं, अखबार में छपी हर खबर तो सच्ची नहीं होती। देश को झूठ का रोग लग गया। यह बुरी बात है।"

इस पर किसी ने आवाज़ लगाई, "झूठ का रोग तो आपको भी लगा है, श्रीमान् जी ! क्या मुँह लेकर उपदेश करने चले ?"

चारों ओर कायँ-कायँ होने लगी। झगड़ा होते-होते बचा। नीलकण्ठ को लगा—ठीक वैसा ही है धौली, जैसा छोड़कर गया था। कोई बीच-

बचाव करते हुए कह रहा था, "सारा दोष लाल मिर्च का है। लाल मिर्च छोड़ दें, तो इतना क्रोध न आए।"

दादी नीलकण्ठ की बाँह पकड़कर घर की तरफ़ ले चली।

घर में आराम से बैठकर नीलकण्ठ बोला, "धूप चली जाती है और लौट आती है, दादी !"

कोइली ने चुटकी ली, "तुम गये तो धूप की तरह थे, पर लौटने में पाँच बरस लगा दिए।"

जागरी और गुरुचरण की सूरत अभी तक नज़र न आई थी। पता चला, वे कहीं बाहर गये हैं।

बाबा बोले, "जागरी कह रहा था, नीलकण्ठ से पूछेंगे कि लाल सागर का पानी क्या सचमुच लाल है ?"

नीलकण्ठ ने कहा, "एकदम लाल तो नहीं, मटमैला-सा है लाल सागर का पानी। एक तरफ अरब, दूसरी तरफ अफ्रीका, बीच में लाल सागर है। भूमध्य सागर की तरह नीला नहीं है। गरमी बहुत पड़ती है। मटमैला होने से ही लाल सागर नाम पड़ गया।"

"अच्छा, तो यह बात है !" बाबा मुस्कराये, "गुरुचरण कह रहा था, नीलकण्ठ से पूछेंगे कि क्या लन्दन में भी सरकारी दफ़्तरों में रिश्वत का बाज़ार गरम है ?"

"वहाँ की बात बिलकुल दूसरी है, बाबा !"

कोइली के दोनों हाथ सिर के पीछे जुड़े हुए थे। दादी बोली, "कोइली पत्थर की मूर्ति होती, तो हमें उसके विवाह की चिन्ता तो न सताती।"

इतने में जागरी और गुरुचरण आ गए। जागरी बोला, "हमारे लिए कोई विलायती चिलम लाए ?"

"हमारे लिए कोई विलायती चोगा लाए ?" गुरुचरण ने मुस्कराते हुए पूछा। जागरी झट से नीलकण्ठ का टोप सिर पर रख विदूषक की तरह नाचने लगा।

नीलकण्ठ को लौटे कई महीने हो गए ।

उसका दिल लग गया । दिल न लगने का तो कोई सवाल ही नहीं था । बाबा की हर बात तो उसे अच्छी नहीं लगती थी । वह कहना चाहता था, अच्छी-से-अच्छी बात भी बार-बार दोहराई जाए तो सुनते-सुनते तंग आ जाता है आदमी । अब बाबा हैं कि हर समय त्रिमूर्ति पूरी करने का आदेश देते रहते हैं । कभी वे सीधी तरह बात न कहकर ज़रा घुमाकर कहते हैं वही बात—पानी के किनारे बैठकर लहरें गिनने से काम नहीं चलेगा, बेटा ! जो पानी में कभी उतरना नहीं चाहता, वह तैरना भी नहीं सीख सकता !···बाबा की आवाज़ तो जैसे नींद में भी उसे चौंका देती । आँख खुलने पर भले ही बाबा नज़र न आते, पर वह हड़बड़ाकर उठ बैठता ।

अख़बार में युद्ध की खबरें भरी रहती हैं, जैसे सारी दुनिया पर हिटलर का राज होने जा रहा हो । मरदूद, सारी दुनिया को मारकर दम लेगा !

आज के अख़बार पर उचटती-सी नज़र डाली । जल्दी-जल्दी पन्ने पलटे, जैसे सारी खबरों को पी गया । दूसरे पन्ने पर एक खबर छपी है ।

शीर्षक है 'चालीस बकरियाँ मरीं।' शीर्षक के नीचे लिखा है—हमारे सम्वाददाता द्वारा। खबर यों है :

"अल्मोड़ा, २८ मई। अल्मोड़ा ज़िले की द्रोलपट्टी के आरतोला गाँव में तूफान के कारण चालीस बकरियाँ मर गईं। जिस समय तूफान के साथ मूसलाधार वर्षा हुई, उस समय बकरियाँ पहाड़ की ढलान पर घास चर रही थीं।"

कितना बड़ा दुःखान्त है! मरने से पहले कड़ाके की ठण्ड से बकरियों के दाँत बजते रहे होंगे। वह बात तो अखबार के सम्वाददाता ने नहीं लिखी। कौन कह सकता है, मरने से पहले बकरियों के दिल में क्या-क्या बातें थीं। यह बात तो हर दूध देती बकरी के दिल में होगी, घर जाकर मेमने को दूध पिलाऊँगी। जिनकी बकरियाँ मर गईं, उन्हें बकरियों का दुःख सता रहा होगा। पर दूध-पीते बच्चों की बिसूरती मुख-मुद्रा पर तो दूसरी ही बात लिखी होगी—हाय हमारी माँ मर गई! जिनकी बकरियाँ मरीं, उन्हें क्या मालूम कि अल्मोड़ा ज़िले की द्रोलपट्टी से इतनी दूर पुरी ज़िले के धौली गाँव में विलायत से पाँच बरस बाद लौटे नीलकण्ठ को यह खबर युद्ध की दुःखमयी खबरों से भी कहीं कसक-भरी लगी। चालीस बकरियों की मौत की खबर पढ़ने में जितनी देर लगी, मौत के घाट उतरते तो उन्हें इतनी देर न लगी होगी!···बाबा आज फिर कहेंगे, त्रिमूर्ति पर काम शुरू करो। उनका यह आदेश आज कितना बेकार और खोखला प्रतीत होगा! मैं भौंचक्का-सा उनकी तरफ देखता रहूँगा। वे कहेंगे, आज क्या बहाना करोगे? मैं कोई उत्तर नहीं दूँगा। मैं कभी नहीं बताऊँगा कि अल्मोड़ा ज़िले की द्रोलपट्टी के आरतोला गांव में तूफान के कारण चालीस बकरियाँ मर गईं, जब वे पहाड़ की ढलान पर घास चर रही थीं। हो सकता है, मैं बाबा के सामने रो दूँ। मेरे आँसू उन चालीस बकरियों के लिए होंगे। बाबा यह समझेंगे, मुझे उनकी बात चुभ गई।

पत्थर छील-छीलकर मूर्तियाँ गढ़ते रहने का काम उसे अजीब-सा लगा। इसके लिए लन्दन में पाँच बरस लगा आया। अरे यह काम तो

ख़ानदानी धन्धा ठहरा। छेनी-हथौड़ी की ठक-ठक तो अपने ख़ून में है। पर आज मैं काम पर नहीं बैठ सकता। आरतोला गाँव की चालीस बकरियों का मातम कैसे न करूँ ? बाबा से कुछ नहीं कहूँगा, भले ही वह मेरे आँसुओं को बचकाना कहें, लाख मेरी पीठ थपकें। फिर चाहे वे यह भी क्यों न पूछें—क्यों, आज अलवीरा याद आ गई ? यह सोचते-सोचते उसे सचमुच आँसुओं की खबर मिल गई। खबर के साथ खुद आँसू उतर आए। बकरियों के मातम में इस रुलाई पर वह अपने को सँभाल न सका।

बिस्तर से उठकर अखबार हाथ में लिये, वह मूर्तिशाला के सामने वाली बगिया में टहलता रहा। वह सोच रहा था, पत्थर की मूर्ति गढ़ने वाला पत्थर-दिल तो नहीं हो सकता कि चालीस बकरियों की मौत की खबर अनसुनी कर दे। वह चालीस बकरियों की बात सोच रहा था। एक कम, न एक ज़्यादा, पूरी चालीस। सब मर गईं। यही विचार बार-बार आ रहा था, जैसे तीन चट्टानों के अधबीच नदी की धारा भँवर का रूप धारण कर लेती है। यह बात तो अलवीरा को भी लिखनी होगी। तीर की तरह यह खबर उसके कलेजे में चुभ गई।

उसने सोचा, अच्छी-बुरी मूर्ति की पहचान तो सबको नहीं होती, मूर्तिकार का नाम चलता है। नाम कोई एक दिन में तो नहीं हो जाता। जैसे राजा का यश, वैसे मूर्तिकार का यश। गाँव में वह कथा कौन नहीं जानता ? अपना-अपना भाग्य है। जिस सिंहासन पर कभी महाराज विराजते थे, वह समय के फेर से भूमि के नीचे दबता चला गया। जहाँ कभी राज-भवन में कचहरी लगती थी, वहाँ अब खेती होने लगी। संयोग से एक दिन सिंहासन वाले स्थान पर किसान का बेटा आ बैठा, तो वह राजा का अभिनय करने लगा। लोग भाँप गए और खोदते-खोदते उन्होंने नीचे से सिंहासन निकाल लिया। सिंहासन के चारों ओर आठ-आठ पुतलियाँ लगी थीं। कुल मिलाकर बत्तीस पुतलियाँ थीं। हर पुतली बारी-बारी खड़ी होकर महाराज की कीर्ति-गाथा सुनाने लगती।...आज जब चालीस बकरियों की खबर उसे झकझोर गई, वह किसी तथाकथित सिंहासन की

बत्तीस पुतलियों की कथाएँ सुनने को भी तैयार नहीं हो सकता था। विधि का विधान। चालीस बकरियाँ एक साथ तूफान की लपेट में आ गईं, जैसे आज यूरोप को युद्ध ने ग्रस लिया।

उसने बरामदे से झाँककर देखा। बाबा और रूपक अपनी-अपनी मूर्ति गढ़ रहे थे। एकाएक उसे यह विचार आ गया कि पुरी वाली सड़क पर फौजी ट्रक आजकल बहुत घूमने लगे हैं। आकाश पर हवाई जहाज भी तो दिखाई देने लगे हैं। युद्ध की तैयारियाँ। न जाने क्या होने जा रहा है ? शायद सब-कुछ नष्ट हो जाएगा। फिर मूर्तियाँ गढ़-गढ़कर क्यों हाथ थकाए जाएँ ?

उसे जागरी की पत्नी सोना का ध्यान आया। सोना भौजी। जागरी का विवाह नीलकण्ठ के विलायत जाने से दो बरस पहले हुआ था। मयूरभंज की है सोना भौजी। अलवीरा की चिट्ठी आये, तो सोना भौजी को कैसे नहीं बताया जाएगा ?

"काश, मैंने तुम्हारे साथ ही लौटने का फैसला किया होता !" अलवीरा की पिछली चिट्ठी के इस वाक्य ने सोना को गुदगुदा दिया था। अलवीरा ने यह भी तो लिखा था, "जिन गुड्डे-गुड़ियों को हम थपकियाँ देकर सुला देते हैं, उनकी नींद बार-बार टूट जाती है।"

सोना सब समझती है। अभी उस दिन कह रही थी, "मुहब्बत रबड़ की गुड़िया तो नहीं कि पेट दबाते ही सीटी बजाने लगे !" अलवीरा की ओर संकेत करके कहती है, "मेंढकी को कैसे जुकाम हुआ ?"

रासलीला में लड़कों का गोपियाँ बनना सोना को अटपटा-सा लगता है। कई बार कह चुकी है, "रासलीला में एक-न-एक दिन लड़कियाँ उतरेंगी, उतर के रहेंगी, भले ही गुरुचरण इस ओर ध्यान नहीं देता।"

मयूरभंज की राजनर्तकी की बेटी है सोना। वह धौली के एक गंजेड़ी से ब्याही गई, यह बात धौली की स्त्रियों की समझ में आज तक नहीं आई। पहले वे सोचती थीं, सोना भाग जाएगी। पर सात बरस हो गए, सोना यहीं है।

सोना की कोख अब तक हरी नहीं हुई, तो वह क्या करे ? घर ग्रामोफोन रिकार्ड लगाकर सोना नाचने लगती है, तो कौनसा गज़ब हो गया ? मान लो, वह दूसरी मिट्टी की बनी है, फिर भी रोग-शोक में सबके काम आती है। दूसरों के नन्हे-मुन्नों को लेकर घण्टों उनसे खेलती रहती है। उसकी मातृभाषा है बँगला। उड़िया भी अच्छी बोल लेती है। गली में चलते-चलते मातृभाषा का गीत गाने लगती है :

चारि धारि रेल पड़ेछे भाई,
तुमि बऊ के किछु बोलो ना !
बऊ के किछु बोलले परे,
बऊटा घरे रहिबे ना !

[चौखूंट रेल की पटरी बिछ गई, भाई ! तुम बहू को कुछ मत कहना। खरी-खोटी सुनाते रहोगे, तो बहू घर में नहीं रहेगी।]

सोना के इस गीत का हवाला देकर जागरी मेरा पक्ष ले चुका है, बाबा के सामने। उसने साफ-साफ कह दिया, "देखो बाबा, पाँच बरस के बाद विलायत से लौटने वाला नीलकण्ठ अब वह पहले वाला नील नहीं है। वह बहुत बदल गया। उस पर शासन करोगे तो वह घर से भाग जाएगा।"

जागरी और गुरुचरण धौली की शोभा हैं। जागरी घाट-घाट का पानी पी आया। गुरुचरण आज भी पी रहा है घाट-घाट का पानी। उसका धन्धा ही सहायक है। रास-मण्डली लेकर दूर-दूर हो आता है। जहाँ जाता है, धौली की शोभा साथ लेकर जाता है। जागरी अब बाहर नहीं जाता। भुवनेश्वर के यात्रियों को मन्दिरों की कला दिखाकर चार पैसे कमा लेता है। वह इसी में प्रसन्न है।

बगिया के प्रत्येक पेड़-पौधे को वह ध्यान से देखने लगा। सहसा उसे कलकत्ते के बोटैनिकल गार्डन की याद आ गई। सोना का विवाह हुए उन दिनों दो-तीन महीने ही हुए थे। जागरी उसे कलकत्ते की सैर कराने ले गया। गुरुचरण भी साथ था। वहाँ बोटैनिकल गार्डन में अलवीरा भी

साथ गई थी। जब एक नव-वधू की तरह लजाकर सोना साड़ी का छोर सिर के ऊपर सरकाती, तो अलवीरा हँस पड़ती। साड़ी तो अलवीरा ने भी पहन रखी थी। पर अलवीरा के कटे हुए घुंघराले बाल कन्धों पर लहरा रहे थे। लाजवन्ती बनने के लिए सिर ढकना इतना ज़रूरी है, अलवीरा बस यही नहीं समझ पा रही थी। "सोना के अन्तर्लोक में चित्र-विचित्र भाव-छाया की रासलीला हो रही है!" यह कहकर गुरुचरण ने अपने रासधारी होने की याद दिला दी थी। इस पर सभी हँस पड़े थे। सोना और भी लजा गई थी, जैसे उसके अन्तर्लोक की भाव-छाया बन्धन-रहित और निरंकुश होने को तैयार न हो। आज वही सोना खिलखिला-कर हँसती है, जैसे मायाधर की दुकान से धनतेरस के दिन खरीदे हुए काँसे-पीतल के नये बरतन टकरा जाएँ। सिर से साड़ी का छोर उतर जाए, तो झट से सिर के ऊपर ले जाने का ध्यान नहीं आता। सात बरस में कितनी बदल गई सोना—वह बोटैनिकल गार्डन वाली सोना जैसे कहीं पीछे छूट गई हो।

इतने में कोइली ने आकर पूछा, "आज छुट्टी मना रहे हो, भैया?"

"चलो छुट्टी ही सही।" नीलकण्ठ हँस पड़ा।

"आज तो मेरी मूर्ति बनाओ।"

"तो पहले कुछ खिलाओ-पिलाओगी भी या यों ही?"

कोइली ने हाथ में लड्डू छिपा रखा था। उसे झट से नीलकण्ठ के मुँह में डालकर बोली, "भैया, मेरी मूर्ति काले मुगनी पत्थर की नहीं, नारायणगढ़ वाले लाल पत्थर की बनाना!"

उसी समय सोना ने आकर कोइली को अंक में भरते हुए कहा, "वाह मेरी मूर्ति!" और अगले ही क्षण उसने पलटकर नीलकण्ठ से पूछा, "अलवीरा की चिट्ठी आई?"

अलवीरा की बात करने में सोना को खुशी होती थी, जैसे दबा हुआ धन हाथ आ जाए। नीलकण्ठ को बरबस हँसी आ जाती। वह टालना चाहता। सोना न मानती। मन-ही-मन वह सोना की इस बात पर लट्टू था। वैसे ही उसका मन रखने को कह देता, "क्या दादी घर में बहू के नाम पर मेम साहब को आने देंगी ?" सोना हँसकर कहती, "मैंने तो इतना ही पूछा था, अलवीरा की चिट्ठी आई ? सच्ची बात तुम्हारे मुँह से निकल गई। दादी की इसमें क्या बात है ? जिसको भी तुम ब्याहकर लाओगे, वही दादी की बहू कहलायेगी।" वह सोना को समझाता, "अलवीरा साड़ी पहनती है तो क्या हुआ ? दादी की नज़र में तो वह मेम साहब ही हुई न ! जब तक महायुद्ध बन्द नहीं होता, उसके लौटने का कुछ ठीक नहीं।" सोना कहती, "तुम उसे प्रेम करते हो, तो तुम्हें इन्तज़ार करना होगा।" वह मुँह बनाकर जवाब देता, "दादी कब इतना इन्तज़ार करने देंगी ?" इस पर सोना ठहाका लगाकर कहती, "लम्बी बहस छोड़ो। तुम तो बस इतना बताओ, अलवीरा की चिट्ठी आई ?"

सोना का तो वही एक सवाल था—अलवीरा की चिट्ठी आई ? घर में आकर पूछे, चाहे राह चलते, सोना तो वही रट लगाती।

"गालों पर हाथ रखकर बात करती है ग्रलवीरा !" सोना ग्राँखें नचाकर कहती, "विलायत जाकर भी उसने वह नखरा छोड़ा तो नहीं होगा, नील !"

नीलकण्ठ हँसकर कहता, "तुम तो जाने-ग्रनजाने मेरी दुखती रग पर हाथ रख देती हो, सोना भौजी !"

"ग्रौर नहीं तो !" सोना जैसे गढ़ा-गढ़ाया उत्तर देती, "मुझसे कुछ छिपा हुग्रा तो नहीं। जब कभी वह दया नदी के किनारे रेत पर नंगे पैर खड़ी होती थी, तो जब तुम कोई मुश्किल सवाल करते, वह पैर का ग्रँगूठा मोड़कर रेत में दबा लेती थी। यह तो मेरी ग्राँखों-देखी बात है।"

"कोई कसर न रह जाए, सोना भौजी !" नीलकण्ठ हाथ उछालकर कहता, "सब भेद बता दो ग्राज लगे हाथ। ग्रलवीरा ने स्वयंवर की बात तो नहीं कही थी न ?"

सोना ग्राँखें नचाकर जवाब देती, "क्यों, स्वयंवर कोई बुरी बात है ?"

सोना का भी तो स्वयंवर हुग्रा था।

स्वयंवर की शर्त भी खूब थी। स्वयं सोना ने ही यह शर्त रखी थी। महानदी के किनारे से एक ही समय सब लड़के तैरना ग्रारम्भ करें। जो भी तैरते-तैरते ग्राकर दूसरे किनारे पर खड़ी सोना को हाथ लगा देगा, वह उसी के गले में वर-माला डाल देगी। एक कम न एक ज़्यादा, पूरे पचास लड़के मैदान में उतरे थे। उनमें जागरी भी था। मैदान जागरी के हाथ रहा। सोना की माँ बोली, "ग्राखिर मैं राजनर्तकी हूँ। महाराज को भी तो पता चले कि राजनर्तकी की बेटी का विवाह है। बारात मयूर-भंज ग्रानी चाहिए।"

तब से जागरी के साहस की धूम है। महानदी में तैराकी की वैसी दौड़ फिर नहीं हुई। साथ-साथ नौका चल रही थी, जिससे रास्ते में ही हार मानने वालों को बचाया जा सके। चालीस लड़कों को तो रास्ते में ही नौका वालों ने सँभाल लिया था। जो दस लड़के तैरते-तैरते इस पार ग्रा लगे थे, उन्हें ग्राधा फर्लांग पीछे छोड़ ग्राया था जागरी। सैकड़ों

दर्शकों की उपस्थिति में सोना ने उसके गले में वर-माला डाली थी। उस समय उसने जो सुनहरी साड़ी पहन रखी थी, उसके पास आज भी मौजूद थी।

मयूरभंज-नरेश ने राजनर्तकी की बेटी के विवाह में एक ग्रामोफोन का उपहार दिया था। साथ ही पचास रिकार्ड भी थे। पचास रिकार्ड आज भी याद दिलाते थे कि सोना के स्वयंवर के लिए तैराकी की दौड़ में पचास लड़के मैदान में उतरे थे। इसी ग्रामोफोन पर एक-न-एक रिकार्ड चढ़ाकर सोना अपने घर में नाचने लगती थी।

सोना जानती थी, जागरी उसे बहुत चाहता है। कमाई तो अधिक नहीं लाता था, क्योंकि गाँजे का खर्च बाहर-ही-बाहर पूरा करना पड़ता था। एक बार रुपये सोना के हाथ में आ जाते, तो गाँजे के हिसाब में वह सोना से कुछ भी नहीं ले सकता था।

सोना को घर बनाने की लगन थी, और कला की चाह भी। सारे गाँव में उन्हीं के घर ग्रामोफोन था। पड़ोस की स्त्रियाँ लाख बातें बनायें, वह रिकार्ड चढ़ाकर नाचने का अभ्यास करना ज़रूरी समझती थी। घिसी हुई सुइयाँ फेंक देनी पड़ती थीं। रिकार्ड पर श्रोता का प्रतीक था कुत्ता—ग्रामोफोन कम्पनी का ट्रेडमार्क। नाचते-नाचते वह मानो प्राणों का समूचा निवेदन उँडेल देती थी।

"साना भौजी, कभी मैं भी देखूँ तुम्हारी कला!" नीलकण्ठ अनुरोध-पूर्वक कहता।

"क्यों नहीं?" सोना मुस्कराकर कहती, "जब चाहो दिखा सकती हूँ। कुछ बाज़ार से तो लाना नहीं। तुम बताओ, अलवीरा की चिट्ठी आई?"

सोना के सवाल से नीलकण्ठ का मन लन्दन की चित्र-विचित्र कल्पना से भरने लगता। अलवीरा की मस्ती-भरी मुस्कान उसके भावना-स्रोत को छू-छू जाती। पर महायुद्ध का ध्यान आते ही लन्दन के भविष्य की आशंका से वह एकदम घबराकर इधर-उधर देखने लगता और फिर हाथ ऊपर उठाकर अलवीरा की सुरक्षा के लिए भगवान् से प्रार्थना करता।

अलवीरा की याद दिलाकर सोना तरह-तरह के मज़ाक करती।

नीलकण्ठ कहता, "तुम्हारा दिमाग़ खराब हो जाएगा, सोना भौजी !" पर उसकी हँसी थी कि बन्द होने का नाम ही न लेती ।

इधर कुछ दिन से भुवनेश्वर में एक सर्कस कम्पनी आयी हुई थी। धौली का ऐसा कोई आदमी न था, जो सर्कस देखने न गया हो। सोना की ज़िद थी कि नीलकण्ठ के साथ सर्कस देखेगी। जागरी ने भी ज़ोर डाला कि वह मामूली-सी बात पर सोना को नाराज़ न करे।

जिस दिन सर्कस का अन्तिम दिन था, नीलकण्ठ ने सोचा, चलो सोना भौजी की ज़िद पूरी कर दें। वहाँ पहुंचकर नीलकण्ठ ने देखा, सोना का ध्यान न नटों के शौर्य-प्रदर्शन की ओर है, न सिखाये हुए जानवरों के खेलों की ओर। वह तो बार-बार अलवीरा का हाल पूछने लगती।

सोना को यह जानकर खुशी हुई कि लन्दन में जिस फ्लैट में अलवीरा का रहने का प्रबन्ध था, वह सुरमई रंग का था। "वहाँ बुलके साहब की बहन रहती हैं, भौजी !" नीलकण्ठ कहता चला गया, "उस फ्लैट में अपनी बुआ, मिसिज़ आरनसेन, के पास रहती है अलवीरा। वहाँ उसे हर तरह का आराम रहा, पर अब महायुद्ध के दिनों में उसे बहुत कष्ट होगा। फिर भी लन्दन के लोगों ने, जैसा कि मैं उन्हें जानता हूँ, हिम्मत नहीं हारी होगी।"

"और तुम कहाँ रहते थे ?"

"मैं एक घर में 'पेइंग गैस्ट' था।"

"उस घर में कौन-कौन थे ?"

"एक बुढ़िया, उसकी दो जवान लड़कियाँ और एक दस साल का लड़का।"

"अलवीरा की बुआ मिलनसार तो होगी ?"

"मिलनसार तो थी, पर लन्दन में किसी के पास इतना फालतू समय नहीं होता कि दूसरों के काम में ज़्यादा दखल दे।"

"और वह बुढ़िया कैसी थी, जिसके घर में तुम रहते थे, रहने और खाने के पैसे देकर ?"

"वह भी बुरी न थी ।"

"और उसकी लड़कियाँ और लड़का ?"

"लड़कियाँ बहुत ही हँसमुख थीं और लड़का बहुत ही शरारती ।"

सोना सवाल पर सवाल पूछ रही थी, जैसे उसे सर्कस के खेलों में ज़रा भी दिलचस्पी न हो ।

फिर सोना कटक की मासिक-पत्रिका 'आरती' में कोइली की पहली कविता के छपने की कथा ले बैठी । "उसके सम्पादक हैं हेमेन्द्र पटनायक ।"

"अच्छा, अच्छा !" नीलकण्ठ ने पिछली बात याद करते हुए कहा, "वही तो नहीं, जिसने तुम्हारे स्वयंवर में भाग लिया था ? वही जो बहुत लम्बा-सा है ?"

"हाँ, वही !" सोना कहती चली गई, "मैं कोइली को साथ लेकर 'आरती' कार्यालय में गई, तो उसने मुझे पहचान लिया और छूटते ही बोला—आइए, आइए, मिसिज़ जागरी ! कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?···मैंने कहा—मैं तो कुछ नहीं चाहती अपने लिए । हाँ, नवोदिता कवयित्री कुमारी कोइली से 'आरती' के पाठक परिचय-लाभ करें, यह मेरी हार्दिक इच्छा है ।···सम्पादक महोदय बोले—आज्ञा कीजिए न, मिसिज़ जागरी !···और फिर कोइली की ओर संकेत करके बोले—आप ही हैं वह नवोदिता कवयित्री ? हमारा अहोभाग्य कि हमें 'आरती' में प्रकाशनार्थ आपकी नूतन कविताएँ प्राप्त हो सकें ।···इस पर कोइली ने अपनी कविता 'अल्ला मेघ दे रे' सम्पादकजी के हाथ में थमा दी । सम्पादक जी बोले—अब इसे तो आप अपने श्रीमुख से सुनाइए ।···और कोइली ने वह छोटी-सी कविता गा सुनाई—

मेघ दे रे मेघ राजा श्याम-सलोने मेघ दे ।
रिम-झिम बरसो मेघ राजा, सुन प्यासी धरती के बोल
बरसो मेघा लगें सुहाने दूर और नज़दीक के ढोल
घर-संसार की देहरी पर नव-वर्षा का आलेख दे ।
घर घर उतरे मेघ राजा मेघों की सुन्दर बारात

मिलकर तेरी करें आरती तेरह नदियाँ सागर सात
रिम-झिम ताल में मेघ राजा आज नया आवेश दे।
तुम्हें बुलाये मेघ राजा पल-पल मछुआरों का जाल
पूरब पच्छिम भेजे पाती उत्तर का अगिया बैताल
सूखी दूब को मेघ राजा जल-सुपने की खेप दे।
मेघ दे रे मेघ राजा श्याम-सलोने मेघ दे।

हाँ तो, सम्पादकजी रस-विभोर हो उठे। बोले—यह वर्षा-गीत इसी अंक में जाएगा, जो इस समय प्रेस में है।...यह वही कविता थी, जो डाक से 'आरती' में प्रकाशनार्थ भेजी गई थी और कई महीने तक सम्पादकजी ने न इसे छापा, न लौटाया। और फिर जब यह छप गई, तो कलकत्ते के साहित्यकार अन्नदा बाबू ने इसे कुछ प्रतिनिधि उड़िया कविताओं में स्थान देते हुए इसका अंग्रेज़ी अनुवाद लन्दन की किसी पत्रिका में छपवाया। उस पत्रिका का वह अंक कोइली के पास है। उसने तुम्हें नहीं दिखाया वह अंक ?"

सर्कस में सिंह और सिंहनी के प्रेम-मिलन का खेल दिखाया जा रहा था। उधर से ध्यान हटाकर नीलकण्ठ बोला, "मैं अलवीरा को लिखकर पूछूँगा।"

सोना ने हँसकर कहा, "उस कविता के अनुवाद की एक नकल उसे यहीं से भेज दो न ! वह कहाँ ढूँढ़ती फिरेगी ?"

धौली न जाने कब से कृतसंकल्प था। इसका भविष्य कुम्हार के चक्के पर गीली माटी की तरह घूम-घूम जाता है। धौलगिरि और धौली गाँव, दोनों अश्वत्थामा चट्टान के कारण प्रसिद्ध हैं।

अश्वत्थामा के ऊपर वाले सिरे पर हाथी-मुख बना हुआ है। नीचे, दूसरी ओर, अशोक की राजाज्ञा अंकित है। हाथी-मुख अशोककालीन कलाकृति है। उस युग तक बुद्ध की मानवाकार मूर्ति गढ़ने की प्रथा नहीं थी। इसी तरह का कोई-न-कोई चिह्न बुद्ध का रूप दरशाता था।

बचपन से ही चतुर्मुख शिलालेख और हाथी-मुख देखते आए थे। लिपि अचीन्ही-सी है। धौली में इसे पढ़ने की क्षमता किसी में न थी। चट्टान पर अंकित लेख को टटोलते, आगे-पीछे हाथ फेरते, चतुर्मुख इतिहास के पन्ने पढ़ने का जतन करते। जैसे अश्वत्थामा कह रहा हो—तुम किन-किन शब्दों को नये अर्थ दे पाए? राजाज्ञा अंकित करने के लिए, छेनी से छीलकर समतल सुथरा स्थान बनाया गया था। चतुर्मुख सुनते आए थे, कलिंग-युद्ध में अशोक डेढ़ लाख लोगों को बन्दी बनाकर ले गया, एक लाख सैनिक मौत के घाट उतार दिए गए, और भी बहुत से लोग मारे गए। कलिंग-विजय के बाद अशोक ने राजाज्ञा अंकित कराई। चतुर्मुख

कहने लगते हैं, "जब कलिंग का मान भंग हो चुका, कलिंग की धरती लहू से रंगी जा चुकी, तब अशोक को प्रियदर्शी बनने की सूझी। यह कैसी विडम्बना थी? क्या आक्रमणकारी अशोक ने कलिंग की राज्य-सत्ता कलिंग को लौटा दी थी?"

अश्वत्थामा का हाथी-मुख भगवान् बुद्ध का प्रतीक है, पर धौली के निवासी उसके सम्मुख धौलेश्वरी माता की पूजा करते थे। यह देखकर चतुर्मुख मुस्कराते हैं।

धौलगिरि के शिखर पर एक शिव-मन्दिर है, जो अब दीन-हीन अवस्था में खड़ा है। वहाँ से नीचे का दृश्य बहुत सुन्दर है। एक छोर पर गुफाएँ हैं। कुछ प्राकृतिक, कुछ निर्मित। एक ओर ऐसी गुफाएँ हैं, जो पूरी न हो सकीं। चतुर्मुख कहते हैं, "कुछ काम तो अधूरे ही रह जाते हैं।"

धौलगिरि के चरण-स्थल में एक शिव-मन्दिर है। वह अच्छी अवस्था में है।

अश्वत्थामा के पास ही धान के खेत शुरू हो जाते हैं। वहाँ से वह भूमि दूर नहीं, जहाँ गन्ने की खेती करते हैं। अश्वत्थामा चट्टान से ऊपर जाने पर नीचे कौशल्या पुखरी नज़र आती है। डेढ़ मील लम्बी, सात फर्लांग चौड़ी। पानी चाँदी की तरह चमकता है।

कौशल्या पुखरी के बीच छोटा-सा द्वीप है, जहाँ किसी समय कौशल्या राजकुमारी का चन्दन-द्वारों वाला सतखण्डा महल रहा होगा। राजकुमारी की कथा कहते सबको संकोच होता है। यह कुछ अटपटी-सी है। पिता का राजकुमारी से प्रेम हो गया था। इससे आगे कथा का तार बार-बार टूट जाता है।

कौशल्या पुखरी का सीढ़ियों वाला पक्का घाट है, जहाँ बातों के भुन-भुने बजते हैं, और दुनिया की हवा लगती है। धौली से सटी हुई है कौशल्या पुखरी। स्त्रियाँ कपड़े धोती हैं, नहाती हैं।

अश्वत्थामा से धौली का सीधा रास्ता मील-भर का होगा।

दया नदी और धौली के बीच तीन-चार फर्लांग का अन्तर समझिए।

इस भूमि पर धान के खेत हैं।

गाँव के भीतर एक पुराना शिव-मन्दिर है। इसके समीप कदम का ऊँचा पेड़ खड़ा है, जिस पर पीले फूल खिलते हैं। गाँव से दया नदी का पुल मुश्किल से एक फलांग होगा। चारों ओर खेत-ही-खेत हैं। हवा कान-फुँकवा गुरु की तरह धान के पौधों से बात करती है।

एक ओर बाँस-कुंज है, दूसरी ओर अमराई। अश्वत्थामा चट्टान के रास्ते धौलगिरि पर जाएँ तो बेंत के अनगिनत पौधे मिलेंगे। वर्षा में धौलगिरि हरा बाना पहनता है।

धौलगिरि के शिखर पर शिव-मन्दिर के पास खड़े होकर चतुर्मुख तरंग में आकर कहते हैं, "देखो तो दया नदी किस शान से बह रही है! इसने तो अशोक को भी देखा होगा!"

नीलकण्ठ को चुप देखकर जागरी कहता है, "दया नदी ने तो कलिंग की लड़ाई भी देखी होगी।"

बाबा कहते हैं, "यहीं कहीं नीचे मैदान में तोषली नगरी बसी होगी। कलिंग की लड़ाई में तोषली नगरी नष्ट हो गई। श्मशान में उगे हुए पेड़ के समान तोषली का नाम-लेवा धौली बस गया। पुराने लोग इसका नाम धौलीगढ़ भी बताते हैं।"

जागरी उड़िया भागवत का बोल अलापता है :

सर्वे होइबे एकाकार।
न थीबो बेदोर विचार।

[सब एकाकार हो जाएगा। वेद का विचार नहीं रहेगा।]

बाबा प्रसंग बदलकर कहते हैं, "एक बात याद रखो। वस्तु-स्थिति यह है कि जब त्रिमूर्ति पूर्ण हो गई, तो दूर-दूर के कलाकार स्थायी-मौलिक कलाकृति के रूप में इसे इस युग का चमत्कार मानेंगे। आजकल तो बाहर से आने वाले बहुत से यात्री लोग उसी रास्ते से धौली के पास अश्वत्थामा चट्टान देखने जाते हैं। पर जब त्रिमूर्ति पूर्ण हो गई, तो यात्री लोग त्रिमूर्ति के पास से होकर ही अश्वत्थामा देखने जाया करेंगे।"

जागरी और नीलकण्ठ आँखों-ही-आँखों में बाबा के विचार का समर्थन करते हैं।

बाबा धीर-गम्भीर स्वर में कहते हैं, "अश्वत्थामा चट्टान पर खुदा हुआ लेख मैं पढ़ नहीं सकता। पर उस पर हाथ फेरते हुए लगता है, परम्परा मेरे कान में गुनगुना रही है। तुम भी हाथ बढ़ाओ और कला का असीम विस्तार छू लो। हमारा इतिहास पत्थर के पन्नों पर लिखा है। हम उनके वंशज हैं, जिन्होंने पत्थर छीले और उस युग की बात लिख गए। तोषली नगरी के बारे में तो कहा जाता है कि उसके गगनचुम्बी भवन अशोक के राजगृहों से भी ऊँचे और बड़े थे, और दूर-दूर तक चले गए थे। युद्ध ने उसे धराशायी कर डाला।"

"फिर तो उसके खण्डहर भी लुप्त हो गए।" जागरी आँखें नचाकर थाप लगाता है, "बाबा के विचार तो पोथी में चढ़ने योग्य हैं।"

बाबा आकाश की ओर हाथ उठाकर कहते हैं :

"शान्ति है तो संसार है। संसार है तो भगवान् है। भगवान् है तो कला है।"

"क्या कलाकार ही भगवान् है ?" जागरी हँस पड़ता है।

दया नदी के तट पर घूमते समय चतुर्मुख कहते हैं :

"तुम बताओ, दया नदी ! कैसे थे अशोक—वे हमारे प्रियदर्शी ? तुमने तो उन्हें देखा होगा ? कैसे हुआ उनका हृदय-परिवर्तन ? तुम बताओ, दया नदी, तुम बताओ !"

"दया नदी क्या बोलेगी, बाबा ?" जागरी चुप न रहता, "मनुष्य को भविष्य के बारे में सोचने की मुसीबत है, बाबा ! पर दया नदी तो चुपचाप अपनी मंज़िल की ओर बढ़ती रहती है। वह कभी बुरा नहीं मानती। इसे तो किसी अलबीरा की तरह किसी नीलकण्ठ को चिट्ठी नहीं लिखनी होती।"

चतुर्मुख प्रसंग बदलकर अलबीरा के परिवार की कीर्ति-गाथा ले बैठते हैं :

"बुलके साहब हमारे मित्र हैं। उन्होंने ही नीलकण्ठ को लन्दन भिजवाया था। लन्दन में अपनी बुआ मिसिज़ आरनसेन के पास रहती है अलवीरा। अब देखो न ! बचपन में अलवीरा से नीलकण्ठ की भेंट हुई। फिर इकट्ठे लन्दन गये। पाँच बरस वहाँ इकट्ठे रहे। वैसे नीलकण्ठ ने रहने का अलग प्रबन्ध कर रखा था। अब एक-दूसरे को चिट्ठी लिखने में तो कोई बुराई नहीं। अलवीरा अच्छे परिवार की लड़की है। महायुद्ध के कारण बेचारी लन्दन में बहुत घबराती होगी। और यह महायुद्ध कौनसा एक दिन में समाप्त होने वाला है !"

नीलकण्ठ ने भूलकर भी नहीं सोचा था कि सोना उसकी वह पुस्तक हथिया लेगी।

मूर्तिशाला में मूर्ति गढ़ते हुए कल रात की दावत पर विचार करने लगा। सोना ने बार-बार वह प्रश्न दोहराया, "अलवीरा की चिट्ठी आई ?"

जागरी भुवनेश्वर जाकर चार पैसे देने वाला कोई यात्री ढूँढने के स्थान पर रूपक से पूछने लगा, "कच और देवयानी की इतनी सुन्दर मूर्ति कैसे बनाई ?"

नीलकण्ठ को अलवीरा की याद सताने लगी। उसने हँसकर कहा, "वह कच और देवयानी वाली मूर्ति अलवीरा को भिजवा दें तो वह समझेगी कि वह भी किसी देवयानी से कम नहीं।"

जागरी बोला, "वह देवयानी है तो तुम कच हुए।"

नीलकण्ठ को झेंपते देखकर बाबा ने कहा, "तुम भी मारो नहले पर दहला।"

"इतनी हिम्मत कहाँ से लाएगा नीलकण्ठ !" जागरी ने व्यंग्यपूर्वक कहा, "यह तो सोना की बातों का भी जवाब नहीं दे सकता।"

"वह कैसे ?" रूपक भी चुप न रह सका।

"तो सुनो," जागरी कहता चला गया, "कल रात इसे भोजन के लिए बुलाया, तो इसके हाथ में एक कला-सम्बन्धी ग्रन्थ था, जो सोना को भा गया। मैंने सोचा, देवर-भौजी की बात है। मैं बीच में क्यों बोलूं ?"

"तो उसे सोना काकी ने ले लिया ?" रूपक ने झट पूछ लिया।

"और नहीं तो," जागरी गम्भीर स्वर में बोला, "इसने सोना को वह चित्र दिखाया, जिसमें नेपोलियन के फरार होने का दृश्य दिखाया गया है। वही वाटरलू के युद्ध वाला चित्र। एक बन्द गाड़ी के आगे तेज़ चलने वाले दो घोड़े जुते हैं। पराजित सम्राट् बड़ी घबराहट की अवस्था में उस गाड़ी में प्रवेश कर रहा है। सम्राट् के मुख पर परेशानी दिखाई दे रही है। चारों ओर लाशें-ही-लाशें। बड़ा ही भयानक दृश्य है। उस चित्र को देखकर सोना ने कहा—कौन जाने कल ऐसा ही चित्र हिटलर का बनाना पड़े! हारने पर आता है, तो बड़े-से-बड़ा योद्धा भी हार जाता है।"

"यह तो सोना काकी ने मार्के की बात कही। ये क्या बोले ?" रूपक ने पूछ लिया।

"ये क्या बोलते ? चुप रह गए। सोना ने देखा कि शिकार चित गिर गया। बोली, अब यह पुस्तक मेरी हो गई। इन्होंने बहुत कहा, तुम क्या करोगी, भौजी ? पर सोना अड़ गई। बोली, पुस्तक मेरी हो गई।"

"और इन्होंने पुस्तक दे दी ?" रूपक ने कहानी की तह तक पहुँचना चाहा।

"दे क्या दी, देनी पड़ी।"

"वह कैसे ?"

"वह ऐसे कि उस पुस्तक में काँगड़ा कला का एक चित्र भी था, जिसमें एक रानी बाँदियों के झुरमुट में जड़ाऊ चौकी पर बैठी शृंगार कर रही है। यह चित्र देखकर सोना ने कहा—रानी के शृंगार का चित्र मैं सब सखियों को दिखाऊँगी। तुम्हारे पास तो यह चित्र रहना ही नहीं चाहिए। तुम्हारा दिमाग़ खराब हो जाएगा। नीलकण्ठ अवाक् होकर सोना की सूझ-बूझ की मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए बोला—रखने को रख लो यह

पुस्तक, पर यह तो मेरे बहुत काम की है।"

"फिर तो सोना काकी को वह पुस्तक नहीं लेनी चाहिये थी।" रूपक ने बीच-बचाव करना ही उचित समझा।

"मैंने कहा—नीलकण्ठ की पुस्तक उसे वापस कर दो। वह बोली—मेरा तो ख़याल था, नील अपनी अलवीरा को ब्याहकर ही लौटेगा। उसे वहीं क्यों छोड़ आया ?"

"तो नीलकण्ठ काका क्या बोले ?"

"उन्हें क्या बोलना था ? बोले—भौजी, अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। शायद मैं अलवीरा को समझा लूं। शायद वह मेरा ख़याल छोड़ दे। सोना बोली—और अगर उसने ख़याल न छोड़ा, और तुमने उसी को पत्नी बनाया, तो मैं यह पुस्तक अलवीरा को भेंट कर दूंगी।"

बाबा पत्थर कोरते हुए बोले, "अभी से ऐसी बातें करना ठीक नहीं। कहाँ बुलके साहब, कहाँ हम ! क्या बुलके साहब हमें समधी बनायेंगे ?"

जागरी ने हँसकर कहा, "अलवीरा ने जो फैसला कर लिया, उसे क्या बुलके साहब बदल सकेंगे ? कल रात जब नीलकण्ठ बात को टाल रहा था, तो सोना ने कहा—तो क्या तुम पत्थर की मूर्ति से ब्याह करोगे, नील ?"

नीलकण्ठ ने छेनी रोककर कहा, "क्या तुम्हें बाबा की ज़रा भी शर्म नहीं रही, जागरी ? बड़ों के सामने हर बात ऐसे की जाती है क्या ? रूपक भी तुम्हारे बारे में कैसी अच्छी राय बनायेगा ?"

देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं।

नीलकण्ठ बोला, "यह भी बताओ न, सोना भौजी पूछ रही थी कि उड़ीसा में लड़के ही कब तक रास-लीला में गोपियाँ बनते रहेंगे ? मैं ताड़ गया, सोना रास-लीला में राधा बनकर आना चाहती है। बोलो क्या कहते हो ?"

"मैं क्या कहूँगा ?" जागरी ने दायें-बायें देखते हुए कहा, "इसके लिए तो बाबा की सलाह चाहिए।"

बाबा बोले, "अभी यह बात न उठाओ। गुरुचरण को पता न चलने पाए, नहीं तो वह हर रोज़ यही रट लगाएगा।"

जागरी ने कहा, "मैं जानता था, बाबा कभी यह व्यवस्था नहीं होने देंगे कि भले घर की बहू रास-लीला में राधा बनकर उतरे। सोना का तो दिमाग़ खराब हो रहा है।"

"वह क्या कहती है ?" बाबा चुप न रह सके, "सोना पर मेरा प्रभाव है। मुझे पूछे बिना वह कोई ऐसा काम नहीं कर सकती।"

"बाबा को यह भी बताओ न कि सोना ने कल रात कितना सुन्दर नाच दिखाया !" नीलकण्ठ ने पत्थर कोरते हुए कहा, "बाबा, सोना ने वह बँगला गीत सुनाकर तो जादू कर दिया।"

बाबा बोले, "तुम्हें तो याद होगा वह गीत। ज़रा हो जाए, जागरी !"

"मैं सोना की तरह नाच तो नहीं सकता, बाबा ! गीत मैं सुना सकता हूँ।"

बाबा के आग्रह पर जागरी गाने लगा :

सखि लो आबार बसन्त एलो
एबार बसन्तेर हाउआ लेगेछे बीबीदेर गाये
पाका चूल फुर-फुर करे, दामाद ऐशे तुले देये
एबार बीबीदेर के मताइलो ?
एमन साड़ी के पराइलो ?
साड़ीर आँचला देख रे रंगीला
हेन साड़ी कोन रंगराज रंगाइलो ?

[सखि, लो फिर बसन्त आ गया। इस बार बसन्त की हवा दुलहिनों को लगी। हवा में फुर-फुर करते बालों में से पके-धौले, दामाद आकर खींच-खींचकर निकाल रहा है। इस बार दुलहिनों को किसने मस्त किया ? ऐसी साड़ी किसने पहनाई ? साड़ी का आँचल देख रे, रंगीले ! यह साड़ी किस रंगरेज़ से रंगवाई ?]

बाबा बोले, "नीलकण्ठ, तुम पाँच बरस बाद विलायत से लौटने की

खुशी में सोना को एक साड़ी भेंट करो। तब बात बने। सोना का यह अधिकार तुम्हें मानना चाहिए।"

नीलकण्ठ हँसकर बोला, "बाबा, जागरी से वह गीत भी सुनो, जो इसे सिखाया तो सोना ने ही है। उस बंगला गीत में प्रेमी अपनी प्रेयसी को उलाहना देता है कि उसके प्रेम में पड़कर मेरा हज़ार रुपये का नुकसान हो गया।"

"जागरी काका, वह गीत तो हम ज़रूर सुनेंगे।" रूपक मुस्कराया।

"कभी फिर सही।" जागरी ने टालना चाहा, "हम तो एक बात जानते हैं। भगवान् हमारे अन्नदाता हैं। हम तो भुवनेश्वर के मन्दिरों की कमाई खाते हैं। बस इसी तरह यात्री आते रहें। हमारा दाल-भात चलता रहे। भगवान् ने चाहा तो सोना को राधा बनकर रास-लीला में नहीं जाना पड़ेगा। गुरुचरण से तो मैं आज कहूँ तो वह खुशी-खुशी इस प्रस्ताव का स्वागत करेगा।"

बाबा बोले, "अभी यह प्रसंग न उठाओ। अच्छा तो वह पुस्तक सोना ने रख ली! तुम उसे साड़ी का उपहार दो, नीलकण्ठ! सोना के लिए वह पुस्तक व्यर्थ है। मैं उसे समझा दूँगा।"

"वह पुस्तक तो अब अलवीरा को ही भेंट करेगी सोना। उसकी ज़िद को मैं समझता हूँ।" जागरी ने ज्ञान बघारा, "पत्थर की मूर्ति तो नहीं नारी, कि छेनी के दो हाथ चलाकर मुख-मुद्रा ही बदल दी।"

नीलकण्ठ ने कहा, "अपने वाला वह गीत तो पीछे छूट गया जिसमें हज़ार रुपये के नुकसान वाली बात कही गई है।

जागरी गाने लगा :

अबूझ आमी नई हे वली,
तोमार साथे आमार भाव आछे।
तोमार साथ भाव करते आमार
आषाढ़ साउन चाष गेछे।
तोमार साथे भाव करते आमार

त्र-वैशाखे रौद गेछे।
तोमार साथे भाव करते आमार
हाजार टाका व्यय गेछे।

[प्रियतमे, तुम्हारी बातों को मैं नहीं समझता, ऐसा नहीं। तुमसे मेरा प्रेम है। तुम्हारे प्रेम में पड़कर आषाढ़-सावन की खेती चली गई। तुम्हारे प्रेम के कारण चैत्र-वैशाख की धूप चली गई। तुम्हारे प्रेम ने ही मेरा हज़ार रुपये का नुकसान कर दिया।]

बाबा बोले, "सोना तो देवी है।"

"हाँ, मेरा भी यही ख़याल है।" रूपक ने पत्थर कोरते हुए कहा, "सोना काकी हमारे जागरी काका के हज़ार रुपये पर पानी फेरने की बात तो सोच ही नहीं सकती।"

इतने में डाकिये ने आ एक चिट्ठी निकालकर नीलकण्ठ को देते हुए कहा, "सात सागर पार की चिट्ठी है।"

"इसकी मिठाई तो खाते जाओ!" नीलकण्ठ ने हँसकर कहा।

"इकट्ठी मिठाई खायेंगे।" कहते हुए डाकिया वैद्यजी की दुकान की ओर चल दिया।

धौली में सभी तरह के लोग बसते हैं। तुकें जोड़ते गायक। नाच-गाने के रसिया। हल्दी से मुँह पियराए ग्राम-वधुएँ। मेले की सखियाँ। ब्रह्म-ज्ञान के एक तारे। भविष्य पुराण के कथा-वाचक। सबसे ऊपर हैं कविराज असमेज महापात्र, जो दवा-दारू की पुड़िया बाँधना भूलकर रोगी को बताने लगते हैं, "रामराज में तो पत्थर भी तर जाते थे। पर आज फिरंगी का राज है। आज विदूषक ही फलते हैं। खलनायक ही पुजते हैं। सभी देवता कैसे बन सकते हैं? फिरंगी के राज में पैसे का ही ठाठ है। महाप्रभु भी बिक सकते हैं। देवता घूस लिया करते हैं। संकट है, भाई, संकट है। सचाई दूर भागती है।"

पास बैठा जागरी तुकें जोड़ने लगता है :

तप उठती है देह धूप से चू-चू जाता घाम।
कला-रागिनी राधा रानी धन्य मुरारी श्याम।
डगर-डगर पर खिले केवड़ा जीवन है सुख-काम।
दया नदी की नम साँसों में मिलता है आराम।
जागे प्राण तो बोले पत्थर मूक शिला नाकाम।
राह रोक कर खड़े कन्हाई वृन्दावन शुभ धाम।

मूढ़मते भज कलदारम् अब यही कलियुगी राम।
राह रोककर खड़ा फिरंगी, हिन्दुस्तान गुलाम।

जागरी लट्टू की तरह घूम-घूमकर नाचने लगता है। वैद्यजी हँस-कर कहते हैं, "तुम गुरुचरण की रास-लीला मण्डली में क्यों नहीं मिल जाते, जागरी ?"

नीलकण्ठ चुटकी लेता है, "क्यों गुरुचरण भाई, लेते हो जागरी को अपने साथ ?"

गुरुचरण व्यंग्य कसता है, "हाथी का बोझ तो हाथी ही उठा सकता है।"

वैद्यजी की दुकान से दूर नहीं, ब्रह्मा-विष्णु वाली चट्टान। ब्रह्मा हाथ में नटराज की मूर्ति लिये खड़े हैं। विष्णु ने चन्दा माँगने के लिए हाथ फैला रखा है। वैद्यजी मुस्कराकर बोले :

"चट्टान में केलू काका ने अपनी प्रतिभा द्वारा चतुर्मुख के पिता मूर्ति-कार उपेन को साकार किया। वह तो हमारे होश की बात है। उस समय कोई नहीं जानता था कि दस साल का चतुर्मुख बड़ा होकर केलू काका की इच्छा पूरी करने के लिए विष्णु के रूप में चन्दा माँगने वाले महात्मा गांधी का रूप दरसा देगा इसी चट्टान में। अब वह दिन शीघ्र आना चाहिए, जब नीलकण्ठ छेनी-हथौड़ा लेकर महादेव की मूर्ति बनाएगा।"

गुरुचरण ने कहा, "चट्टान का अपने-आप में कोई विशेष अर्थ नहीं, जब तक मूर्तिकार उसमें सोता सपना न जगा दे। बोलो, नीलकण्ठ ! कब शुरू करोगे अपना काम ?"

"ऐसी क्या जल्दी है ?" नीलकण्ठ मुस्कराया।

वैद्यजी बोले, "बँगला कविता में कवि कहता है :

घटे जा ता सब सत्य नय,
कवि, तव मन-भूमि रामेर जन्मस्थान
अयोध्यार चेये ढेर सत्य जेनो !

[जो भी घटना घटती है, वह सब-की-सब सत्य नहीं होती। हे कवि, तुम्हारी मन-भूमि तो राम का जन्म-स्थान है। वह तो जैसे अयोध्या से भी कहीं अधिक सत्य हो।"]

गुरुचरण ने बँगला कवि की भाषा बदलकर कहा :

"मूर्तिकार, तव मन-भूमि ब्रह्मार जन्म-स्थान !"

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर सारा धुआँ भीतर-ही-भीतर घोंट लिया। फिर नाक से धुआँ निकालते हुए बोला, "क्या सलाह है, नीलकण्ठ?"

"ये बातें सुनने में अच्छी लगती हैं।" नीलकण्ठ मुस्कराया।

वैद्यजी अपनी बात ले बैठे, "अखबार युद्ध की खबरों से भरा रहता है। पच्चीस बरस पहले एक महायुद्ध हुआ, जिसमें जर्मनी की हार हुई, और अब यह दूसरा महायुद्ध जर्मनी ने ही शुरू किया।"

नीलकण्ठ ने कुछ न कहा।

जागरी बोला, "बदले की भावना काम कर रही है।"

"एक-न-एक युद्ध तो चलता ही रहता है।" गुरुचरण भी चुप न रह सका, "कहीं एक-दो बम भुवनेश्वरपुरी और कोणार्क पर फेंक दिये गए, तो हमारी मन्दिर-कला एकदम नष्ट हो जाएगी।"

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "खण्डगिरि, उदयगिरि और धौलगिरि से भी शत्रु के बम कला की छाप मिटा सकते हैं।"

"फिर तुम कहते हो, मुझे त्रिमूर्ति पूर्ण करनी चाहिए!" नीलकण्ठ हँस पड़ा, "जो बन चुका उसके विनाश के बादल सिर पर गरज रहे हैं, तो ऐसी दशा में नये स्रजन की प्रेरणा कहाँ से आएगी?"

वैद्यजी गम्भीर होकर बोले, "स्थिति अच्छी नहीं, फिर भी त्रिमूर्ति तो पूर्ण करनी होगी। धीरज और शान्ति के साथ विचार करो। भुवनेश्वर और कोणार्क की कला जिस साधना का फल है, वह साधना तो निरन्तर चलनी चाहिए।"

गुरुचरण ने कहा, "कोणार्क का सूर्य-मन्दिर आज मूल-रूप में खड़ा होता, तो हमारा सिर और भी ऊँचा होता।

नीलकण्ठ बैठा अलवीरा की बात सोचने लगा। जब से वह लन्दन से लौटा है, उसकी पाँचवीं चिट्ठी आ चुकी है। उसने लिखा था : "मैं जीवित रह सकूँगी तो तुम्हारे प्रेम के कारण। मैं काँच की तरह यहीं टूट-फूट जाऊँ, तो मुझे भूल जाना। तुम्हारे प्रेम में इतनी डूब जाऊँगी, यह नहीं जानती थी। हमारी यह जुदाई कब तक चलेगी ? तुमसे तो कोई शिकायत नहीं, क्योंकि तुमने तो बहुत कहा कि हम इकट्ठे आये हैं तो इकट्ठे ही लौटें। मैं ही मूर्ख निकली। तुमने लिखा है, त्रिमूर्ति को हाथ नहीं लगाया। यह तो ठीक नहीं। नील, मैंने एक मूर्तिकार की पत्नी बनने के लिए ही जन्म लिया है। शत्रु बम बरसाता है। मेरी नज़र उस तरफ़ नहीं। मेरी नज़र तो अपने मूर्तिकार पर गड़ी है।..."

जागरी ने उसका कन्धा झंझोरकर कहा, "किस सोच में डूब गए ? त्रिमूर्ति कब पूर्ण करोगे ?"

"तलवार की धार पर चलते हुए क्या त्रिमूर्ति पूर्ण करने की बेला है ?" नीलकण्ठ ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा, "मृत्यु गली के द्वार पर खड़ी हो, और आप कहेंगे महादेव की मूर्ति बनाओ !"

जागरी ने कहा, "जितना डर अलवीरा को लन्दन में हो सकता है, उतना तुम्हें यहाँ कैसे होगा ?"

गुरुचरण की विचारधारा भी जैसे चाबुक लगने से घोड़े की तरह सरपट दौड़ पड़ी। उसने कहा, "तुम्हारी अँगुलियाँ महादेव की मूर्ति गढ़ने के लिए क्यों नहीं मचलतीं ? क्या बेकार बैठे रहना तुम्हें पसन्द है ? तो क्या मैं भी रास-लीला का काम छोड़ दूँ ?"

बैद्यजी रोगियों को दवा देते रहे।

नीलकण्ठ बोला, "वहाँ लन्दन में अलवीरा डर के मारे पीली पड़ गई होगी। युद्ध का तूफान उसे मथ रहा होगा। वह बच्चों की तरह रोने लग जाती होगी।"

गुरुचरण ने हँसकर कहा, "अलवीरा की कथा छोड़ो, त्रिमूर्ति पूर्ण करो।"

वैद्यजी ने अखबार की एक कतरन दिखाते हुए कहा, "टालस्टाय का इतिहास-सम्बन्धी यह विचार देखिए । टालस्टाय ने लिखा है—'नेपोलियन अथवा किसी राजा, सामन्त अथवा किसी भी एक व्यक्ति द्वारा तो इतिहास आगे नहीं बढ़ा है...' यह बात गाँठ बाँधने योग्य है कि इतिहास किसी एक व्यक्ति द्वारा रचा नहीं जा सकता, न एक व्यक्ति इतिहास बन सकता है ।"

जागरी हँसकर बोला, "जो हाल नेपोलियन का हुआ, वही हिटलर का न हुआ तो मेरा नाम बदल देना !"

वैद्यजी की दुकान के सामने पीपल के पत्ते हवा में तालियाँ बजा रहे थे । ब्रह्मा-विष्णु की मूर्ति वाली चट्टान के जिस हिस्से पर महादेव की मूर्ति बनाई जाने वाली थी, वहाँ मधुमक्खियों ने बहुत बड़ा छत्ता बना रखा था ।

आकाश पर चितकबरे बादल घूम रहे थे ।

वैद्यजी ने गुरुचरण की प्रशंसा आरम्भ कर दी । फिर पूछा, "अब के किधर जा रहे हो, गुरुचरण ?"

"कलकत्ता जाने का विचार है ।" गुरुचरण ने हँसते हुए कन्धे हिला-कर कहा, "आगे अन्न-जल की बात है, क्योंकि विचार बदल भी सकता है ।"

इतने में रूपक ने आकर नीलकण्ठ से कहा, "गुरुदेव बुला रहे हैं ।"

वैद्यजी हँसकर बोले, "उनसे कहो, आपको बुला रहे हैं । जाकर बोल दो, रूपक ! बोल दो, विचार कर रहे हैं, खिलवाड़ नहीं । आज सवेरे से यही प्रसंग चल रहा है कि नीलकण्ठ को शीघ्र ही त्रिमूर्ति पूर्ण करनी चाहिए ।"

जागरी ने कहा, "महादेव की मूर्ति किस रूप में होगी, नील ?"

"अभी कुछ सोचा नहीं ।" नीलकण्ठ मुस्कराया ।

गुरुचरण बोला, "भगवान् करे, तुम्हें प्रेरणा मिलते देर न लगे ।"

नीलकण्ठ ने कहा, "ऊपर आकाश, नीचे धरती, दोनों चाहते हैं कि त्रिमूर्ति पूर्ण हो । और अलवीरा भी बार-बार आँखों में प्रेम के आँसू

छलकाकर लिखती है, त्रिमूर्ति पूर्ण करो।"

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "तुम महादेव की मूर्ति बनाने में देर न करो। महादेव तुम्हारी जोड़ी बनायेंगे अलवीरा के साथ।"

इतने में चतुर्मुख आ निकले। वैद्यजी ने उन्हें बिठाते हुए कहा, "रूपक ने हमारी बात कह दी होगी।"

चतुर्मुख बोले, "आज सवेरे सपना देखते-देखते मेरी आँख खुल गई। मैंने देखा नील त्रिमूर्ति पूर्ण करने बैठ गया।"

सबकी नज़रें ब्रह्मा-विष्णु की मूर्ति वाली चट्टान की ओर उठ गईं, जहाँ मधुमक्खियों ने छत्ता लगा रखा था।

'काली माटी पर नाचता है मयूर !' जागरी मन-ही-मन बात करता है, 'देश गुणे वेश, गुरु गुणे शिष्य ! आकाश के लिए सीढ़ी नहीं है। बड़े लोगों की बात का उत्तर नहीं है।' फिर जैसे अपनी ही बात का उत्तर देता है, "पर ऐसे लोग हैं ही कितने, जिनकी बात चुपचाप सुन ली जाय ?"

जितने मुँह, उतनी बातें। भुवनेश्वर के मन्दिर देखने आते हैं देश-देश के यात्री। उनसे बातें करते जागरी की अच्छी 'ट्रेनिंग' हो जाती है। कभी-कभी वह झुँझलाकर सोचता है, 'आँखों वाले अन्धों की भरमार है। कानों वाले बहरे हर रोज़ सताया करते हैं। तीन लाख की तीन बातें—अपना-अपना भाग्य, सत्यमेव जयते, पापी को मारने को पाप महाबली है !' फिर बड़े शान्त भाव से कहता है, "तीन लाख की एक बात भी तो है—धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी, आपत काल परखिए चारी !"

वे सब सड़कें जागरी की कल्पना में घूम-घूम जाती हैं, जिन्हें वह देख आया। वे सब कथा-कहानियाँ, जिन्हें वह सुन आया, उसके मन में बसती हैं।

यात्रा की याद आती है, तो कल्पना की यात्रा-पोथी खुल-खुल जाती है, और उड़िया कवि की सूक्ति का ध्यान आये बिना नहीं रहता :

सर्वे निज-निज अभिनय सरी,
बाहुड़ीवे कालो वेले !

[सब अपना-अपना अभिनय चुक जाने पर अन्त समय बहुर आयेंगे।]

उत्तर-दक्खिन, पूरब-पच्छिम, पठार देखे, नदियाँ लाँघीं। पर्वत और घाटियाँ पैरों से नापीं। वन-कान्तार में प्रकृति का साहचर्य किया। समय मिलने पर आदिवासी भी देख लिए।

अब तो उस यात्रा को बहुत दिन हो गए।

अब यात्री उससे आकर मिलते हैं। उन्हीं के साथ उसका धन्धा बँध गया है।

तरंग में आकर वह यात्रियों को बताता है :

"रंगों में रंग देखे, मन के मानसरोवर देखे। कामरूप, कामच्छा बोले मीठी भाषा असमिया। काली घाट में बँगला चलती है। तमिल-भाषिणी कन्या कुमारी। काशी को हिन्दी प्यारी। बद्रीनाथ की भाषा न्यारी। जगन्नाथपुरी, कोणार्क, भुवनेश्वर की उड़िया।"

उड़िया भागवत की वह सूक्ति उसे प्रिय है : 'सकल तीर्थ तो चरणे, बद्रिका जीवी की कारणे ?' अर्थात् सकल तीर्थ तो तुम्हारे चरणों में हैं, महाप्रभु ! फिर काहे जाऊँ बद्रीनाथ ?

भुवनेश्वर के मन्दिर दिखाते समय जागरी अपने व्यक्तित्व की छाप लगाता है :

"कथा चाहिए कथा ! कथा की डुग्गी पिटती है। जगन्नाथ के दर्शनों को सुदूर नवद्वीप से चल पड़े थे महाप्रभु गोरा चाँद। रास्ते-भर यही रट लगाते रहे—'जगन्नाथ स्वामी, नयन पथ गामी !' जगन्नाथ के दर्शन करके उनकी टेर बाहर से भीतर आ बसी थी, और उनके कण्ठ से यह स्वर निकला—'जगन्नाथ स्वामी मम अन्तर्यामी !'"

धौली से चलकर सवेरे ही भुवनेश्वर रेलवे स्टेशन पहुँचना होता है। इस धन्धे में वह अकेला नहीं। पर उसके हिस्से भी चार यात्री आ जाते हैं। यात्रियों से पैसा ही नहीं मिलता। उनका अनुभव भी सहेज लेता है।

अदृश्य में हाथ फैलाकर वह सोचने लगता है : देव-कथा के खेवा-घाट पर आ लगे नाव, तो यात्री नौ-दो ग्यारह नहीं होता। बात-में-बात, जैसे केले के पात-में-पात।

कभी वह अपनी बात ले बैठता है, "मयूरभंज गयी थी मेरी बारात। वहीं से एक हाथी का प्रबन्ध कर लिया था, जिस पर मैं ज़री-पोशाक में राजा-दूल्हा बना बैठा था। ठाठ से विवाह हुआ और दुल्हन पालकी में आ बैठी।"

यात्री आँखें नचाकर कहता है, "यह तो बड़ी सरस कथा है।"

जागरी अपनी बात आगे बढ़ाता है :

"लौंग-लाची मुँह में डाले बैठी थी हमारी सोना। फूंक मारो तो आकाश में उड़ जाए। ऐसी तो न थी। मन की सच्ची, तन की इकहरी, गुण की गुथली। बात करे तो फूल झरें। मूर्ख प्राणी बोलते थे—मयूरभंज की राजनर्तकी की बेटी जागरी के घर से भाग जाएगी, और उसकी दुनिया में अन्धकार कर जाएगी। मयूरभंज की क्या बात है, बाबू ! वहाँ सोना का जन्म हुआ। वह तो आज भी मेरे साथ रहती है। क्या मजाल, वह धौली की कुल-मर्यादा का पालन न करे !"

"भगवान् करे, आपकी जोड़ी बनी रहे !" यात्री प्रसन्न मुद्रा में कहता है।

जागरी तुकबन्दी करने लगता है, जिससे यात्री ऊबने न पाए :

मूक स्वरों में बोलें पत्थर, गीतों का वरदान चाहिए।
मूर्तियाँ वरदान बनेंगी, शिव का सा विष पान चाहिए।
कथा खोलती मन की खिड़की, मिलती जन्म-जन्म की सार।
भुवनेश्वर में अनगिन मन्दिर, अनगिन देव-कथा के द्वार।

दिवस ढल गया। आज कोई यात्री हाथ न लगा। जागरी ने दम लगाकर कहा, "हे मन, बढ़ाओ दुकान ! घाटा भी लाभ का भाई है।"

हाथ से छूकर देखा, माथे पर चन्दन का लेप लगा था। जैसे वह इस नाटक का पात्र नहीं, दर्शक हो। गाँजा भी आज उधार लेना पड़ा। गाँजे के बिना नहीं चलता। खाली पेट रह सकता है, गाँजे के बिना नहीं। बैठा मन से बातें करता रहा, "चल रे बाट-बटोही मन, घर का रास्ता नाप। ओ रे खेवा की आस में बैठे मन-माँझी दादा, अब सब काम कल पर उठा रख।"

सिर चकराने लगा। थोड़ी खामोशी के बाद उसने मानो सड़क को सम्बोधित करते हुए कहा—"आज कोई मछली नहीं फँसी। जाल खाली रह गया। कल एक यात्री ने किसी सूफ़ी कवि की सूक्ति सुनाकर उसका मतलब समझाया—'मैं घास की तरह पैदा हुआ। मैंने सात सौ सत्तर रूप धरे हैं अब तक !'···पानी घाट से परे चला जाए तो नाव क्या करे ? वह चकमक तो नहीं जिसकी रगड़ से सूरज उग सके ! छाती का दूध सूख जाने पर माँ क्या करे ? कमल का सारा सौन्दर्य धरा रह जाता है, जब लोग उसके बीज भूनकर खा जाते हैं। सुन रहे हो न बाट-बटोही

मन ! आत्मा और दृष्टि के बीच चलता है कथा-मार्ग । कथा की जय ! कथा से कथा गले मिलती है । यों ही तो यात्री जेब से पैसे निकालकर हमारे हाथ पर नहीं धरता । कल मैंने उस यात्री को धौली वालों की दया नदी में निष्ठा की बात सुनाई । लाख गंगा-गोदावरी में नहान कर आओ, लाख कृष्णा-कावेरी में डुबकी लगा आओ, चाहे महानदी छोड़ सागर में नहान कर आओ, धौली लौटकर दया नदी में नहाये बिना तो गति नहीं है । लाख गया में पिण्ड-दान कर आओ, लौटकर पुरी में जगन्नाथ बाबा के दर्शन तो करने ही होंगे, ओ रे बाट-बटोही मन ! अपनी भी क्या दुनिया है, वही मूर्तियाँ, वही कथाएँ । बस यात्री बदलते रहते हैं ।"

जागरी का चमत्कार यही है । देवताओं को मनुष्यों की पांत में बिठाकर कहता है, "अब बताओ बेटा, तुम्हारी देव-भाषा क्या हुई ?" मनुष्यों को देव-पदवी देते भी उसे देर नहीं लगती ।

परसों एक महात्मा भुवनेश्वर देखने आये । बोले, "आप महायुद्ध से डरते हैं । बम का अर्थ क्रोध से लगाइए । बम से भी भयानक तो हमारा क्रोध है । होगा क्या ? यही सूरज रहेगा, यही धरती । शान्ति तो व्यापक दृष्टि में है । बम पर तो वही विजय पा सकता है, जो अपने पर विजय पा ले ।···"

घर की ओर चलते-चलते वह सोचता है—'टूरिस्टों के साथ नयी छाप की मुँह-फट लड़कियाँ बहुत आती हैं । 'एक्सक्यूज़ मी' की थाप तो पड़ती ही रहती है, क्यों रे मन-मांझी दादा ! ये लोग मूर्तियाँ कम देखते हैं, अपने साथ वालियों को ज़्यादा । चाल में मस्ती । आँखों में हँसी-ठठोली !'

कई यात्रियों को वह धौली के लोकनाथ मिस्त्री और गाँव-मुखिया पाँचू की कथा सुना चुका है ।

हाथीदाँत की नक्काशी वाला ऐसा पीढ़ा आज तक उड़ीसा में किसी ने नहीं बनाया होगा, जैसा धौली के लोकनाथ मिस्त्री ने बनाया ।

लोकनाथ ने यह पीढ़ा अपने बेटे अपूर्व की होने वाली दुल्हन के लिए बनाया है। अपूर्व की नज़र कोइली पर है, कोइली की इस पीढ़े पर। चतुर्मुख सोचते हैं, कटक के नये वकील हरिपद को कोइली के लिए जीवन-साथी चुनें।

हाथीदाँत के पीढ़े पर बैठने की लालसा पाँचू की बहू के मन में जाग उठी। पाँचू ने लोकनाथ को बुलाकर कहा, "कौन जाने अपूर्व का विवाह कब होगा। तब तक तो तुम ऐसे पाँच पीढ़े बना लोगे। यह पीढ़ा हमारी बहू के लिए हमें बेच डालो।" इस पर लोकनाथ बोला, "यह पीढ़ा मैं नहीं बेच सकता।" पाँचू ने कहा, "तो वैसे ही दे डालो।" लोकनाथ ने इन्कार कर दिया।

लोकनाथ पर पाँचू ने एक मुकद्दमा कर रखा है, कर्ज़ के सिलसिले में।

हैरानी है तो यही कि दोनों एक साथ पेशी भुगतने जाते हैं, एक साथ कचहरी से लौटते हैं। धौली वाले यह नहीं समझ पाते कि यह शत्रुता है या मित्रता।

चलते-चलते जागरी सोचने लगा, 'कोइली का विवाह अपूर्व से ही होना चाहिए, जो भुवनेश्वर के स्कूल में अध्यापक है। एक कवयित्री और एक अध्यापक की जोड़ी ठीक रहेगी।'

गाँजे का दम लगाकर धुआँ छोड़ते हुए उसने सोचा, 'आज सोना लड़ेगी। चार पैसे भी तो हाथ नहीं लगे।'

पाथुरिया गली के सिरे पर सोना और नीलकण्ठ लालटेन लिये खड़े थे। नीलकण्ठ ने हँसकर कहा, "पहले इसकी तलाशी लो, सोना भौजी, आज तो बहुत मछलियाँ फँसी होंगी।"

मुर्गे की बाँग के साथ चतुर्मुख उठ बैठे। अमृत वेला में उन्होंने उषा-दर्शन किया, और मन-ही-मन अपने शुद्ध संस्कारों को बधाई दी। नहा-धोकर वे अपने काम पर आ बैठे।

उन्होंने अपनी पत्नी को पुकारा, "अरे सुनो तो कोइली की दादी!"

कोइली की दादी पास आ गई। फूल चुनते-चुनते बोली, "आज फिर वही कथा कहोगे? मैं पूछती हूँ, ब्रह्मा की वह कथा कब तक तुम्हारी कल्पना का जंजाल बनी रहेगी?"

"तुम उस कथा को झूठ समझती हो?"

"झूठ नहीं तो क्या सच है? पत्थर में प्राण डालने की बात भी कभी सच हुई है?"

चतुर्मुख ने प्रसंग बदलकर कहा, "नारायण अब भी कलकत्ते से लौट आए, तो बड़ा मूर्तिकार बन सकता है।"

"वह दो पैसे कमा रहा है, यह बात तुम्हें बुरी लगती है?"

"जब नारायण यहाँ था, तो मैं सोचता था, मेरे हाथ में दो छेनियाँ हैं। चलो अब नीलकण्ठ आ गया। छेनी चलती रहे।"

"छेनी लाख चले, यह हमारी गाय की तरह दूध तो नहीं देती। मैं

तो कहूँगी, नीलकण्ठ को भी कलकत्ते में नौकरी ढूँढनी चाहिए।"

यह सुनकर चतुर्मुख एकटक कोइली की दादी की ओर देखने लगे, जैसे वे छेनी का काम पैनी दृष्टि से ले सकते हों। इस दृष्टि में कितनी कविता हो सकती है, उसी की ओर वे संकेत करना चाहते थे। फिर वे कोइली की दादी को निरुत्तर करने का अवसर हाथ से न गँवाते हुए बोले :

"अरे कोइली की दादी, मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया कि तुम चिन्ता छोड़ो। पैसा तो हाथ का मैल है। आया और गया। कला अमर है।"

"कला अमर है!" कोइली की दादी ने व्यंगपूर्ण हँसी की लहर उछालते हुए कहा, "यह सुनते-सुनते तो मेरे कान पक गए। ब्रह्मा की वह कथा तो मेरे मन नहीं लगती कि ब्रह्मा पत्थर के मनुष्य गढ़ते थे और उन मूर्तियों में प्राण डालकर कहते थे—जाओ अपना काम करो!"

चतुर्मुख ने गम्भीर होकर कहा, "मैंने पूरी कहानी कब सुनाई! आज सुन ही लो। इतना तो तुम्हें बता ही चुका हूँ कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा यह सोचकर चिन्ता में डूब जाते थे कि साधारण जीव-जन्तु तो संख्या में बढ़ रहे हैं, पर मनुष्य बहुत कम हैं। हाँ तो इससे आगे सुनो। ब्रह्मा को एक उपाय सूझ गया। पत्थर के मनुष्य गढ़कर उनमें प्राण डालते रहने से ही काम नहीं चलेगा, यह तो साफ बात थी। कुछ मूर्तियों में प्राण डालकर ब्रह्मा ने उन्हें शिष्य बना लिया और कहा—तुम भी पत्थर के मनुष्य गढ़ो। फिर क्या था, धड़ाधड़ मूर्तियाँ बनने लगीं! ब्रह्मा का काम यही था कि उनमें प्राण डालते चले जाएँ। ब्रह्मा के शिष्य आगे चलकर ब्रह्मा को तंग करने लगे—हमारे काम का मोल दो! ब्रह्मा बोले—यह तो मोल-तोल का खेल नहीं, आनन्द के लिए किया जाने वाला पुण्य कर्म है। कर्म करते चलो, इसी में आनन्द है। पर ब्रह्मा के शिष्य बिगड़ गए। उन्होंने मन लगाकर कर्म करना छोड़ दिया। बस यह समझ लो कि संसार में जितने भी लूले-लँगड़े और अन्धे-कुरूप मनुष्य हैं, सब-के-सब ब्रह्मा के उन असन्तुष्ट शिष्यों की रचना है।"

"मुझे तो यह कोरी गप लगती है।"

"तुम इसे गप कहती हो, कोइली की दादी ! एक दिन ऐसा भी आएगा जब मैं तो नहीं रहूँगा, पर मेरी बनायी हुई मूर्तियाँ रहेंगी। तब ये मूर्तियाँ तुमसे मेरे मन की बात कहेंगी।"

कोइली की दादी हँस पड़ी, और फूल चुनते-चुनते बोली, "तुम्हारे होते तुम्हारी मूर्तियाँ बोलने लगें तो मैं मानूँ !"

चतुर्मुख हवा में छेनी उछालते हुए बोले, "खिला हुआ फूल महक छोड़ता है। जोत से जोत का रूपक जागता है। ओस के मोती पीने के लिए नाग अपनी मणि छोड़ देता है।"

कोइली की दादी मुँह में उँगली दबाकर खड़ी हो गई। उसे अपने मूर्तिकार पति की बातें सदा के समान अपनी सूझ-बूझ से परे प्रतीत हो रही थीं।

"हम कह सकते हैं, कोइली की दादी—हे नागराज, तुमने अपनी केंचुली छोड़कर कहाँ का सुख पा लिया ? चाँद-सूरज के समान नित-नूतन है कलाकार की कल्पना।"

कोइली की दादी हँस पड़ी, "चाहे कोई कला को दो कौड़ी की भी न पूछे।"

"तुम यह बात कभी नहीं समझ सकोगी, कोइली की दादी ! विष कहता है—मैं सृष्टि के आरम्भ से ही अमृत हूँ; अमृत क्या है, यह मैं क्या जानूँ ? शिव का ताण्डव, शिव का डमरू तो मैं हूँ। मैं हूँ शिव के मन की गहराई। धरती और आकाश का जीवन, यह है मेरा सपना, मेरी छाया। प्रकाश के आँचल में बसती है मेरी श्यामवर्ण काजल-काया ! सुन रही हो, कोइली की दादी ? यह है विष की भाषा !"

"क्या यही है तुम्हारी मूर्तियों की भाषा ?"

चतुर्मुख हँस पड़े, और फिर गम्भीर स्वर में बोले, "मेरी मूर्तियों की भाषा तो अमृत की भाषा है। कला अमर है, कोइली की दादी ! ऐसी तो कोई शक्ति नहीं, जो आने वाले कल को डस जाए। हर कोई यह

कहानी सुनता आया है—सोई वीणा कौन जगाए ? तुम कहोगी, आज मैं कैसी बातें कर रहा हूँ ! जागती आँखों का सपना ही तो हैं चाँद-तारे, और इसी सपने में बजती है कलाकार की मन-मुरली। कलाकार तो यही कहता है—हे आने वाले कल की कल्पना, तू सचमुच आज की रागिनी है !"

"तुम आज मुझे दूध नहीं दूहने दोगे। लो मैं चली।"

"अरे रुको, कोइली की दादी ! क्या बसन्त, क्या पतझड़, ये तो ऋतु के चरखे पर साँसों के तार कात रहे हैं। अकल के स्वामी और अकल के अन्धे हैं कि हवा में कमन्ध फेंक रहे हैं। माटी से जन्मा मनुष्य और माटी में ही उसे मिलना है। फिर वह नये-नये ठिकाने क्यों ढूँढ़ा करता है ? यह किसी ने सच कहा है—दिल दरिया सागर से गहरे, दिल की बातें समझे कौन ?"

"लो मैं तो चली !" कहते हुए कोइली की दादी जाकर दूध दूहने बैठ गई।

कोइली ने पास आकर कहा, "बहुत दिनों से बापू की चिट्ठी नहीं आई, बाबा !"

"अब चिट्ठी तो तभी आएगी बेटा, जब वह डाली जाएगी।"

मटकी में दूध की धार 'धर-धर धाएँ, धर-धर धाएँ' गिर रही थी। चतुर्मुख अपने काम में मग्न हो गए।

गली में कोई गाता जा रहा था :

सेन वले कालु वीर चल स्वर्गवास
कालु वले जाइ यदि पाइ मदमास

[सेन कहता है—कालु वीर, चलो स्वर्ग में चलें···कालु उत्तर देता है—मैं चलूँगा, यदि वहाँ मदिरा और मांस मिलें।]

सेन वले सुधा भोगे राखिव सतत
कालु वले स्वर्ग के आमार दण्डवत

[सेन कहता है—मैं सदा सुधा-पान कराने का वचन देता हूँ।··· कालु उत्तर देता है—स्वर्ग को मेरा दण्डवत् प्रणाम।]

चतुर्मुख ने छेनी चलाते हुए सोचा, यह चड़क-पूजा का गीत है। जब वे अभी युवक थे, तो वे एक बार बालासोर ज़िले में चड़क-पूजा के मेले में सम्मिलित हुए थे, जो तेरह दिन तक चला था। वहाँ पच्चीस हज़ार प्राणी एकत्रित हुए थे। उन्हें लगा, जैसे आज भी वह मेला उनकी आँखों में घूम गया। उन्होंने मन-ही-मन कहा, "चड़क-पूजा के अवसर पर मदिरा और माँस का सेवन नहीं किया जाता।"

लाख पूस-माघ की ठण्ड हो, चतुर्मुख भोर में ही उठ बैठते हैं। सिर के बालों को झटकते हैं, घनी मूँछों पर हाथ फेरते हैं।

उषा-दर्शन उनकी साध रही है। आयु पैंसठ पार कर गई। वही नियम चला आ रहा है। किसी यात्री के मुख से भोर के लिए 'अमृत-वेला' की संज्ञा सुनी थी। तब से भोर में ही उठ बैठने की निष्ठा गहरी हो गई है।

"नीलकण्ठ, तुम भी सवेरे उठा करो।" चतुर्मुख चुप नहीं रह सकते, "भावनाओं की पुञ्जीभूत घुटन जब चेतना का रूप पा ले, तो कला बनती है, यह है मेरी मान्यता।"

"यह तो सभी मानते हैं।" नीलकण्ठ ने अपनी बात की छाप लगाई, "लन्दन में मैंने पाँच साल बिताए, मूर्ति-कला के नये शिल्प की साधना में, और सच जानो बाबा, मैंने खास ध्यान रखा कि वह बात न हो—गये थे चौबे बनने, दुबे भी न रहे।"

चतुर्मुख की मुख-मुद्रा खिल उठी, "अच्छे बेटे सदा अच्छे संस्कारों को साथ रखते हैं। हाँ, तो मैं कह रहा था, वयोवृद्ध प्राणी पीछे की ओर मुड़-मुड़कर देखते हैं; जो बीत गया, वही उनकी दृष्टि में स्वर्ण-युग था। युवक आगे की ओर देखते हैं, मानो भविष्य ही उनकी उषा की अगवानी करेगा। पर सच्चा कलाकार है 'आज' का पुजारी। बीत रहे छिन में ही सच्चा शिल्पी पाछल और आगल को संजोता है। यही शिल्पी का सत्य है, बेटा ! मैं कला के सत्य को स्थिर नहीं मानता। कला गतिमान है, बेटा, तो कला का सत्य भी गतिमान है। सात क़दम साथ चलने

से आदमी मित्र हो जाता है, पर पत्थर गढ़कर मूर्ति को इसकी भाषा देते देर लगती है। मैं कहता हूँ, मूर्ति गढ़ो, पर बहुत न गढ़ो !"

"यही तो मेरा फिरंगी गुरु भी कहता था लन्दन में !" नीलकण्ठ की आँखें चमक उठीं, "बहुत अधिक छील-छिलाई वही करता है, जो मूर्ति की ठीक-ठीक भाषा नहीं समझता।"

मूर्ति पर छेनी चलाना छोड़कर चतुर्मुख 'गीत गोविन्द' का पद अलापते हैं :

ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल कूजित कुंज कुटीरे ॥

"बेटा, कब तक छठी के राजा बने रहोगे ? महेश की मूर्ति गढ़कर त्रिमूर्ति सम्पूर्ण करो ।"

"इसके लिए तो मन के सात पाताल में उतरना होगा, बाबा, और यह काम इतना आसान भी नहीं ।"

"क्यों ? छठी का दूध याद आ रहा है ? कहो तो महेश-मूर्ति भी मैं ही बना डालूँ ?"

"नहीं बाबा ! वह तो मैं ही बनाऊँगा ।"

"तो फिर देर क्या है ? आज ही उसका श्रीगणेश होना चाहिए ।"

"आज नहीं ।"

"तुम्हारी इस 'आज नहीं' का कभी अन्त भी होगा ?"

चतुर्मुख हाथ वाली मूर्ति गढ़ते रहे । नीलकण्ठ पास ही बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था ।

सवेरे की धूप में चतुर्मुख और नीलकण्ठ के मुखमण्डल उज्ज्वल हो उठे थे ।

इतने में जागरी एक यात्री को साथ लिये हुए आ पहुँचा ।

"ये हैं हमारे अन्नदा बाबू, कलकत्ते से आये हैं ।" जागरी ने छूटते

ही परिचय कराया, "इनका हठ, मेरी मजबूरी। रात धौली में बिताई।"

"क्यों ?" नीलकण्ठ ने घबराकर कहा, "तो क्या इन्हें उस भुतही चट्टान के चक्कर में फँसा लिया था ?" और फिर वह अन्नदा बाबू की तरफ़ देखकर बोला, "तो दादा, सुन पाए वह छेनी-हथौड़े की ठक-ठक ?"

"कुछ सुनी और कुछ नहीं भी सुनी !" अन्नदा बाबू मुस्कराये, "जागरी को तो उसकी फीस देनी पड़ी। क्या आप लोगों का विश्वास है कि महाशिल्पी विशु मरने के बाद अधूरी मूर्ति को सम्पूर्ण करने की चेष्टा करते हैं ? रात का दस भुवनेश्वर में ही बज गया। रात गये वहाँ से चलकर धौली का रास्ता पकड़ा।"

"ये तो अकड़ गए थे।" जागरी ने विचित्र-सी मुद्रा बनाकर कहा, "साथ एक कम्बल ले लिया। इनके साथियों ने बहुत रोका, बहुत समझाया कि कभी-कभी पिशाच क्रोध में आकर अमंगल भी कर सकता है। पर मैं तो अन्नदा बाबू को यहाँ लाकर वह आवाज़ कानों से सुनाने के निर्णय पर डटा रहा। मैंने सोच लिया, इस काम के पाँच रुपये मिलेंगे। और यह रहा वह पाँच का नोट···"कहते-कहते जागरी ने पाँच का नोट निकालकर दिखाया

अन्नदा बाबू गम्भीर मुद्रा बनाये बैठे रहे।

चतुर्मुख बोले, "धन्य भाग हमारे जो अन्नदा बाबू पाथुरिया गली में पधारे !"

"उड़ीसा के पाथुरिया तो चिर-काल से पत्थर में प्राण डालते आए हैं !" अन्नदा बाबू मुस्कराये, "हमारा नमस्कार स्वीकार करो, बाबा !"

चतुर्मुख चश्मा साफ करते हुए बोले, "कभी इस गली में बहुत से पाथुरिया परिवार रहते होंगे। अब तो एकाकी पाथुरिया परिवार है हमारा। बस यह समझ लीजिए कि पाथुरिया गली की लाज रखने को हम बचे रह गए हैं।"

"नीलकण्ठ को आपने विलायत भेजकर नूतन मूर्ति-कला की शिक्षा दिलाई, यह तो बहुत अच्छा किया।"

"संयोग की बात है।"

"लन्दन की 'रायल अकाडेमी आफ़ आर्ट्स' की डिग्री जिसके पास हो, वह कोई मामूली मूर्तिकार नहीं हो सकता। नीलकण्ठ को तो कोई अच्छी-सी नौकरी मिल सकती है।"

"मैं नहीं चाहता कि नीलकण्ठ नौकरी करे। मेरा बेटा नारायण कलकत्ते में नौकरी करता है। पत्थर में प्राण डालने का धन्धा उसे पसन्द नहीं।"

"अब नीलकण्ठ तो सब कसर निकाल देगा।"

पास से नीलकण्ठ बोला, "बाहर जाकर मैंने एक बात महसूस की कि हमारी मूर्तिकला का अपना स्थान है कला-जगत् में।"

"ब्रह्मा और विष्णु को खड़े हुए दिखाकर आपने बहुत अच्छा किया।" अन्नदा बाबू मुस्कराये।

नीलकण्ठ ने सन्तोष की साँस लेकर कहा, "शिल्पी का मन यदि कला में ही रमा रहे, इससे बड़ा सौभाग्य नहीं।"

वैद्यजी आ निकले तो काव्य-चर्चा छिड़ गई। वे किसी पत्रिका से 'ग्राम-पथ' शीर्षक कविता उच्च स्वर से सुनाने लगे :

दूर ताल-बन नील गगन से कहता
माटी की कविता।
यही ग्राम-पथ दूर क्षितिज की
बाँहों बीच कसा है।
एक खेत के परे दूसरा खेत विराजे
काँस फूल और खस से जकड़ी
बंजर धरती, पार—वनों से आगे
मामा का ग्राम बसा है।

पथ से सटा हुआ है अरहर और चने का खेत
गायें चरतीं चरागाह में—वंशी-स्वर समवेत

सेमल की फुनगी पर बैठी
रोती एक कपोती—
उठ जा बेटा सूरा
मारण हो गया पूरा
कहती कमल पोखरी नहा लो
पक्का घाट बना है

यहाँ कुलवधू पायल माँजा करती है
खुली हुई वेणी मेथी में सान के धोया करती है
नणद नवेली एक गाल पै हलदी मलते
हिलते जल में अपनी ही परछाई देखा करती है

'पोई' लता, लता कुम्हड़े की
पार कर गई घर का माथा
सहजन से झरते हैं फूल
अपराजिता, बाड़ पै भूल

इसी राह से आती दुलहन उषा-स्नान के बाद अकेली
धूल पै गीले चरणों की खिंचती जंजीर-सी एक
उसे पुकारूँ माँ कहकर, है अपने दिल की टेक
धरती-सी सब सहती
सेवा में खोई रहती
दो नयनों में किस ने लिख दी
किस-किस युग की दर्द कहानी ?

इसी राह से जाता ग्राम-युवक परदेस
नव-विवाहिता राह देखती, मैला भेस

क्या सन्देसा लाया है तू कागा रे,
खाने के लोभी कागा रे ?
क्या इस गाँव की देवी माता
जान सकी विरहन की गाथा ?

इसी राह से ग्राती दुलहन मधुमय स्वर सरसाती
छोड़ के बेटा-बेटी, नाती-नातिन
इसी राह मरघट को जाती।
ग्राने वालों का साक्षी है पथ प्राचीन
जाने वालों का भी इस से परिचय है।

चाँद इसी पथ में पिघली चाँदी फैलाकर
ग्राम-युवतियों के स्वर में भरता है स्वर
इसी राह से धान-खेत को जाता छैला, रात जागने
चला जा रहा राह किनारे बादल-छाया लगी भागने

इसी राह से कन्या जाती ग्रपने घर
खेल की गुड़िया दुलहन बनती
माँ का ग्राँचल करती गीला
पथ की महिमा लिखती सौ जन्मों की लीला
छाती फटती रोती काया
दाता, तेरी कैसी माया !

यहाँ धूल पर नगन बाल-सी
गाँव की राह पड़ी सोती है।
नीलाम्बर के छाया-पथ-सी
निर्झर के उस पार स्वर्ग की सीमा लगती

चला जाय जैसे संन्यासी बाँट के करुणा-धारी

मैं तेरी पूजा करता हूँ, ओ री ग्राम-डगर !
बाल्यकाल की प्रिय सहेली !
याद हैं वे मधुकुंज, स्नेह से स्नेह मिला
तेरी काया में ममता का फूल खिला
बाँस-बनों की चाह नवेली ।
थके-थके-से प्राण, मिले विश्राम ।

दुख देते हैं नित-नित के ये भिक्षुक प्राण
मैंपाथेय-विहीन पथिक बेबस अनजान
दुर्वह यात्रा सिर पै आई चलना है नादान
'राम नाम सत्य है' वाणी मुखरित करते
हाय एक दिन मरघट को करना होगा प्रस्थान
बोलो कब ? बोलो कब ?[1]

अन्नदा बाबू बोले, "वह कहावत तो सुनी होगी—तिलंगा का केश, बंगाली का वेष । उड़ीसा का माई, बनारस का गाई ।"

नीलकण्ठ ने कहा, "लन्दन-प्रवास में ग्राम-पथ के साथ कुलवधू का अनादि अनन्त सम्बन्ध याद करते हुए मन सिहर उठता था ।"

"हमारी जीवन-यात्रा में ग्राम-पथ एक प्रतीक है ।" अन्नदा बाबू ने व्याख्या करना उचित समझा ।

वैद्यजी बोले, "हमारी दृष्टि में कवि यह कहना चाहता है कि पुरातन प्रतिपल नूतन बन रहा है ।"

"आप तो कवि के अन्तरतम में पहुँच गए ।" अन्नदा बाबू ने मुस्करा-कर कहा, "शरत् बाबू ने लिखा है—'ईश्वर न करे, यदि किसी दिन संसार में नारियाँ विरल हो जाएँ, तो उस दिन इस बात का पता लग

१. उड़िया कवि विनोदचन्द्र नायक की एक कविता का स्वतन्त्र हिन्दी रूपान्तर ।

जाएगा कि इनका यथार्थ मूल्य क्या है···ग्रभी तो वे सुलभ हैं।' मेरे विचार में यही बात ग्राम-पथ के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।"

चतुर्मुख छेनी चलाते रहे, जैसे उनकी छेनी भी ग्राम-पथ पर चलने वाली नारी हो। पास ही ग्रन्नदा बाबू, वैद्यजी ग्रौर नीलकण्ठ की विचार-गोष्ठी चलती रही। ग्रन्नदा बाबू बोले, "शरत् बाबू ने लिखा है—'जब नारी के लिए सोने की लंका नष्ट हो गई, ट्राय-राज्य विध्वंस हो गया, ग्रौर भी छोटे-बड़े न जाने कितने राज्य ग्रब तक नष्ट हो चुके होंगे जिनका वर्णन इतिहास ने लिपिबद्ध नहीं कर रखा है, तब नारीत्व का साधारण मूल्य किस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है ?···तुम्हारी स्लेट में जगह ही कितनी है, जो तुम उसका मूल्य ग्रंकों में निकाल सकोगे ?' ग्राप क्या कहते हैं, वैद्यजी ?"

"मैं तो मानता हूँ कि नारी का मूल्य मात्र रूपसी होने से नहीं।" वैद्यजी कहते चले गए, "वह कितनी सेवा-परायणा ग्रौर स्नेहशीला है, कितना कष्ट सहन करते हुए भी मौन रहती है ! ग्रौर फिर सबसे बड़ी बात तो ग्राचरण की पवित्रता है। रामायण, महाभारत, पुराण पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि नारी के लिए सतीत्व ही सर्वश्रेष्ठ गुण है।"

चतुर्मुख भी चुप न रह सके। बोले, "मैं कहता हूँ, नारी तो मातृत्व के कारण ही पूजनीया होती है। शंकराचार्य न जाने किस झोंक में कह गए कि नारी नरक का द्वार है। मैं उनकी बात नहीं मानता।"

ग्रन्नदा बाबू बोले, "शरत् बाबू ने ग्रपने उस निबन्ध में लिखा है कि नेपोलियन ने एक दिन मैडम कण्डोरसेट से कहा—'मैं नहीं चाहता कि नारी राजनीति में हस्तक्षेप करे।' ग्रौर इसके उत्तर में मैडम ने कहा—'ग्रापका यह कहना तो ठीक है, सेनापति महोदय ! पर जिस देश में स्त्रियों के सिर काटने की प्रथा हो, उस देश में यह बात स्वाभाविक है कि स्त्रियाँ भी यह जानना चाहें कि हमारे सिर क्यों काटे जा रहे हैं ?'"

नीलकण्ठ ने हँसकर कहा, "बात तो ग्राम-पथ की चल रही थी। हम उससे बहुत दूर निकल ग्राए।" नारी का प्रसंग एकदम बन्द हो गया।

अन्नदा बाबू चले गए, पर अपनी याद छोड़ गए। वैद्यजी से सुनकर हितोपदेश का वह श्लोक उन्होंने झट अपनी डायरी में उतार लिया था। जाने क्यों?

उस श्लोक में कहा गया था—नदियों का, जिनके हाथ में हथियार हों उनका, नख वालों का, सींग वालों का, स्त्रियों का, और राजकुल के लोगों का विश्वास नहीं करना चाहिए। श्लोक की भाषा कितनी नपी-तुली थी :

> नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां यथा।
> विश्वासो नैव कर्तव्य: स्त्रीषु राजकुलेषु च ।।

नीलकण्ठ सोचता—अलवीरा पर अविश्वास करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वह भुवनेश्वर तक अन्नदा बाबू के साथ गया था, और उसने उन्हें अलवीरा की कथा कह सुनाई थी। काम में मन न लगने की बात भी उसने छिपाकर नहीं रखी थी।

अलवीरा की मुख-छवि याद आती है, जैसे फूलों की सुगन्ध हवा में गमकती है। लय और प्रवाह में बँधे छन्द-सी याद आती है, जैसे आत्मा के द्वार पर खड़ी हो अलवीरा।

यहीं तो मिली थी पहले-पहल, इसी ग्राम-पथ पर। मुक्तकुन्तला अँग्रेज़-कन्या। धौली का ग्राम-पथ। मानस-क्षितिज पर स्वप्न-माया के समान आ मिली थी अलवीरा। पर तब तो बचपन था। वह भुवनेश्वर आयी थी, कलकत्ते से, अपने माता-पिता के साथ। तब किसे पता था कि बड़े होकर एक साथ लन्दन जायेंगे हम दोनों !

भगवान् ने सोचा—एकोऽहं बहुस्याम् ! मैं भी तो यही सोचता हूँ। मैं एक हूँ, मैं अनेक हो जाऊँ !···वह मंगल-मुहूर्त्त कब आएगा ? अविश्वास की बात मैं नहीं स्वीकारता। अलवीरा पर अविश्वास करूँ ? अलवीरा मेरी लय है, वही मेरी गति है। पर यह बात बाबा से कैसे कहूँ ? वे इसे समझेंगे ?

ग्राम-पथ आज भी चल रहा है। यह तो चलेगा ही। कोई कविता इस पर करे चाहे नहीं। अलवीरा यहाँ से दूर है। उसके नीले रेशमी रिबन यहाँ नज़र नहीं आ सकते। ग्राम-पथ को उसकी क्या चिन्ता ? जो है, सो ठीक है। इतने जनों के बीच मैं अकेला हूँ।

आज भी लोक-कथा शेष होने पर कहा जाता है :

मो कथाटि सइला, फुल गछटि मइला
हइरे फुल गछ तु काहिंकि मलु ?
मोते काली गाई खाई गला।
हइलो काली गाई, तु काहिंकि खाई गलु ?
मोते गउड़ जगिला नाहि
हइरे गउड़ तु काहिंकि जगिलु नाहिं ?
बड़ बोहु भात देला नाहिं
हइलो बड़ बोहु तु काहिंकि भात देलु नाहिं ?
पुत्र कान्दिला।
हइरे पुत्र तु काहिंकि कान्दिलु ?
मोते धूलिया जन्दा कामुड़ि देला
हइरे धूलिया जन्दा तु काहिंकि कामुड़ि देलु ?

मुं माटी तले तले थाए
कंअल माउंस पाइले रटकार कामुड़ दिए।

[मेरी कथा शेष हुई। फूल गाछ मर गया। ओ रे फूल गाछ, तू क्यों मर गया? मुझे काली गाय खा गई। ओ री काली गाय, तू क्यों खा गई? मुझ पर ग्वाले ने चौकसी नहीं रखी। ओ रे ग्वाले, तूने क्यों चौकसी नहीं रखी? बड़ी बहू ने भात नहीं दिया। ओ री बड़ी बहू, तूने भात क्यों न दिया? बेटा रो पड़ा। ओ रे बेटे, तू क्यों रो पड़ा? मुझे काली चींटी ने काट खाया। ओ री काली चींटी, तूने क्यों काट खाया? मैं माटी तले रहती हूँ। जहाँ भी कोमल मांस देखती हूँ, काट खाती हूँ।]

कितनी दूर तक हम एक-दूसरे साथ बँधे हैं! जब-जब कथा शेष हुई, फूल गाछ मर गया। क्या हर बार काली गाय ही फूल गाछ को खा गई? पहले ग्वाले का दोष सामने आता है, फिर बड़ी बहू का। बड़ी बहू कहती है—बेटा रो पड़ा। बेटे को हर बार काली चींटी ही क्यों काट खाती है? काली चींटी का उत्तर कितना पैना है कि वह माटी तले रहती है और धरती पर जहाँ भी कोमल मांस पाती है काट खाती है। पिछले पत्र में नीलकण्ठ ने उड़िया शिशु-गीत का यह बोल लिख भेजा था, और पूछ लिया था, "क्या तुम्हें याद है कि काली चींटी ने तुम्हें भी काटा था?"

अलवीरा की याद आती है, तो नीलकण्ठ सोचता है—मैं क्यों अकेला चला आया?

अब अलवीरा लोक-कथा की सोती राजकुमारी होती, तो नीलकण्ठ अवश्य पक्षीराज घोड़े पर चढ़कर उसकी खोज में चल पड़ता। लन्दन-प्रवास के दिनों में अलवीरा कई बार मिश्र की महारानी किलयोपेट्रा की कथा ले बैठती थी, जिसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध था कि आयु का भार उसकी मुखश्री पर बिलकुल नहीं पड़ता और न अति परिचय के कारण उसकी लावण्यमयी मूर्ति का जादू कम होता है। इस दृष्टि से तो स्वयं अलवीरा भी दूसरी किलयोपेट्रा थी।

मूर्ति में उसका मन नहीं लगता था। न कौशल काम देता, न कल्पना उद्दाम धारा बनती। एक अलवीरा के बिना सब अपूर्ण था। अब यह बात न बाबा से कहने की थी न दादी से। यह दूरी कैसे कम हो? उसका एकाकी मन किसी सहधर्मिणी के लिए आकुल हो उठा। अलवीरा का पत्र आता तो लगता, अलवीरा ने उसके गले में वरमाला डाल दी। यह बात सोना से कहता, तो वह जाने कैसे-कैसे मज़ाक करने लगती।

उसके मन में पुरातन और नूतन में युद्ध हो रहा था। सोना को उसका भी पता था। सोना समन्वय की सलाह देती।

"अलवीरा का मायास्पर्श तो पीछे छूट गया, सोना भौजी!" नीलकण्ठ असमर्थता के स्वर में कहता, "पत्थर की शोभायात्रा आगे कैसे चले?"

"तो उसे लेकर आये होते, नील!" सोना इससे अधिक न कह पाती।

"पत्थर की आत्म-घोषणा को खूब समझती है अलवीरा। काश वह इस समय यहाँ होती!"

"जब तक वह नहीं आती, मूर्ति बनाओगे ही नहीं?"

"उसके बिना पत्थर का आह्वान कैसे सुनूं?"

कई दिन उसने छेनी-हथौड़ी को हाथ न लगाया। पत्थर मूर्तिकार को बुलाता रहा और पत्थर की पुकार अनसुनी कर दी जाती।

आज अलवीरा का पत्र आ गया। नीलकण्ठ का मन-मयूर नाच उठा।

'कितनी लीलामयी है अलवीरा!' उसने मन-ही-मन कहा, 'युद्ध की कथा तो आटे में नमक के बराबर भी नहीं। बमों के धमाकों में भी कला का प्रसंग तीन पन्नों में फैला रहता है।'

वह चिट्ठी पढ़ने लगा :

"पीछे अतीत, आगे अनागत। दोनों के बीच खड़ा होकर सोचता है आज का आदमी। कलाकार भी उन्हीं में से एक है, अलग नहीं।

"मैं तो मूर्तिकार नहीं, तुम हो। पर इतना तो मैं भी समझती हूँ कि पत्थर के प्राण बोलें, यह ज़रूरी है। शायद तुम्हें मेरी बातों में

अपनी ही बातों की गूंज सुनायी दे। अपनी भाषा में कहती हूं। सुनो। कला के आसन पर जगह पाने के लिए पत्थर में अलक्ष्य अनुभूति ढालनी होगी।

"इसके लिए इलियट की कविता की शरण लेनी होगी।

"उस कविता की बात कर रही हूँ, जिसमें तीन सीढ़ियों की चर्चा है। तीन सीढ़ियाँ और त्रिमूर्ति। शायद इनमें कोई मेल बिठाया जा सके। इस कविता में कवि शायद यह कहने की चेष्टा करता है कि ज्यों-ज्यों हम परम सत्य के समीप पहुँचते जाते हैं, दुनिया के अनिवार्य आकर्षण हमारी अन्तर्दृष्टि को अपने माया-जाल में उलझाने को मुँह बाए खड़े रहते हैं। पहली सीढ़ी पर चढ़ते समय मानो कवि को कोई प्रेतात्मा दीख जाती है। सचमुच चहुँ ओर वासना साकार होकर हमारा मार्ग रोके खड़ी है। हम उन जहाज़ों की तरह हैं, जो सागर पर चले जा रहे हैं, मंज़िल का पता नहीं।

"लन्दन की टेम्स नदी को देखती हूँ, तो धौली की दया नदी की याद हो आती है, भले ही दया नदी धौली से थोड़ा हटकर बहती है।

"इलियट मनुष्य-जीवन को निर्जन प्रदेश में पड़ी चट्टान की छाया कहता है। नीलकण्ठ, यहाँ मैं इलियट के साथ सहमत नहीं हो सकती। मैं कैसे मान लूं कि इस चट्टान का आभास मात्र होता है और वास्तव में यह कुछ भी नहीं है?

"मैं आशा करती हूँ कि युद्ध शीघ्र समाप्त होगा, और मैं जहाज़ में बैठकर कलकत्ते के लिए चल पड़ूँगी।"

उड़ती चिड़िया को पहचानता है धौली। पैसा गाँठ का, बेटा आँत का। जो धान और ईख की खेती में लगे हैं, वे क्या जानें पाथुरिया की कला! गुरुचरण रासधारी है, मायाधर कसेरा। करघे वालों को अपना धन्धा प्रिय है। गगन महान्ती भुवनेश्वर के हैडमास्टर हैं। पाँचू गाँव-मुखिया और लोकनाथ मिस्त्री में मुकदमा चल रहा है। पर बड़ा विचित्र मेल और दुराव है उनमें। एक साथ कचहरी में पेशी भुगतने जाते हैं, एक साथ कचहरी से धौली लौटते हैं।

जागरी की खेती है भुवनेश्वर के यात्रियों की कृपा-दृष्टि। वह उस हवा को धन्यवाद देता है, जो यात्रियों को इधर उड़ा लाती है।

अपने अड्डे पर बैठे चतुर्मुख पहले के समान ही फिरंगी के 'पर्वत-प्रमाण दम्भ' की खिल्ली उड़ाते हैं।

धौली की स्त्रियाँ पहले की तरह ही कौशल्या पुखरी की सीढ़ियों पर कपड़े धोती हैं और स्नान करती हैं। आज भी सोना अण्डों की सफेदी में दूध मिलाकर, केशों को धोकर घुँघराले बनाने का नुसखा धौली की बहू-बेटियों को बताती है, जिसे वह मयूरभंज से साथ लाई थी।

सोने वाले अपनी-अपनी नींद सो-सोकर उठते हैं। यहाँ ऐसे लोग

भी रहते हैं, जो सुनते अधिक हैं और बोलते कम हैं। वे जानते हैं कि भुवनेश्वर में देश के हर प्रान्त के लोग आते रहते हैं, विदेश के लोग भी आ निकलते हैं। अश्वत्थामा चट्टान का शिलालेख देखने कुछ लोग धौली भी चले आते हैं। किसी-न-किसी यात्री के मुँह से इतिहास के किसी पन्ने का बोल निकलता है :

"पानीपत के मैदान को क्या कहें, जिसने मराठों की किस्मत पर ऐसी मुहर लगा दी कि फिर वे पनपने न पाए। उधर उस अब्दाली पठान ने हिन्दुस्तान के तख़्त पर कन्धार के अनार को तरजीह दी और जंग जीतकर भी एक बनी-बनायी सल्तनत बेख़बरी में अंग्रेज़ के हवाले करके ख़ुद वतन को लौट गया!"

किसी यात्री के मुख से कोई ऐसा बोल निकलता है :

'वे गलियाँ याद आती हैं जवानी जिनमें खोई है!'

कौशल्या पुखरी की सीढ़ियों पर कपड़े धोती और स्नान करती स्त्रियाँ अपनी बातों में बाहर से आने वालों के चेहरे-मुहरे और लिबास की चर्चा के साथ-साथ उनके पेशे और विचारों को भी समेटने का यत्न करतीं और बीच-बीच में गाँव की बातें छिड़ जातीं।

"कोइली और अपूर्व की जोड़ी कैसी रहेगी?" कोई बहू पूछ बैठती है।

"तुम तो, बहन, पाँच महीने पहले का सपना ही देख रही हो," दूसरी संग-सहेली चहक उठती है, "अरे अब तो सुनते हैं, कोइली का बड़ा ठाठ होगा। कटक में होगी उसकी ससुराल। लड़का वकील है।"

पास से कोइली हँस उठती है, जैसे उसे न किसी अपूर्व में दिलचस्पी हो, न किसी वकील में।

कोई पूछती है, "बहन, पानीपत का मैदान यहाँ से कितनी दूर है, जहाँ कई-कई लड़ाइयाँ लड़ी गईं?"

"हम किसी पानीपत को क्या जानें?" पास से कोई कह उठती है, "हम तो इस तोषली के मैदान को जानती हैं, जहाँ अशोक ने कलिंग की लड़ाई लड़ी थी। उस समय तक तो पानीपत का नाम भी नहीं सुना

होगा किसी ने !"

"पुरानी बातों में क्या रखा है ?" फिर किसी की आवाज़ आई, "कौन जाने हिटलर के बम कलकत्ते पर भी बरसें, जो अंग्रेज़ों का गढ़ है और बहन, कलकत्ते से धौली कितना दूर है ? अनाज के साथ घुन भी पिस जाएगा।"

कुछ क्षण तक ऐसा प्रतीत हुआ कि इन चुस्त वाक्यों की थरथरी-सी वातावरण पर छा गई।

फिर स्त्रियों में यह प्रसंग चल पड़ा कि नीलकण्ठ विलायत से लौटकर नौकरी पर क्यों नहीं गया ?

कौशल्या पुखरी के जल पर सूर्य की किरणें नाच रही थीं। लगता था, पिघली हुई चाँदी की झील दूर तक चली गई है।

कोई कमर लचकाती है, कोई गरदन मटकाती है। उनकी बातें गुदगुदाती हैं। आँखों में चमक आ जाती है। जैसे कथा का राजकुमार सात सागर तेरह नदियाँ पार करता हुआ चल पड़ा हो, सौ साल की नींद सोने वाली राजकुमारी को जगाने के लिए। उनके हाव-भाव देखते ही बनते हैं। शब्दों का आरोह-अवरोह रस-विभोर कर जाता है। एक-एक शब्द पर धौली की छाप रहती है। इतिहास-भूगोल के तर्क यहाँ नहीं उठाए जाते। 'फिर क्या हुआ ?' के ताल पर कथा चलती रहती है। जिस विश्वास के सहारे सावित्री ने यम का पीछा किया था, उसी के बल पर धौली की कथा जाने किस महापरिणाम की ओर पग उठाती है। इसमें सम्भव-असम्भव, मेल-अनमेल और सत्य-असत्य की अजस्र धारा बहती रहती है। इसी में कथा के पात्र साँस लेते हैं।

समय कितना भी बदल जाए, धौली के लिए कथा ही प्रेरणा का आदि-स्रोत है। कथा के साथ सदा मन का मेल रहेगा। कोमलता बड़ी विशेषता है, जो यथार्थ, कल्पना और सुझाव के त्रिवेणी-संगम से आती है। धौली का ढंग यही है—थोड़े शब्द, थोड़े चित्र, थोड़े संकेत; जैसे संकल्प, साधना और संस्कार से कथा बुनी जा रही हो। अनावश्यक

वर्णन नहीं खप सकते। सुझाव ही मूल-वस्तु है।

भले प्राणी को संकट के पश्चात् सुख मिलता है और बुरे को दुराचरण का फल मिलकर रहता है। इस बात ने जाने सर्वप्रथम किस युग में धौली के मन में घर कर लिया था।

बुढ़िया नानी शिशु के तलवे सहलाकर जाने कब से उसे सुलाती आई है। भाषा मँजती जाती है। लोकप्रियता बिखरती है। कथा आधार बनती है। पर वही कथा टिकती है, जो रोचक हो। कथा में ही धौली की आकांक्षाओं का आभास विद्यमान है। पुरानी होकर भी कथा नित-नई है, कथा ही प्राणधारा है, कथा ही भावभूमि। सुख-दुःख, प्रीति-शृङ्गार, वीरता-शत्रुता—इसी खाद ने सदा कथा को पुष्ट किया है। रहन-सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, पूजा-उपासना, यही धौली की कथा का ठाठ है। कथा में धौली की आत्मा पनपती है। इसी में धौली की आशा-आकांक्षा जागती है।

प्रायः इस प्रकार बात चलाते हैं कि उत्तर में कोई कथा आरम्भ हो जाए। खेत-खलिहान में आज भी किसानों की मार से पीड़ित बैलों की वेदना से आँसू बहाती गौमाता की कथा कही जाती है।

नीलकण्ठ सोचता है—'मेरे जैसे कई आये और गये, पर धौली अपनी कथा में उसी तरह हँसती-रोती है।'

वैद्यजी रोगी के हाथ में दवा की पुड़िया थमाते हुए अनागत विधाता, प्रत्युन्नमति और यद्भविष्य नामक तीन मछलियों की कथा कहने में रस लेते हैं। मित्र-मण्डली में बैठकर वैद्यजी समझाते हैं, "हमारे मन पर क्रमशः कथा की नई तहें जमने लगती हैं। कोई-कोई कथा तो हमारे फेफड़ों को नई साँसों से भर जाती है।"

नीलकण्ठ छेनी की धार की तरह कथा के कथोपकथन की धार देखकर प्रसन्न होता है। वैद्यजी उसे बताते हैं, "चम्पा के बलमित्र गृहपति की सुपुत्री विशाखा बुद्धि और विवेक की दीपशिखा ही तो थी, बेटा! उसकी बुद्धि का लोहा मान गए थे बड़े-बड़े सयाने लोग और सबने उसे

'पण्डिता चाम्पेयिका' की पदवी देते हुए स्वीकार किया कि चम्पा नगरी की यह सुपुत्री बुद्धि की खान है। और बेटा, बौद्ध कथाओं में बोधिसत्व नागराज की कथा आती है, जिसने पंचशील धारण करते हुए धर्म द्वारा जनहित करना ही अपना लक्ष्य बना लिया था। यहाँ मैं एक विद्वान् से सहमत हूँ कि कथा में अभिप्रायों का वही महत्त्व है जैसा कि किसी मन्दिर के लिए नाना भाँति की सज से उकेरे हुए शिलापट्टों का।"

"वैद्यजी, मुझे तो कथा ही नव-मंगल की आशा-लता दरसाती है।" नीलकण्ठ धीर-गम्भीर स्वर में कहता है, "लन्दन में मैं कई बार अलबीरा को बताया करता था कि काले अक्षर को पढ़ सकना ही शिक्षा नहीं है, क्योंकि यही वह प्रवृत्ति है जो देश-देश की मौखिक कथा-सम्पत्ति को दीमक की तरह चाट रही है।"

वैद्यजी हँसकर कहते हैं :

"यही भाव तुम किसी मूर्ति द्वारा व्यक्त करो तो हम तुम्हें मान जाएँ, बेटा!"

"अख़बार ही वैद्य असमंज महापात्र की रूँजी-पूँजी है !" जागरी आलोचना करता, "इकन्नी का अख़बार लिया। पहले बैठकर ख़बरें पढ़ते रहे। फिर चार रुपये की पुड़िया बाँध डालीं। अख़बार की रद्दी फिर भी बची रह गई। कोई हाल-मस्त, कोई माल-मस्त, वैद्यजी अख़बार-मस्त।"

अब वैद्यजी को शिकायत थी तो यही कि अख़बार में धौली की ख़बर कभी नहीं छपती।

'पूर्णमदः पूर्णमिदं' वाले मन्त्र को 'शून्यमदः शून्यमिदं' बनाकर वैद्य-जी ज्ञान बघारते कि पूर्ण से पूर्ण निकालने पर पूर्ण नहीं बल्कि शून्य से शून्य निकालने पर शून्य बचा रह जाता है। "चिल्लाने से शब्द की मृत्यु हो जाती है !" वैद्यजी पुड़िया देते समय रोगी को बताते, जैसे यह भी कोई रामवाण औषध हो। कभी कहते, "अपने से अपनी ही सुरक्षा करनी होगी।"

जागरी वैद्यजी के मुँह से सुनी हुई किसी विदेशी कवि की यह बात गेंद की तरह उछालने लगता, "कुछ लोग कहते हैं, दुनिया का अन्त आग की लपटों से होगा। कुछ कहते हैं, बरफ में गलने पर अन्त होगा। इच्छाओं

का जितना भोग मैंने भोगा है, उससे तो मुझे आग वाली बात ही जँचती है। पर मुझे दोबारा मरना हो, तो घृणा को मैं इतना जान गया हूँ कि बरफ़ में गलकर मरना ही महान् है। मैं यही कहूँगा, मृत्यु के लिए बरफ़ ही महान् है।"

इस पर जागरी गिरह लगाता, "धौली में बराबर तीन बरस से आग लग रही है। एक ओर आग लगी, और सारा गाँव स्वाहा हो गया। अब तो धौली अग्नि-काण्ड का अभ्यस्त हो गया है। धौली की झोंपड़ियाँ फिर सिर उठाने लगी हैं।"

इसके उत्तर में वैद्यजी भी चुप नहीं रह सकते, "सो तो ठीक है जागरी ! धौली का हर प्राणी सोचता है, इस बार टीन की छत बनायेंगे। पर इतना पैसा कहाँ से आए ? फिर वही छप्पर, फिर वही छौनी ! धौली के लोग ठीक ही तो कहते हैं, चोर का चुराया नहीं लौटता, विष्णु का खाया बहुर आता है !"

"अरे वैद्यजी ! ये सब तो आँखें पोंछने वाली बातें हैं," जागरी छेड़ता, "फिर आप कहेंगे, एक ही आँसू में दुनिया डूब सकती है। और आप चाहेंगे, हम आपकी बात पर झूम उठें और इसे महासत्य मान लें, अख़बार की ख़बर की तरह।"

बात घूम-फिरकर अख़बार पर लौट आती है। "देश-देश को जोड़ती हैं अख़बार की ख़बरें !" वैद्यजी बड़े विश्वास से कहते हैं, "दूर तक फैली है दुनिया। और ढेर सारी ख़बरें तो लड़ाई की रहती हैं। हर ख़बर कहती है, मेरी बात गिरह बाँध लो ! अख़बार उठाया नहीं कि ख़बरों के दर्शन हुए।"

जागरी कहता है, "मेरे लिए तो खड़ी खेती है भुवनेश्वर के यात्री। एक बार मेरी बातें सुनकर कोई यात्री जाने का नाम नहीं लेता।"

"तुम परिहास और उत्साह की पुट देते रहते हो, दिल की कुण्डी खोल डालते हो। तुम्हारी कहानियाँ ही तुम्हारे अख़बार की ख़बरें हैं।" वैद्यजी हँस पड़े।

"वाह वैद्यजी, फिर अख़बार की बात आ गई ! पाप-पुण्य के ब्यौरे में अख़बार कहाँ से आ गया ?"

"कभी हमारे इस अख़बार के सम्पादक महोदय मिल जाएँ, तो उनसे इतना तो पूछना कि धौली की कोई ख़बर क्यों नहीं छापते ? कहना, हमारे वैद्यजी लाग-लपेट के बिना शिकायत करते हैं। नीलकण्ठ विलायत गया, तब धौली की यह ख़बर न छपी, और पाँच बरस बाद नीलकण्ठ लौट आया, तब भी इस सम्बन्ध में अख़बार चुप रहा। हो सके तो सम्पादक महोदय को यहाँ ले आओ। यह बात हम खोलकर कहेंगे।"

"क्या कहने !" जागरी आँखों-ही-आँखों में बहुत-कुछ कह गया, "अच्छे रहे ! सम्पादकजी के लिए सवारी आप भेजेंगे ?"

"कर्तव्य का पालन तो होना ही चाहिए, जागरी ! तुम मुस्करा रहे हो ! मैं ऊँच-नीच सोचकर बात करता हूँ। अख़बार की ख़बर ही रामबाण औषध है। येनकेनप्रकारेण धौली की ख़बर भी अखबार में छपने लगे, धौली से बाहर के लोग धौली को जानें। क्या बताऊँ, तुम्हारी बड़ी आयु हो, धौली का नाम दूर-दूर तक फैले। अरे तुम फिर मुस्करा रहे हो, जागरी ! तुम्हारी समझ में ख़ाक-पत्थर नहीं आया। अरे मैं किसी दूसरी भाषा में नहीं, अपनी भाषा में ही तो बोल रहा हूँ। तुम जिससे भी मिलो, कसकर धौली का गुण-गान करो।"

"अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना तो ठीक नहीं, वैद्यजी !"

"तुम मेरी बात नहीं समझ सकोगे। तुम्हें तो हर किसी से धौली की कथा कहते रहना चाहिए। कभी तो इस औषध का असर होगा, और यह रोग टूटेगा। अश्वत्थामा चट्टान के हाथी-मुख और अशोक के शिलालेख की बात तो पोथी पर चढ़ चुकी है। पर उससे भी बड़ी बात तो यह है कि धौली के मूर्तिकार चतुर्मुख का विलायत से लौटा हुआ पोता सरकारी नौकरी का ख़याल छोड़कर कला-साधना में ही जुट गया। अख़बार में यह ख़बर क्यों नहीं छप सकती ? इस रोग का कोई-न-कोई उपचार तो हमें करना ही होगा। अरे ऐसा भी होता है कि कभी अचानक ही कोई नुस्ख़ा

हाथ आ जाता है और उसके असर से मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ रोगी भी उठकर बैठ जाता है।"

"असल ख़बर तो यह है वैद्यजी कि अलवीरा को हमारे नीलकण्ठ से प्रेम हो गया है। कुछ होकर ही रहेगा।"

"वह बात हम नहीं मानते!" वैद्यजी नाक सिकोड़कर बोले, "अलवीरा भली लड़की है। अभी तो विलायत में उसकी पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई। भाग्य-रेखा ऐसी ही हो तो कुछ कहा नहीं जा सकता, पर हमारे मन यह बात नहीं लगती कि अलवीरा और नीलकण्ठ की जोड़ी बन सकती है। नीलकण्ठ ने सरकारी नौकरी कर ली होती, तो अलवीरा के साथ उसका विवाह हो सकता था।"

"एक साथ एक ही जहाज़ में बैठकर दोनों विलायत गए, यह तो सभी जानते हैं। आज भी अलवीरा की चिट्ठी आती है। नीलकण्ठ झूठ तो नहीं बोलता। पिछली चिट्ठी में अलवीरा ने अपने हाथ से लिखा है कि उसे वह दिन अब तक याद है जब उसने नीलकण्ठ के हाथ को अपने करकमल में लेकर ज़ोर से दबाया था और फैली-फैली आँखों से उसे देखा था, जब लन्दन से उसका जहाज़ छूटने वाला था।"

एक अंग्रेज़ लड़की के लिए तो यह एक मामूली बात है, जागरी!"

"पर बचपन से ही अलवीरा अपने पिता के साथ इधर आती रही है। यह कुछ कम नहीं। उसके पिता बुलके साहब हमारे बाबा चतुर्मुख के मित्र हैं। वह भी कम नहीं।"

"कम हो न हो। बुलके साहब ऐसा नहीं होने देंगे। वे जानते हैं कि चतुर्मुख दिल से अंग्रेज़ों के शत्रु हैं।"

जागरी का चेहरा दमक उठा, "वह तो सूरज के उगने की तरह सच है कि बाबा चतुर्मुख का रोम-रोम अंग्रेज़ों से घृणा करता है। यह तो बुलके साहब ने ही कुछ जादू-सा कर दिया कि बाबा सरकारी वजीफ़ा मिलने पर नीलकण्ठ को विलायत भेजने को राज़ी हो गए। नहीं तो क्या ऐसी बात सात जन्म में भी सम्भव थी? अब मुझे लगता है कि नीलकण्ठ

भी मन-ही-मन अलवीरा से प्रेम करने लगा है। वैसे वह उसके प्रेम में पागल तो नहीं हो सकता।"

"प्रेम ऐसी ही चीज़ है, जागरी ! इसमें मनुष्य सब सुध-बुध बिसार बैठता है। प्रेम भी शायद एक लाचारी है। सोचो तो सही। अलवीरा बड़ी सीधी-सादी लड़की है। हम उसे जानते हैं। वह झूठ नहीं बोलती। थोड़ी भावुक अवश्य है। पिता की डाँट-फटकार का तो अंग्रेज़ों के यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। मेरा दिल तो नहीं मानता कि शास्त्रानुसार नीलकण्ठ और अलवीरा का विवाह हो सकता है। पर जो अनागत है, उसके बारे में अभी हमारे अख़बार की ख़बर क्या बताएगी ?"

"अलवीरा चिड़चिड़े स्वभाव की लड़की नहीं है, वैद्यजी !" जागरी ने आँखें नचाकर कहा, "यह तो आप भी जानते हैं। लो हम चले। आज तो आपकी दुकान पर इतनी देर हो गई। बैठकर अख़बार पढ़िए या पुड़ियाँ बाँधिए। हम भी चलकर अपना काम देखें।"

दूर से चतुर्मुख आते दिखायी दिए।

जागरी बोला, "लो बाबा आ रहे हैं। आज तो यहीं विचार-गोष्ठी जमेगी।"

"कहाँ से आ रहे हो, काका ?"

"अश्वत्थामा से।"

"सीधे वहीं से ?"

"वहीं से आ रहा हूँ।" चतुर्मुख ने बैठते हुए कहा, "जाओ जागरी ! नील को यहीं बुला लाओ। उसे भी सुनाएँगे वह बात।"

जागरी चला गया।

वैद्यजी ने पूछा, "ऐसी क्या बात है, काका ?"

"नील को आने दो। फिर बताऊँगा।"

नील को आते देर न लगी। उसे पास बिठाकर चतुर्मुख बोले, "आज मैंने अश्वत्थामा के शिलालेख पर हाथ फेरते हुए कहा..."

"आज कोई खास बात कह डाली, बाबा ?" जाग री चुप न रह सका।

चतुर्मुख ने ग्राकाश की ग्रोर ग्राँखें उठाकर कहा, "इन्हें सद्बुद्धि दो, महाप्रभु !"

फिर वैद्यजी के चबूतरे पर हाथ फेरने लगे चतुर्मुख, जैसे यही ग्रश्वत्थामा हो। वे कहते चले गए :

"ग्रश्वत्थामा पर इसी प्रकार हाथ फेरते हुए मैंने कहा—हे सम्राट्, कलिंग के युद्ध में लाखों प्राणियों को मौत के घाट उतारकर ग्रापको जिस ग्रहिंसा ग्रौर शान्ति के व्रती बनने की बात सूझी, वह क्या युद्ध से पहले नहीं सूझ सकती थी ? तब तो इसका श्रेय ग्राप ही को जाता। ग्रब तो इस श्रेय के भागी वे लोग हैं, जो मर गए। इस शिलालेख को तो ग्रापने ही महत्त्व दिया। पर इसकी महत्ता से तो ग्रापको महान् होने का भ्रम नहीं होना चाहिए···"

चतुर्मुख की बात सुनकर सब ग्रवाक् रह गए।

वैद्यजी की पत्नी है नागमती। सोना से सुनकर याद किया हुआ बंगला गान उसे प्रिय है। सुहागरात का गीत ठहरा। गाते-गाते आज भी सिहरन-सी दौड़ जाती है। "पुरुष तो क्या, पत्थर को भी प्रेम सिखाया जा सकता है!" नागमती सोचती है, जब वह गाती है :

चाँपा फूल चाई ना बेला फूल दाओ
जाई दिले जूई दिले कीआ फूल दाओ
ए गाले ते चूमा खेले ओ गाले ते खाओ
चाँपा फूल चाई ना बेला फूल दाओ

[चम्पा फूल नहीं चाहिए, बेला फूल दो। जाई दिया, जूई दिया, केवड़े का फूल दो। इस गाल पर चुम्बन दिया, उस गाल पर दो। चम्पा फूल नहीं चाहिए, बेला फूल दो।]

यह गीत सुनकर एक दिन वैद्यजी बोले, "यह भी कोई खबर-कागज़ की खबर है, नागमती?"

गाते-गाते नागमती की आँखें चमक उठीं।

वैद्यजी सोचने लगे—आज तो नागमती प्रेयसी नहीं, पत्नी है।

नागमती ने कहा, "खबर के बाद खबर। खबर-कागज़ की सब खबरें

क्या सच्ची होती हैं ?"

"अरे खबर-कागज़ क्या अन्धा दरबार है नागमती ?"

"मुझे तो खबर-कागज़ की कोई खबर ढाई हाथ की ककड़ी प्रतीत होती है, तो कोई नौ हाथ का बीज। खोटा पैसा फिर भी अच्छा है, खोटी खबर किस काम की ?"

वैद्यजी ने बैठकर कहा, "नागमती, रविवार के खबर-कागज़ में कोई-न-कोई कथा छपकर आती है। इस बार एक कथा आई है।"

"मुझे नहीं सुनाओगे ?" नागमती मुस्कराई।

"पढ़कर सुनाने का तो समय नहीं है। संक्षेप में कह सकता हूँ।"

"वही कहो।"

"'चतुर चोर', यह है कथा का नाम। छोटा चोर अपने गुरु को चाचा कहता है और अन्त तक इस सम्बन्ध का निर्वाह करता है, नागमती ! अच्छा तो सुनो। चाचा चोरी करते पकड़ा गया। भतीजे ने उसकी रक्षा का कोई उपाय न देखकर, उसका सिर काट लिया और उसे लेकर वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो गया। राजा ने झट चोर की बिना सिर की लाश पर पहरा बिठा दिया। भतीजे ने पहरेदारों को धोखा देकर पहले चाचा का दाह-संस्कार किया और फिर श्राद्ध। अन्त में कापालिक का भेस बनाकर मरघट से चाचा की अस्थियाँ लाने और गंगा में विधिपूर्वक विसर्जन करने में सफल हो गया। अब देखो, क्या होता है ? राजा ने अपनी रूपवती कन्या को अपने उद्यान में बिठाकर चोर को पकड़ने का उपाय किया। चोर इस बार फिर पहरेदारों को धोखा देकर राजकुमारी से जा मिला और थोड़ा समय उसके पास बिताकर नौ-दो-ग्यारह हो गया। अन्त में राजा ने देखा कि राजकुमारी तो गर्भवती हो गई। राजा ने उस चोर के साथ ही राजकुमारी का विवाह कर दिया।"

नागमती ने हँसकर कहा, "कौन जाने उस राजकुमारी ने भी यह गीत गाया था—चाँपा फूल चाई ना, बेला फूल दाओ !..."

"जब देखो, इसी गीत की बात। नागमती, तुम पागल हो जाओगी।"

"और तुम पागल नहीं होगे, जिन्हें कथा सुनाए बिना खाना हज़म नहीं होता।"

वैद्यजी ने हँसकर बात टालनी चाही, पर नागमती उन्हें घेरकर खड़ी हो गई, और अपना प्रिय गीत गाने लगी।

"तुम इस गीत से छुट्टी नहीं पा सकतीं, नागमती ?"

"बिलकुल नहीं।"

"क्यों, ऐसी भी क्या मुसीबत है ?"

नागमती ने प्रसंग बदलकर कहा, "अच्छा बूझो, मेरे पास आज कौन-सी ख़बर है ?"

"अरे कहीं अन्तराल की चिट्ठी तो नहीं आ गई ?" वैद्यजी मुस्कराए।

"नहीं, उसकी तो कोई चिट्ठी नहीं आई।"

"तो फ़िर कौनसी ख़बर है ? मुझमें तो धौली की नब्ज़ पर हाथ रखने की क्षमता है। मुझसे भला धौली की कौनसी ख़बर छिपी रहेगी ?"

"बूझ लो तो मान जाऊँ।"

"तुम्हें वह ख़बर प्रिय लगी ?"

"यह नहीं बताऊँगी।"

"अरे इस घटनामय संसार की ख़बरों का क्या ठिकाना ! घटना के अनुरूप होती है ख़बर। इस ख़बर का अंचल बहुत भारी है क्या ? पुरी की ख़बर है या कटक की ?"

"धौली की ख़बर है।"

"धौली की ऐसी कौनसी ख़बर है, जो मैं नहीं जानता ?" वैद्यजी ने मुँह से पान की पीक थूककर पास खड़े केले के पत्ते पर एक चित्र-सा अंकित करते हुए कहा, "हाँ तो बोलो, कौनसी ख़बर है ? सच्ची ख़बर होनी चाहिए, नागमती !"

"झूठ कहने वाले की जीभ जल जाय।" नागमती हँस पड़ी।

"गाँव की ख़बर है क्या कोई ? किसी को ज्वर तो नहीं हो आया ? अरे तुम कहोगी, तो औषध के पैसे नहीं लेंगे।"

"मैं किसको झूठ-मूठ बीमार बता दूं ?" नागमती खिल गई।

"किसी की गाय चोरी हो गई क्या ?" वैद्यजी गम्भीर हो गए।

"जाकर उससे पूछो, जिसके सिर पर दुःख का पहाड़ टूटा।"

"दुःख का पहाड़ ?" वैद्यजी के आश्चर्य की सीमा न रही, "कोई अनाथ हो गया क्या ? किसी का बापू चल बसा ? जन्म-मरण तो साथ-साथ लगा है। अरे एक-न-एक दिन तो सभी ने मर-खप जाना है। हाँ, तो कौनसी ख़बर है धौली की ? यहाँ ऐसी कौनसी घटनाएँ होती हैं ?"

"भला बूझो तो !" नागमती की हँसी में सहानुभूति थी।

"कोई अटपटी बात होगी। नागमती, तुम नहीं बताओगी।" वैद्यजी खिसियाने-से होकर जाने लगे।

नागमती की आँखों में खुशी की तरंगें छलछला उठीं। वैद्यजी ने समझा, कोई ख़बर नहीं है। ऐसे ही मज़ाक कर रही है नागमती। यही तो इसकी आदत है। तिल का ताड़ करना ही उसे प्रिय है। "छोड़ो-छोड़ो !" वे बोले, "बाधा मत बनो। देर हो रही है दुकान के लिए।"

"रुको-रुको, अभी बताती हूँ।" नागमती ने एक बार शून्य की ओर देखकर विचित्र-सी मुद्रा बना ली, "ऐसा क्यों हुआ, यह तुम सोचो। सोना ने मर्यादा तोड़ डाली। अब तक लड़के ही राधा और गोपियाँ बनते आए थे। अब सोना राधा बनेगी।"

"अच्छा, वह बात ? आ ही गया वह मुहूर्त्त। कई बार मुहूर्त्त ठीक किए। हर बार चतुर्मुख रोक देते थे। अब उन्होंने अनुमति दे दी होगी।"

"गुरुचरण की तो चाँदी है। पर जागरी का सर्वनाश समझो।"

"ऐसा क्यों कहती हो, नागमती ?"

"नारी की शोभा घर में है, रासलीला में नहीं। जागरी भी कितना मूर्ख निकला ! उसने चतुर्मुख बाबा की सलाह क्यों मान ली ?"

"सोना के राधा बनने से कौनसी प्रलय हो जाएगी ?" कहते हुए वैद्यजी बाहर निकल गए।

वैद्यजी चतुर्मुख के अड्डे पर आ बैठे और बोले, "सुना है, सोना राधा बनकर उतरेगी रासलीला में ? यह ख़बर तो ख़बर-कागज़ में ज़रूर छपेगी।"

नीलकण्ठ कुछ न बोला। वह किसी विदेशी पत्रिका के पन्ने पलटता रहा।

रूपक बोला, "आपसे किसने कहा, काका ?"

वैद्यजी कहते चले गए कि सोना ऐसी है, सोना वैसी है। उन्होंने बताया कि धौली की स्त्रियाँ बहुत बुरा मना रही हैं। आँखों और हाथों के संकेत से उन्होंने इस विचार की दुर्गति बनाई कि गुरुचरण रासलीला की कला को इस प्रकार लांछित करने जा रहा है।

"यह धरती तो वैसे ही पाप से भरी पड़ी है, काका ! सोना को रोको। गुरुचरण को भी समझाओ। जैसे अब तक चलती आई है रास-लीला, आगे भी चलती रह सकती है। सोना से कहो, गुरुचरण की बात मानने से इन्कार कर दे।"

चतुर्मुख मुस्कराते रहे, जैसे वैद्यजी की बात उनके मन न लग रही हो।

यह देखकर वैद्यजी और भी जल-भुन गए । नीलकण्ठ क्यों कुछ नहीं बोलता ? रूपक भी चुप हो गया । यह सोचकर वैद्यजी बहुत सटपटाए। उनकी आँखें अपने प्रश्न का उत्तर खोजने लगीं । यह ऐसी बात न थी, जिसे वे सुनी-अनसुनी कर देते ।

फिर इधर-उधर की बातें चल पड़ीं—अमुक की पुत्री बाईस वर्ष की थी, जब वह विधवा हो गई । दामाद देवता है । अमुक का बेटा बावरे जैसा घूमता है, पर उसकी बातों में इन्द्रधनुष अंकित हो जाता है। लगता है जैसे बहुत दूर से बाँसुरी की ध्वनि आ रही है ।

नीलकण्ठ ने बाहर की बात छेड़ दी, जैसे धौली के साथ बाहर का परिचय कराना इतना ही आवश्यक हो । वैद्यजी पर नीलकण्ठ का प्रभाव पड़े बिना न रहा । लगता था, उसे कल्पना की मृदुल गोद प्राप्त है और वह पत्थर में अपनी प्रतिभा का परिचय देकर छोड़ेगा ।

घर के भीतर कोइली झूला झूलती हुई गा रही थी :

आखु वाड़ि खड़-खड़
दुहुड़ा लगाइ आसुछि वर
कनि आँकु सज कर
मो दुलि लो !
कबाट कें करिला
सउतुणी पुअ माआ बोइला
से लाज मोते लागिला
मो दुलि लो !
जह्न उदे छन-छन
उदि आरे जह्न खाइबु पान
तो मुख दिशे दर्पण
मो दुलि लो !
दिअँक पोखरी कइँ
कइँ फुल परि वोउ वढ़ाई थिलु लो

पर घरे देवा पाइँ
मो दुलि लो !
शिलरे छेपिति अदा
बड़ घर बोलि देइछ ददा
देहरे शुखिला उदा
मो दुलि लो !

[ईख का खेत खड़-खड़ करता है। मशालों का जुलूस सजाये आ रहा है। वर-कन्या को सजाओ। ओ मेरे भूले, किवाड़ चरचराता है। सौत के बेटे ने मुझे माँ कहकर पुकारा। मुझे बहुत लाज लगी। ओ मेरे भूले, छन-छनकर उगता है चाँद। उगो रे चन्दा, तुझे पान खाने को दूँगी। तेरा मुख दर्पण में दिखायी देगा। ओ मेरे भूले ! देवता की पुखरी का कमल। कमल-फूल के समान हे माँ, तुमने मुझे बड़ा किया ! पराये घर देने के लिए। ओ मेरे भूले ! सिल पर अदरक पीसा। तुमने मुझे बड़े घर में दिया। देह पर यही एक सूखा लुगड़ा है। ओ मेरे भूले !]

वैद्यजी बोले, "सोना ने भी ये गीत गाए होंगे। मशालों का जुलूस सजाकर आने वाले वर के गीत। देव-पुखरी के कमल-फूल खिले होंगे उसके सपनों में। उगते चाँद का मुख उसने भी देखा होगा दर्पण में। पर अब तो वह राधा बनकर रासलीला में उतरने जा रही है, जिसे हम बिलकुल पसन्द नहीं करते।"

पास से नीलकण्ठ बोला, "यह तो कला का मामला है, वैद्यजी ! किसी की कला मरनी तो नहीं चाहिए। सोना तो सौभाग्यवती है।"

चतुर्मुख बोले, "पाथुरिया गली की कही-अनकही कहानी आगे जाएगी ही। सोना हारेगी नहीं। रासलीला का न्याय उसका साथ देगा। सोना में आस्था है, जो कभी उखड़ेगी नहीं।"

"रासलीला में किस सत्य का साक्षात् करेगी, सोना ?"

"जो अनिर्वचनीय है।"

"और जागरी ताल देगा—ता धिन् धिन् ता !"

"क्या बुरा है, वैद्यजी ! जागरी तो वह ताल भी दे सकता है—धीन् धीन् तिटि, धागे तितटि, धातिरि किट···उनमें तनाव नहीं बढ़ सकता। यह तो जागरी भी मानता है कि सोना की कला मरनी नहीं चाहिए। पाथुरिया गली भी उसे सराहेगी, और मुग्ध-दृष्टि से देखती रहेगी। जो पाथुरिया गली का स्वर है, वह तो प्रशंसा का स्वर है। आप तो हँस रहे हैं, वैद्यजी ! मालूम होता है, पत्नी की बातों में आ गए। पाथुरिया गली किसी कल्पना-लोक से कम नहीं।"

"बात सोना की चल रही थी। जब वह रासलीला में नाचेगी, तो उसका रंग-रूप बिसर थोड़े ही जाएगा, वैद्यजी ?" नीलकण्ठ बोल उठा।

"और लोग उसे देखकर मन-ही-मन गायेंगे—काजर दे न, ए री सोना !" वैद्यजी ने चुटकी ली, "चलो, मान लेते हैं कि सोना के नाच पर जागरी ताल देगा—ता धिन् धिन् ता !"

फिर बात उछलकर त्रिमूर्ति का काम पूरा करने पर आ गई।

वैद्यजी बोले, "एक बात पूछूँ ? ब्रह्मा और विष्णु की मूर्तियों में एक पीढ़ी का अन्तर होने पर भी उन्हें देखकर एक ही हाथ की कला प्रतीत होती है। अब नीलकण्ठ शिव-मूर्ति का जोड़ लगाएगा तो मामला बिगड़ न जाय ! विलायत से जो ढंग सीखकर आया है, उसे ताक पर रखकर तो वह छेनी चलाने से रहा।"

नीलकण्ठ ने हँसकर कहा, "या तो मैं शिव-मूर्ति बनाऊँगा नहीं और बनाऊँगा तो आधा तीतर आधा बटेर वाली बात नहीं होगी।"

वैद्यजी चतुर्मुख के समीप होकर बोले, "आप ही क्यों नहीं शिव-मूर्ति बना डालते ? मुझे तो सन्देह हो रहा है। नीलकण्ठ अब लाख यत्न करे, विलायती ढंग से कैसे बचेगी उसकी छेनी ?"

"पाथुरिया की आँख सृजन-सुख पर लगी रहे तो फिर डरने की बात नहीं।" चतुर्मुख गम्भीर मुद्रा में बोले, "पाथुरिया तो स्वयं ब्रह्मा है और सृजन उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। हमारे पिता कहा करते थे—पाथुरिया वह है जिसका दिल बुझ न गया हो और जिसे पत्थर की दुनिया में भी

आदमी की खोज रहती हो। पाथुरिया वह है, जिसका दिमाग सूरज की तरह चमकता हो।"

नीलकण्ठ ने पत्रिका से आँख उठाकर कहा, "लेकिन आज का पाथुरिया कितना दबा हुआ और पीड़ित है ! सम्मान की भावना के लिए सबसे पहले दाल-भात की समस्या हल होनी चाहिए। हमारे हाकिमों को तो कतई चिन्ता नहीं। वे तो कहते हैं पाथुरिया कल रसातल को जाता है तो आज चला जाय।"

"हम गुलाम हैं।" चतुर्मुख की आँखें चमक उठीं, "तुम्हें यह बात सदा याद रखनी चाहिए। पाथुरिया की कला मर रही है। फटे हाल पाथुरिया, जिनमें अभी बुजुर्गों की कला साँस लेती है, मारे-मारे फिरते हैं। बहुतों ने तो यह धन्धा ही छोड़ दिया। जिन्होंने नहीं छोड़ा, उनमें से बहुतों की हालत खस्ता है। फिर भी निराश नहीं होना चाहिए। गुलामी तो एक दिन जा के रहेगी। हम फिरंगी को माफ नहीं कर सकते, जिसने हमें गुलाम बनाया।"

"आपका मतलब है, शिव के मुख पर यही भाव दिखाया जाए ?" वैद्यजी ने जैसे किसी रोग की जाँच करते हुए कहा।

चतुर्मुख प्रसंग बदलकर बोले, "सोना को रासलीला में राधा बनने से रोकने वाले गुलामी से उपजी हीन भावना से ग्रसे हुए हैं।"

"इसे छोड़ो," वैद्यजी बोले, "शिव-मूर्ति कैसी हो, पहले इसका निर्णय हो जाना चाहिए।"

चतुर्मुख बोले, "शिव-मूर्ति का सृजन नीलकण्ठ के ज़िम्मे है। वह चाहे तो विष-पान वाली बात उठा सकता है। पर जहाँ तक सोना के राधा बनने की बात है, हमें व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। पत्थर पर छेनी चलाकर नर्तकी की मूर्ति गढ़ने वाला पाथुरिया तो यही कह सकता है कि नर्तकी इसलिए नर्तकी है कि उसकी भाव-भंगिमा में पीढ़ियों का सौन्दर्य-बोध बोलता है।"

चतुर्मुख के हाथ पर जन्मजात चिह्न है, जिसे देखकर लगता है कि वह छेनी लेकर ही जन्मे थे। कोइली की दादी ने इस चिह्न का प्रसंग उछालते हुए जैसे चिढ़ाने को एक ही साँस में कह डाला, "देखते नहीं, तुम्हारी किसी मूर्ति में अभी तक ब्रह्मा ने प्राण नहीं डाले ! फिर कहते हो, यह पकाओ, वह पकाओ।"

"घर में खुशी हो, तो रसोई सबसे पहले घोषणा करती है।" चतुर्मुख पत्थर पर छेनी चलाते-चलाते बोले, "नीलकण्ठ को विलायत से लौटे इतने दिन हो गए, अभी तक इसी की खुशियाँ मनाई जा रही हैं। अच्छी बात है। पर मेरे आनन्द का कारण तो यह है कि नीलकण्ठ अंग्रेज़ की नौकरी नहीं करेगा।"

"अरे यह कौनसी बुद्धि की बात है ? जैसे आप रहे अब तक, ऐसे ही पोते को रखना चाहते हो। ऐसा नहीं होगा मेरे रहते। पैसा नहीं कमाना था तो फिर नीलकण्ठ विलायत पढ़ने क्यों गया ?"

"विलायत गया तो कौनसे हमारे पैसे खर्च हुए ? वजीफा पाकर गया। मैट्रिक में सारे उड़ीसा में पहले दरजे पर आया। मज़ाक नहीं सारे प्रान्त में पहले दरजे पर आना। अब यह इसकी अपनी हिम्मत थी कि

जितने रुपये मिलते थे, उसी में गुज़ारा चला लेता।"

"पर इसका यह मतलब नहीं कि अब वह नौकरी न करे। नौकरी करे तो घर का दारिद्रय टूटे।"

"घर में क्या कमी है? इसीसे पूछ लो। वह बैठा है तुम्हारे पास नौकरी करनी हो तो नौकरी करे। मैं कब रोकता हूँ?"

"अब कहते हो, रोकते नहीं। हर समय उलटी पट्टी पढ़ाओगे तो कैसे असर नहीं होगा?"

"बोलता क्यों नहीं, नीलकण्ठ? कह डालो न, मैंने जो पट्टी पढ़ाई है, सब कह डालो।"

"मैं अपने लिए स्वयं सोच सकता हूँ, दादी!" नीलकण्ठ ने खीझ-कर कहा, "नौकरी मिलने की आशा होगी, तो मैं देख लूँगा। अपना काम भी बुरा नहीं। जीवन तो लम्बी दौड़ है। कला के भरोसे नौकरी आगे जाएगी, या नौकरी के भरोसे कला, यह देखना मेरा काम है। मैं नौकरी करना नहीं चाहूँगा, तो कोई मुझे मजबूर नहीं कर सकता।"

दादी ने नीलकण्ठ को पुचकारते हुए कहा, "नौकरी मिलने की आशा तो हो ही सकती है न बेटा! ये पत्थर तो रोटी देने से रहे। नहीं मानोगे तो दुःख पाओगे। तुम्हारे बाबा से तो तुम्हारा बापू ही अच्छा निकला। पैसे के बिना गाड़ी नहीं चलती।"

"मैं नौकरी नहीं करूँगा, दादी!"

"बाद में पछताओगे।"

"देखा जाएगा।"

"देखा क्या जाएगा? जो लोग ठीक समय पर लक्ष्मी के चरण नहीं सेवते वे हर समय दुखी रहते हैं।"

"यह देखना मेरा काम है।"

"तो सागर पार किसलिए गये थे? किसी की माँग में तो तुम्हें सिन्दूर-भरना ही होगा। उसे क्या खिलाओगे?"

इस पर नीलकण्ठ भाग्यवादी बन बैठा।

दादी ने कहा, "सोने की खान चलकर तो नहीं आती हमारे पास।"

"मैं नौकरी नहीं करूँगा।"

"यह तुम्हारा अन्तिम फैसला है ?"

"अन्तिम फैसला भी हो तो क्या बुरा है ?"

"तो ले लो पत्थर से दाल-भात, मुझसे न कहना।"

"कैसे न कहूँ ?"

"तो मेरी बात माननी होगी।"

"सोच लूँगा।"

"अब आए न रास्ते पर ! पहले क्यों न कहा ?"

दादी का मुख खिल उठा, जैसे उसे विश्वास हो गया हो कि नील-कण्ठ उसकी बात मान लेगा।

सोना ने आकर कहा, "आज दादी-पोते में क्या कथा चल रही है ? कोई मुँह मीठा कराने वाली बात, कोई बधाई की बात···"

"मैं कोई द्रौपदी नहीं कि पाण्डव मुझे जुए में हार जायँ !" सोना ने कौशल्या पुखरी की सीढ़ियों पर एड़ियाँ मल-मलकर धोते हुए कहा, "कोई मुझे कौनसा बाण मारेगा ? रासलीला में राधा बनना कुल-मर्यादा पर सात घड़े पानी डालने जैसा कैसे हुआ ?"

नागमती बोली, "यह भले घर की नारी के लिए शोभनीय नहीं। छिः-छिः ! तुम कुल-कलंकिनी हो, सोना !"

"तो तुम लोग रासलीला देखने जाते ही क्यों हो ?"

"छिः छिः !" नागमती ने हवा में हाथ उछालकर कहा, "अण्डों की सफ़ेदी में दूध मिलाकर केशों को घुँघराले बनाने का नुस्खा क्या लाई मयूरभंज से, तुझमें यह अकड़ आ गई ! तेरा मतलब है, कोई लड़का नहीं रहा राधा बनने के लिए ? गोपियाँ बनने की सिखावन देगी, धौली की कन्याओं को ?"

इस पर कुछ स्त्रियाँ हँस पड़ीं। एक ओर से आवाज़ आयी, "नागमती ठीक कह रही है।"

"अपना भला-बुरा मैं पहचानती हूँ।" सोना ने ठण्डे दिल से कहा।

कुलवधुएँ और कन्याएँ पायलें माँजती रहीं। कुछ चुपचाप मेथी

लगाकर केश धोती रहीं, जैसे उन्हें सोना के आचरण पर कोई आपत्ति न हो।

गालों पर हलदी लगाकर सोना जल-दर्पण में अपना मुख निहारती रहीं।

जल में दौड़ते मेघों की छाया पड़ रही थी।

सोना स्नान करते समय मन-ही-मन सोचती रही—धौली की कथा में मेरी कथा जुड़ जाएगी। लोग कहेंगे, सोना ने रासलीला का रूप बदल दिया। एक दिन आएगा, जब युवकों को गोपियों का वेष नहीं धरना पड़ेगा। लोग कहेंगे, गुरुचरण धन्य है, जिसकी प्रेरणा से सोना राधा बनी। सौ-सौ घाट का पानी पीयेगी राधा बनने की कथा। उड़ीसा की पहली नारी, जो राधा बनी! कथा कहेगी, भले ही सोना मयूरभंज की राजनर्तकी की पुत्री थी और चाहती तो वह भी राजनर्तकी ही बनी होती, पर उसने धौली के मूर्तिकार चतुर्मुख की प्रेरणा से धौली के गंजेड़ी जागरी से विवाह किया।···लोग कहेंगे, एक दिन सपने में कन्हाई ने स्वयं दर्शन देकर सोना से पूछा—राधा बनोगी, सोना?···और सोना ने हाँ कर दी। उत्तर-दक्खिन, पूरब-पच्छिम, चहुँ ओर चलेगी मेरी कथा। अगवार, पिछवाड़, सर्वत्र। चन्दन-लेप के समान महकेगी।···

नागमती कभी की जा चुकी थी।

सोना ने मन-ही-मन नागमती को क्षमा कर दिया। 'अपनी-अपनी समझ है।' उसने मन में कहा, 'आज वह जिसे बुरा कहती है, कल अच्छा भी कह सकती है।'

स्नान करते-करते सोना को नीलकण्ठ का ध्यान आया। उसने सोचा—क्या नील भी मुझे बुरा कहेगा?···और उसने नील की ओर से स्वयं ही उत्तर दिया, 'सोना भौजी, मैं तो किसी कला को बुरा नहीं कहता।' जैसे कन्हाई की बाँसुरी बज रही हो। जैसे यह रागिनी अपरिचित पथ पर चलने की टेर सुना रही हो। जैसे कोई कह रहा हो—पुरातन रासलीला को नूतन दृष्टि-भंगिमा प्रदान करो। मानो बाल्य-काल

का वह बोल कान में आ रहा हो :

कथाटिएँ कहूँ, कथाटिए कहूँ
किस कथा ? बेंग कथा
कि बेंग ? काठ बेंग
कि काठ ? तेलि काठ
कि तेलि ? घरगा तेलि
कि घरगा ? आखु घरगा
कि आखु ? कन्तारि आखु
कि कन्तारि ? बुढ़ि मन्तारि

[कथा कहूँ, कथा कहूँ। किसकी कथा ? मेंढक की कथा। काहे का मेंढक ? काठ का मेंढक। काहे का काठ ? तेली का काठ। कौन तेली ? कोल्हू का तेली। कैसा कोल्हू ? ईख का कोल्हू। कैसी ईख ? 'कन्तारि' ईख। कैसी 'कन्तारि' ? बुढ़िया जादूगरनी।]

लोक-कथा के इस मंगलाचरण को वह अपनी कथा में ढालने लगी :

कथाटिए कहूँ, कथाटिए कहूँ
किस कथा ? सोना कथा···

दो सौ रुपये पेशगी आ गए थे। आठ सौ काम पूरा होने पर मिलेंगे। भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर का मॉडल बना रहे थे चतुर्मुख। "आर्डर का काम ठहरा," वे मानो खीझकर कहते, "बरजोरी काम करना पड़ रहा है।"

कोइली के लिए वर ढूँढ़ने को उन्हें एक-दो बार कटक जाना पड़ा। भले ही वे जानते थे कि कोइली का मन लोकनाथ मिस्त्री के पुत्र अपूर्व में रमा है।

भुवनेश्वर स्कूल के हैडमास्टर गगन महान्ती और मायाधर जब भी एक साथ मूर्तिशाला में बैठते, अंग्रेज़ की निन्दा-स्तुति का नाटक आरम्भ हो जाता। गगन को अंग्रेज़ प्रिय थे तो मायाधर मानो हर समय उनके विरुद्ध उधार खाए बैठे रहते।

गगन महान्ती बोले, "अंग्रेज़ इतना ही बुरा होता तो 'गीतांजली' पर सवा लाख का इनाम क्यों देता ?"

मायाधर ने चिढ़कर कहा, "जहाँ कहीं भी थोड़ा-सा सुख है, उस पर दुःख की छाया पड़ती है। हमारी सभ्यता बहुत पुरानी है। हमारा इतिहास भी कम पुराना नहीं। पर हम पराधीन हो गए, और इसके लिए

अंग्रेज़ दोषी है ।"

गगन महान्ती बोले, "अंग्रेज़ को बुरा कहने से तो कोई लाभ नहीं। नीलकण्ठ से पूछ लो । यह तो अंग्रेज़ के देश में रह आया ।"

मायाधर ने आवाज़ में वेदना का स्वर जगाते हुए कहा :

"शास्त्र में यह बात कही गई है कि हमारे देश में जन्म लेने को तो स्वर्ग के देवता भी लालायित रहते हैं। आज तो दूसरी ही दशा है। आज भारत माता उदास है, लाचार है। गोदी के लाल को एक घूंट दूध नहीं पिला सकती। द्वार पर आए अतिथि को हम रास्ता दिखाने पर मजबूर हैं। भले ही अंग्रेज़ चीज़ों के भाव ज़्यादा चढ़ने नहीं देता। वह कितना चालाक है !"

गगन महान्ती प्रसंग बदलकर बोले :

"रासलीला का वह दृश्य मैं कभी नहीं भूलता, जब गुरुचरण कन्हाई के वेष में राधा की अलकों में कलियाँ टाँकता है। और अब तो सोना ही राधा बना करेगी ।"

चतुर्मुख ने छेनी चलाते हुए कहा, "सोना का साहस सराहनीय है। जिसमें जो भी कला है, बाहर आनी ही चाहिए ।"

मायाधर ने अपनी ही बात छेड़ दी :

"नीलकण्ठ के विलायत जाने से पहले एक बार तुमने कहा था—हमारी बहुत सी कला-कृतियाँ अंग्रेज़ उठाकर ले गया और उनसे अपने देश के कला-भण्डार भर लिए। तुमने तो यह भी कहा था कि अंग्रेज़ का बस चलता तो भुवनेश्वर के मन्दिर ही नहीं, हमारी अश्वत्थामा शिला भी उठा ले जाता। कोणार्क से तो सुना है बहुत-कुछ ले गया। तुमने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा था कि विदेश में हमारी कला-कृतियाँ ससुराल गयी कन्याओं की तरह रोती होंगी। अब नीलकण्ठ से पूछ देखो न ! वह तो उन्हें आँखों देख आया। क्यों, नीलकण्ठ ?"

नीलकण्ठ मुस्कराकर बोला :

"लन्दन में हमारी कुछ मूर्तियाँ तो विक्टोरिया म्यूज़ियम में रखी हुई

हैं। उन्हें देश-देश के लोग देखने आते हैं।"

"तुम्हारा मतलब है, हम उन्हें वहीं रहने दें ?" मायाधर ने आवेश में आकर कहा, "समय आने दो। हम अपनी मूर्तियाँ वापस लाएँगे।"

"कला तो सबके लिए है।" नीलकण्ठ मुस्कराया, "अब वे मूर्तियाँ वहीं रहें, तो भी कोई हर्ज नहीं।"

"तुम पर भी अंग्रेज़ का जादू चल गया," मायाधर ने व्यंग्यपूर्वक कहा, "तुम वह बात छोड़ो। पहले हमारी मूर्तियों की बात सुनाओ, जिन्हें अंग्रेज़ उठा ले गया।"

"हमारी अनगिन मूर्तियाँ तो वहाँ म्यूज़ियम के तहख़ानों में कबाड़ की तरह भरी हैं। उन्हें सजाकर रखने की किसी को फ़ुरसत नहीं है।"

चतुर्मुख छेनी चलाते हुए बोले, "पत्थर के साथ मन भी छिल रहा है। मैं सोचता हूँ, लोकनाथ जैसा मिस्त्री और कहाँ मिलेगा, जो अपनी स्वर्गवासिनी पत्नी की पूजा करता हो ! नहीं तो लोकनाथ लाठी की मूठ पर पत्नी का चेहरा कैसे बना डालता ? हाथीदाँत की नक्काशी वाले पीढ़े पर भी तो उसने दोनों ओर पत्नी का मुखड़ा बनाया है। उस पीढ़े पर उसकी बहू बैठा करेगी। सास का मुखड़ा पीढ़े के दोनों ओर देखकर सास की परम्परा निभाएगी। मुँह से तो नहीं कहता, पर मैं सब समझता हूँ। अपूर्व के लिए कोइली की माँग करना चाहता है। यह तो नहीं होगा। भले ही कोइली आकर मुझसे कहे कि उसने तो लोकनाथ मिस्त्री के उस पीढ़े पर बैठने की शपथ ले ली है।"

मायाधर बोले, "कोइली के भाग्य में अपूर्व लिखा है, तो तुम कैसे रोकोगे ? भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर का यह मॉडल जल्दी-जल्दी पूरा करो, जिससे कोइली के विवाह के लिए रुपये आ सकें।"

गगन महान्ती भी चुप न रह सके :

"मामा की भूमि से साल-भर के लिए अन्न मिल जाता है। इसलिए काका को चिन्ता नहीं रहती कि आर्डर का काम अवश्य आए। इस मॉडल का आर्डर बुलके साहब का है। फिर भी अंग्रेज़ को बुरा कहोगे ?"

"हमें भी दाल-भात मिल रहा है।" मायाधर ने हँसकर कहा, "काँसे-पीतल के बरतन कटक, पुरी और कलकत्ते जाते रहें, फिर हमें किसी बुलके साहब का सहारा नहीं चाहिए।"

इतने में गाँव-मुखिया पाँचू और लोकनाथ मिस्त्री आ निकले।

मायाधर बोले, "इन दोनों की जोड़ी भी विचित्र है। हाथीदाँत की नक्काशी वाले पीढ़े को लेकर दोनों में झगड़ा हुआ, मुकद्दमा चला। दोनों एक साथ कचहरी जाते हैं, और एक साथ ही लौटते हैं।"

इस पर सब खिलखिलाकर हँस पड़े। नीलकण्ठ ने कहा, "लन्दन में अलवीरा कहा करती थी—प्रश्न मत करो नहीं तो मिथ्या उत्तर सुनना पड़ेगा। यह अंग्रेज़ी भाषा की पुरातन लोकोक्ति है।"

सब गम्भीर मुद्रा में नीलकण्ठ की ओर देखने लगे। नीलकण्ठ उस पत्रिका के पन्ने पलटते हुए अलवीरा की याद में खो गया, "वह वहाँ अपने ही झमेलों में फँसी होगी। कभी तो उसे भी मेरी याद आती होगी।"

बाबा और रूपक की छेनियों से ठक-ठक का स्वर आता रहा। मित्र-मण्डली में वार्तालाप का स्वर कभी ऊँचा हो जाता, कभी नीचा।

नीलकण्ठ अपनी ही कल्पना में बहा जा रहा था, "क्या तू जानती है अलवीरा, कि कोई तेरी राह देख रहा है?..."

मित्र-मण्डली में हँसी-मज़ाक होने लगा। नीलकण्ठ का जी उठ चलने को हो रहा था। गली में कोई गाता जा रहा था:

जुए करे झिकि मिकि
तो ठारे मो मन रिझीलानी की
भेजी जा कागत चिट्ठी
नागर रे!

[आग झकमक-झकमक करती है। तुम्हारे लिए मेरा मन रीझ गया। कागज़ की चिट्ठी भेजते रहना। ओ रे नागर!]

नीलकण्ठ को ऐसा प्रतीत हुआ कि यह अलवीरा की आवाज़ है, जैसे वह लन्दन में बैठी उसके पात्र की बाट जोह रही हो।

कोइली बोली, "सूर्योदय से बढ़कर नाटक नहीं।"

अपूर्व ने मुस्कराकर कहा, "गगन से बढ़कर रंगभूमि नहीं।"

"पत्थर का सबसे बड़ा सम्मान यही है कि उसकी मूर्ति बनाई जाए। मैं भी पत्थर, तुम भी पत्थर। पाथुरिया कौन हुआ?"

"हर कोई तो पत्थर में प्राण नहीं डाल सकता।"

"क्या तुमने बाबा से कहा था कि मुझे भी पाथुरिया बना लो?"

"हाँ कहा था।"

"छोड़ो वह कथा। अपनी सम्बलपुर यात्रा की कथा कहो।"

"तो सुनो, कोइली! सम्बलपुर में एक छोटी-सी पहाड़ी है। नाम है 'बूढ़ा रजा पहाड़'। उसके शिखर पर है एक शिव-मन्दिर।"

"ऐतिहासिक स्थान होगा?"

"तुमने ठीक समझा। बूढ़ा रजा मन्दिर के पिछले भाग से पुराने महल तक सुरंग गयी है।"

"शत्रु के आने पर महल की रानियाँ, राजकुमारियाँ और बाँदियाँ उसी सुरंग से निकल जाती होंगी?"

"यही बात होगी। पर अब तो वह सुरंग नष्ट हो चुकी है। कोई

सौ-सवासौ सीढ़ियों पर स्थित है शिव-मन्दिर। पहाड़ी के चारों ओर धान के खेत हैं। मैंने मन्दिर की सबसे ऊँची सीढ़ी से नीचे बल खाती महानदी के दर्शन किये। सच कहता हूँ, वहाँ बैठे-बैठे तुम्हारी याद हो आई।''

''तो तुम मुझे साथ ले गए होते।''

''तुम्हें कौन जाने देता ?'' कहकर अपूर्व गाने लगा :

आहा रे बसन्त मुँही
केते कथा कहूँ मुँह भुलाई
मो मन देलू भुलाई
सजनी रे !

[आहा मेरी बसन्त-मुखी, मुँह हिला-हिलाकर तुमने कितनी कथा कही ! मेरा मन मोह लिया। ओ री सजनी !]

कोइली ने व्यंग्यपूर्वक कहा, ''मैं तो बसन्त-मुखी तब होती जब तुम मुझे बूढ़ा रजा मन्दिर की सबसे ऊँची सीढ़ी से महानदी का दर्शन करा लाते। उसे देखे बिना उसकी कविता कैसे लिखूँगी ? तुम बाबा से मुझे नहीं माँग सके, तो मेरी वह मूर्ति ही माँग लेते, जिसका नाम उन्होंने 'पत्थर की मुस्कान' रखा है।''

''मुझे उस मूर्ति का क्या करना है ? मुझे तो जीवित मूर्ति चाहिए।''

''वह तो अब मुश्किल है।''

''तुम तो अपने गीतों में मुझे याद कर लिया करोगी न, कोइली ? यह प्रेम तो भीतर-ही-भीतर मुझे सालता रहेगा।''

''हाय तुम कैसे रहोगे ?''

''जब तक साँस चलती है, जीना ही होता है। कोई नई बात तो नहीं।'' अपूर्व के शब्द पुराने थे, पर इनमें जाड़े की मुलायम धूप का स्पर्श कोइली को प्रिय लगा।

वे भुवनेश्वर में पार्वती की प्रतिमा देखने आये थे, जिसकी टूटी नाक देखकर अनायास ही उन्हें काला पहाड़ की कहानी स्मरण हो आई।

मूर्ति की रूप-छवि आज भी कायम थी, मानो काला पहाड़ के प्रहार के बावजूद मूर्ति के सौन्दर्य में तनिक भी अन्तर न आया हो।

"तुम्हारी आँखों में भी मैंने वही भंगिमा देख ली है कोइली, जो उस युग के मूर्तिकार ने पार्वती की आँखों में दिखाई है।" अपूर्व मुस्कराया।

"सच ?" कोइली की आँखें फैल गईं।

"सब दिन यह मूर्ति इसी मुद्रा में रहेगी।" अपूर्व ने गम्भीर मुद्रा में कहा, "पत्थर कितना कठोर है, मुद्रा उतनी ही कोमल।"

"पर मूर्ति की टूटी नाक साफ बता रही है कि काला पहाड़ को कितना क्रोध आया था। वह तो हिन्दू रहकर ही मुसलमान शाहज़ादी से विवाह कराना चाहता था। पण्डित बोले, ऐसी कोई व्यवस्था नहीं दी जा सकती। वह मुसलमान बन गया। फिर उसमें बदला लेने की आग भड़की। वह मूर्तियों की महिमा खण्डित करने निकल पड़ा।"

"पर यहाँ तो ऐसी कोई कठिनाई नहीं। फिर भी देखता हूँ, तुम्हारे बाबा को वह कटक वाला नया वकील ही तुम्हारे लिए अच्छा लगता है। उनका पलड़ा उधर ही झुक रहा है। यह भी सुना है कि वह तुम्हें देखने इधर आने वाला है।"

"उसे आने से तो मैं कैसे रोकूँ ? और मेरा मन तुम जानते ही हो।"

"तुम चाहो तो बाबा के सामने अड़ सकती हो। तुम्हें जाना पड़ गया तो मेरी क्या दशा होगी ?"

"यही तो चिन्ता की बात है। मेरा मन तुमसे छिपा नहीं। और देखो, थोड़ा-बहुत काला पहाड़ तो हरेक पुरुष में छिपा रहता है। बाबा से कह देखूँगी। वे न भी माने, तो तुम इस जीवित मूर्ति की नाक तो नहीं काट डालोगे न !"

अपूर्व प्रसंग बदलकर बोला, "कोई गीत सुनाओ, कोइली !"

कोइली गाने लगी :

हाथी कान दरपन

मोहिनी लगाइ के देला पान
घरे नहिं तांकर मन
नागर रे !

[हाथी के कान जैसा दर्पण है। किसने मोहिनी लगाकर पान दे दिया ? घर में सखी का मन नहीं लगता। ओ रे नागर !]

मल्ली फूल गोता साते
मोहिनी लगाइ के देला तोते
पासोरी गलू तु मोते
नागर रे !

[मोगरा के सात फूल। तुम पर किसने मोहिनी कर दी ? तुम मुझे भूल गए। ओ रे नागर !]

अपूर्व बोला, "यह शिकायत तो मुझे होनी चाहिए कि तुम पर कटक के वकील हरिपद ने ऐसी क्या मोहिनी कर दी कि तुम उसी की होने जा रही हो ?"

"मेरी वेदना तुम नहीं समझ सकोगे, अपूर्व !"

"ये केवल कहने की बातें हैं।"

कोइली गाने लगी :

नुवा गिलास र पना
तोर लागी साँग दुरुजा मना
घर करीं देलू छीना
नागर रे !

[नये गिलास का शर्बत। तेरे लिए घर का दरवाज़ा मना कर दिया गया। मेरा घर छिनवा दिया। ओ रे नागर !]

अपूर्व ने कहा, "अब मैं क्या करूँ ? नये गिलास का शर्बत तो तुम कटक ले जा रही हो, हरिपद के लिए।"

"तो मैं न जाऊँ ? अब कह दो।"

"तुम जाओ। अथाह गगन में विचरो। और मेरा मन सूर्य की प्रचण्ड

किरणों को नहीं सह सकेगा, कोइली ! इस पर से तुम अपना अंचल तो उठा ले जाओगी न ?"

"तो मैं न जाऊँ ? अब कह दो ।"

"मैं क्या कह सकता हूँ ? मेरे हृदय में आग लगी है । मैं बस यही कर सकता हूँ कि धुआँ बाहर न निकले ।"

"एक बात मैं भी कह दूँ, अपूर्व ! रात उतर आने पर जैसे दीये की बाती और चन्दा की जोत जल उठती है, वैसे ही हमारे दिल में विरह की आग जलती रहेगी । तुम कहो तो न जाऊँ ?"

राजा माने सो रानी, धरती माने सो पानी ! चतुर्मुख की यही आवाज़ है। बीते हुए कल, वापस नहीं आते। मूर्ति पत्थर की भाषा है। वह रहा तुम्हारा पत्थर; मूर्तिकार होने का दावा है, तो मूर्ति गढ़कर दिखाओ। अपना हाथ, जगन्नाथ। तुम्हारी सवारी तुम्हारे दोनों पैर हैं। अपने ही चले चला जाता है। मौन के गाछ पर शान्ति का फल लगता है। मधु संचय करने का मन है, तो मधु-मक्खियों के छत्ते पर ठोकर न मारो। अमंगल विश्वास को जितना धिक्कारो, उतना ही कम है। मूर्तिकार अपने मन में जैसा सोचता है, मूर्ति सदा वैसी ही नहीं बनती। जो पत्थर छेनी-हथौड़े का कहना मानता है, फल पाता है। पत्थर के प्राण धनुष के समान हैं, जो अत्यधिक ताने जाने पर टूट जाता है। जैसा मूर्तिकार, वैसी मूर्ति। पत्थर कितना भी मूर्ति का ध्यान क्यों न दिलाये, मात्र पत्थर की ओर देखते रहने से ही तो मूर्ति गढ़ी जाने से रही। मूर्तिकार की समझ-बूझ की परख उसके छेनी-हथौड़े से नहीं, तैयार मूर्ति से ही होती है। पत्थर कहता है—छेनी-हथौड़े से छिलना उतना दुःखदायी नहीं, जितना एक अनाड़ी मूर्तिकार के हाथ पड़ जाना। गूदे की अपेक्षा छिलके पर झगड़ने वाले मूर्तिकार की मूर्ति निष्प्राण रहती है। पत्थर की

मूर्ति गढ़ने वाले, साथ-साथ दिल पर भी दृष्टि डालता चल ! वह मूर्ति, जो मैं सबसे अच्छी गढ़ सकता हूँ, अभी तक बिन गढ़ी ही पड़ी है। ...ऐसी अनेक सूक्तियाँ चतुर्मुख की कला पर छाप लगाती आई हैं।

महानदी की ओर मुँह करके कोइली को जाना पड़ा। अपूर्व मुंह विसूरता रह गया। कटक वाला वकील ही नारायण को भी पसन्द था। कोइली की माँ ने भी अपने पति और ससुर की पसन्द पर ही स्वीकृति की छाप लगा दी। कुछ दिन विवाह की चहल-पहल रही।

दहेज में चतुर्मुख ने वह तीन फुट ऊँची मूर्ति भी दी, जिसमें कोइली का ही मॉडल लिया गया था। दोनों हाथ सिर के पीछे जुड़े हुए; मुख पर मुस्कान; आँखों में जैसे कोई प्रश्न-सा लहरा उठा हो।

अपूर्व ने कोइली की उस मुद्रा में वही प्रश्न ढूँढने का यत्न किया, जिसमें उसे थोड़ा ढाढस मिल सकता। जैसे कोइली अपने बाबा से पूछ रही हो—तुम मेरी जोड़ी अपूर्व से क्यों नहीं बना सकते ?

नीलकण्ठ की समझ में यह बात नहीं आ सकी कि अपूर्व अपने पिता से छिपाकर वह हाथीदाँत का पीढ़ा कोइली को उपहार में दे डाले। जागरी और गुरुचरण ने भी अपूर्व के इस प्रस्ताव का विरोध किया था।

नीलकण्ठ के माता-पिता तो जैसे आये वैसे ही कलकत्ते चले गए। वही तो उनकी तीन लोक से न्यारी मथुरा थी।

बेचारा अपूर्व ! उसे लगता, कोइली अब भी उसके दिल की कुण्डी खटखटा रही है। कई दिन तक वह निढाल-सा पड़ा रहा। कोइली भले ही दूसरे से ब्याही जाती, पर वह धौली में ही रहती, या फिर भुवनेश्वर में। कटक तो दूर है। कोइली के दर्शन करने कौन नित-नित कटक जाएगा ?

चतुर्मुख की बातें अपूर्व को घाव पर नमक छिड़कने वाली प्रतीत होतीं। कटक के उस वकील पर अपूर्व को रह-रहकर क्रोध आ रहा था। पर उसके लिए किसी अनिष्ट की कामना करना तो उसके बस का रोग न था। ऐसी कोई बात तो वह सोच ही नहीं सकता था, जो अन्त

में कोइली के लिए अच्छी न हो। उसे लगता, सारा धौली द्रुत गति से घूम रहा है। जब वह सोचता कि अब तो कोइली आँख में डालने को भी नहीं मिलेगी, उसे प्रिय-से-प्रिय आवाज़ सुनकर भी लगता कि फाटक की चूल चीख रही है।

अपूर्व को अब याद आ रहा था कि कोइली उसकी बात सुनते-सुनते मुलायम-सा हुंकारा भरती रहती थी। और उस समय तो कोइली की ठोड़ी का तिल भी मुस्कराने लगता था। न जाने कोइली में ऐसा कौनसा जादू था। उसकी बातों में रूप और स्नेह की कस्तूरी छिपी रहती थी।

उसने अपने मन को समझाया कि कोइली की कविता तो धौली तक आ पहुँचा करेगी। मुझे चुप रहना चाहिए, उसने अपने मन को समझाया, काहे बेचारी की राह में काँटे बोए जाएँ? काँटा चुभता है, तो मुख से हाय निकलती है। वहाँ कटक में महानदी के किनारे अपने बँगले की छत की ओर देखते हुए उसके गले की नीली नसें वीणा के तारों के समान तन जाती होंगी। मेरी याद उसे अवश्य सताती होगी।...

वह चतुर्मुख से बहुत-कुछ पूछना चाहता था।

वह कोइली के लिए किसी पंछी को सन्देश-वाहक बनाने की सोच रहा था।

वह कोइली के पैरों की आहट सुनने को तरस गया। वह धौली की धरती पर कोइली की पतली-लम्बी परछाईं देखने को वंचित हो गया। वह उसका स्वर सुनता रहता था—वह स्वर, जो काले बादलों में सुनहरे सपनों की गोट लगा देता था।

वह संस्कारों की चौकी पर बैठा सोचता रहता—चुप, जैसे कुहासा जम जाए।

कभी वह कोइली को कोसने लगता—तुमने मान-प्रतिष्ठा की डगर अपना ली। हमारे लिए छोड़ गई वेदना और कसक! कैसे हैं समाज के मूल्य! तुमने इनके सामने घुटने टेक दिए! दुःख का अन्त नहीं। क्या कोई स्वप्न-सुन्दरी तुमसे अधिक निठुर होगी?

कभी वह मन-ही-मन कोइली की ठकुर-सुहाती करने लगता—तुम संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हो। तुम गीत लिख सकती हो—प्यार के नाजुक नक्काशीदार गीत। अल्हड़ प्रेमी के कान में कुर्र करने वाले गीत। आँधी आए, मेह आए, तुम्हारे गीत तो रुकेंगे नहीं।

कभी वह चिल्लाकर कहना चाहता :

"सुन रही हो, कोइली ?"

कभी वह हताश होकर हवा में यह प्रश्न उछालता :

"आराम से लेटी हुई धरती के मुख पर झुककर गगन कभी अपने स्पर्श का जादू नहीं जगाता, तो फिर धरती क्यों निर्मोही गगन के लिए हाथ उठाकर वेदना का स्वर जगाया करती है ?"

एकान्त में राह चलते उसे प्रतीत होता कि कोइली की मूक परछाईं साथ-साथ चल रही है। जैसे वे अश्वत्थामा चट्टान से होकर धौलगिरि के ऊपर जा पहुँचे हों और कोइली कह रही हो—अब उतराई में मज़ा आएगा ! जैसे उसने स्नेह-कम्पित उँगलियाँ उसके होंठों पर रख दी हों और फिर सहसा उसके मुँह से निकल गया हो—पाथुरिया गली की अपनी कहानियाँ हैं।

उसे याद आता कि एक बार पूनम का चाँद देखकर कोइली ने कहा था—चाँद एक है, पर इसकी परछाईं कौशल्या पुखरी में भी पड़ती है और दया नदी में भी। उसे वैद्यजी की बात पर हँसी आ जाती, जो शूद्रक-रचित संस्कृत नाटक 'मृच्छकटक' [माटी की गाड़ी] के नायक चारुदत्त की प्रशंसा करते अघाते नहीं थे। किसी को नाटक में दिलचस्पी हो चाहे न हो, वैद्यजी यह बताए बिना नहीं टलते कि चारुदत्त को उसके साधु स्वभाव और दानशील आदर्श ने कहीं का नहीं रखा था। उसका बसन्तसेना नामक एक वेश्या से प्रेम हो गया। नाटककार दोनों के प्रेम की सराहना में पीछे नहीं रहा और अन्त में वेश्या को वधू का स्थान मिलकर रहता है। देखिए न ! इस नाटक की मूल-कथा की पृष्ठभूमि में अत्याचारी राजा पालक के पतन और उसके स्थान पर आर्यक की प्रतिष्ठा की कथा

चलती है।

"तो वैद्यजी, आपने कोइली के साथ मेरे प्रेम का पक्ष क्यों न लिया?'—यह प्रश्न कई बार अपूर्व के होंठों तक आया। पर वैद्यजी से यह पूछने की उसकी हिम्मत न हुई।

अपूर्व का मन दुःख की बेला में तड़प रहा था। अब कोई उसकी मदद नहीं कर सकता था, चाहे वह हड्डियाँ गला देता। बाबा के विरुद्ध खड़े होने का उसका मन होता, तो वह विवाह से पूर्व ही कोइली को भगा ले जाता।

भय का देवता मानो अपूर्व के चारों ओर मुँह चिढ़ा रहा था।

सभी जानते थे कि अपूर्व का स्वभाव बहुत शान्त है। पर अब उसका अशान्त मन बार-बार प्रश्न करने लगता, "मैंने वह पीढ़ा विवाह के अवसर पर कोइली को क्यों न दे डाला?"

जागरी सदा अपूर्व को यही समझाता, "दुःख तो बारह बहानों से हमारा भेद लेने आता है। दुनिया उतनी बुरी नहीं, जितनी तुम समझ बैठे। दुःख में बड़ी शक्ति है। कवि चण्डीदास कह गए—'सुखेर लागिया ए घर बाँधिनु, अनले पड़िया गेलो, अमिय सागरे स्नान करिलि, सकलि गरल भेलो!' देखो न, जब सुख के लिए बनाया घर आग में घिर जाता है और अमृत के सागर में स्नान करने से सब विष बन जाता है, तो यह विकट समस्या ही मनुष्य को रास्ता सुझाती है।"

"दुःख ही रास्ता साफ करता है, यह तो मैं मानता हूँ।" अपूर्व स्वीकार करता, "अंकुर वही है, जो अपने लिए अनुकूल माटी खोज ले।"

एक दिन अपूर्व ने जागरी से कहा, "मुझे यहाँ से जाना होगा।"

"कहाँ?" जागरी ने पूछा।

"कन्ध-देश जाऊँगा कलकत्ते, या कहीं और, अभी इसका निर्णय तो नहीं कर पाया।"

"बाहर जाकर क्या करोगे?"

"सेवा-मार्ग अपनाऊँगा।"

"हाथीदाँत के पीढ़े का क्या होगा?"

"साथ ले जाऊँगा।"

पाँचू ने वह पीढ़ा हथियाने का विचार छोड़ दिया था। दिल का दौरा पड़ने से लोकनाथ मिस्त्री चल बसे, तो पाँचू ने मुकद्दमा वापस ले लिया। बोला, "जिससे लड़ाई थी, वह नहीं रहा तो मुकद्दमा लड़ने से क्या लाभ ?"

जागरी और अपूर्व साथ-साथ रहते—भुवनेश्वर जायें चाहे अश्वत्थामा।

"स्नेह सनातन है, जागरी ! जैसे समय सनातन है।"

"यह तो मैं भी मानता हूँ कि नारी ही सृष्टि की आदि-शक्ति है।"

सुख की रेखा अपूर्व के लिए विलीन हो गई थी। वह जैसे अपनी ही आवाज़ सुनने के लिए बार-बार जागरी से बातें करने लगता।

कहीं से ढोल की आवाज़ आने लगती। साफ, सुडौल, भारी ध्रुव-पद। कोइली की अल्हड़, स्वस्थ और ऊँची हँसी उसके हाथ से निकल गई थी। वह पास रहती, तो ढोल की आवाज़ भी अच्छी लगती। अब तो न ढोल की आवाज़ अच्छी लगती थी, न हँसी-मज़ाक का फेर। सब बात बदल गई थी, जैसे उलटी हवा चलने से मशालों की शिखाएँ रुख बदल लेती हैं।

कोइली की रह-रहकर याद आती। मुख पर मेघ-सौन्दर्य, नयनों में मुग्ध स्नेह-भाव। जूड़े पर केवड़े का फूल लगा रखती थी। साड़ी की लपेट में स्पष्ट हो उठती देह-लता ! रह-रहकर ध्यान आता कि कैसे कोइली के नयनों में कभी लज्जा उभरती, कभी आशंका, कभी आनन्द-लहरी। उसके मुख पर हिलती-डोलती थी आनन्द-लहरी, पाँच-पाँच सात-सात की पाँत में नाचती युवतियों के समान, आधा पग आगे पौना पग पीछे, हाथ-में-हाथ दिये, सिर कुछ-कुछ झुकाए। कोइली स्वयं भी तो इसी तरह नाचती थी, सखियों के साथ। कोइली कितनी प्रिय लगती थी, जब वह गाती थी ! ढोल की थाप पर चार सुरों का आरोह-अवरोह। वह पास बैठी होती थी तो यही प्रतीत होता था कि गगन के तारे समीप आ गए हैं और चन्दा भी बस सात हाथ से दूर नहीं।

उसके जी में आता कि कौशल्या-पुखरी के घाट पर खड़ा होकर कोइली को पुकारे :

सातों कमल खिले पुखरी के कोइली जाग
कमल खिले जागे किरणों के सोन-सुहाग
जागे सोन-सुहाग कोइली जागी मन की आग

वह चाहता था, कोइली स्वयं कमल के समान खिलकर सामने आ जाए। कभी वह सोचता, कोइली अभी आएगी और मंगल-घट में आम के पत्ते डुबोकर उनसे उसके मुँह पर छींटे मारेगी।

उसे कोइली की याद सता रही थी, जो अपना वचन न निभा सकी और अग्नि को साक्षी बनाकर हरिपद के साथ चली गई।

"चुप क्यों हो गए, अपूर्व ?" जागरी ने पूछा।

अपूर्व ने उत्तर न दिया।

"क्यों न कन्व देश को चल दें ?"

"किस लिए ?"

"वहाँ एक छोड़ एक सौ एक कोइलियाँ मिल जाएँगी।"

"मैं तो उम्र-भर कोइली के लिए ही तड़पता रहूँगा।"

"उधर कोइली भी तो तुम्हें भूल नहीं सकेगी। मैंने तो बाबा से बहुत कहा—कोइली का विवाह करो, पर उसे पाथुरिया गली में ही रहने दो। मेरा संकेत तुम्हारी तरफ़ था।"

"कोइली मुझसे ब्याही जाती, तो पाथुरिया गली की हल्दी-रंगी कहानी में चार चाँद लग जाते। कौन जाने उसमें क्या-क्या लिखा जाता !"

जागरी बोला, "क्या कोइली के बिना जीवन जीने योग्य नहीं हो सकता ?" उसकी वाणी में आत्मविश्वास था।

अपूर्व की आँखों में आँसू आ गए।

"नादान न बनो !" जागरी ने अपूर्व को धीर बँधाते हुए कहा, "पाथुरिया गली की कथा तो पीढ़ियों की है, जैसे हमारे चूल्हों की आग। तुम्हारी प्रेम-कथा तुम्हारी ही नहीं, इसके पीछे अनगिन कथाएँ जुड़ी हैं।

अपूर्व को जैसे कोई भूली हुई बात याद आ गई।

"एक बार कोइली ने कहा था—हम मरकर केवड़े के फूल बनकर खिलेंगे।"

जागरी ने हँसकर कहा, "यह तो बड़ी बचकाना-सी बात है। सुनो, मैं तुम्हें कवि जयदेव की वाणी सुनाता हूँ।" और वह 'गीतगोविन्द' का पद गुनगुनाने लगा :

ललित लवंग लता परिशीलन, कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल, कूजित कुंज कुटीरे।

• • •

हर किसी के मुँह पर एक ही बात है :

अपूर्व पाथुरिया गली से भाग गया !

चतुर्मुख बोले, "चार दिन बाद अपने-आप लौट आएगा।"

"हमारा अन्तराल तो आज तक नहीं लौटा।" वैद्यजी गिला करते।

जागरी ने यह तुकबन्दी चला दी :

हम पाथुरिया गली के वासी, घर उदास गमगीन सीढ़ियाँ।
भानुमती का जादू छूटा, माँग रहीं वरदान पीढ़ियाँ।
घर से कितनी दूर भागकर, खड़ा हो गया हिरन डरा-सा।
मैं अपूर्व की याद में गुम-सुम, आँसू-आँसू भरा-भरा-सा।

हर कोई यही कह रहा था, "अपूर्व पाथुरिया गली से दूर टिक नहीं सकेगा।"

कौशल्या पुखरी के स्नान-घाट पर जैसे अपूर्व का नाम ही रटने को रह गया हो। बहसा-बहसी चल पड़ती। वही आकुल-व्याकुल-से प्रश्न—अपूर्व कहाँ चला गया ? कौन उसे सिर-आँखों पर बिठाएगा ?

"किस राह पर बँध गए उसके कदम ?"

"किस द्वार का भिक्षुक बन गया ?"

"कहीं बैठा पीड़ा का अध्याय बाँच रहा होगा।"

"कहाँ जाकर मन का तम्बू गाड़ दिया ?"

"कौन समझेगा उसके तर्कहीन संकेत ?"

स्नान-घाट पर ऐसे-ऐसे बोल रमणियों के होंठों पर तिरते रहते। देव-मन्दिर के खुलते किवाड़ों जैसे बोल अपूर्व की याद में खुल-खुल जाते।

कभी कोई साधु अलख लगाता :

अलख निरंजन ! भव-भय भंजन !
किसकी माया, किसका कंचन ?
जसोदा नन्दन !
कभी मथुरा, कभी गोकुल, कभी वृन्दावन !

साधु के हाथ पर चार पैसे रखकर कोई-न-कोई गृहलक्ष्मी पूछ बैठती, "बताओ बाबा, हमारा अपूर्व कब लौटेगा ?"

अपूर्व के लिए हर कोई चिन्तित था, जैसे उनकी वस्तु खो गई हो।

"जाना ही था तो हाथीदाँत का पीढ़ा साथ क्यों ले गया ?"

"वह सीधा कलकत्ते गया होगा ?"

"कहीं नौकरी कर ली होगी ?"

"अरे नौकरी किसने दी होगी उसे ?"

जो भी गाँव से चला जाए, उसके बारे में मुँह-आई बातें करना लोगों का स्वभाव है। हुलू-ध्वनि और शंख-नाद तो आवश्यक है, जब वर कन्या के गले में माला डालता है। इसके बिना विवाह-अनुष्ठान सम्पूर्ण नहीं होता। कोइली के विवाह में भी यह अनुष्ठान हुआ, जब कटक के वकील ने अपनी वधू को माला पहनायी। अपूर्व की आँखों के सामने यह अनुष्ठान हुआ।

वैद्यजी सोचते—अन्तराल घर पर होता तो अब तक वह भी ब्याहा जाता।

दूधों नहाओ, पूतों फलो ! यह आशीर्वाद जाने कब से चला आ रहा था। पर इसके लिए विवाह तो आवश्यक था।

लोकनाथ मिस्त्री का वंशधर घर से भाग गया, जैसे एक मुहूर्त्त में वैद्यजी का सुपुत्र अन्तराल भाग गया था। इतने वर्षों बाद वह मुहूर्त्त फिर आ गया। पहली घटना के साथ दूसरी घटना का मेल बैठ गया।

अन्तराल लौटा नहीं, अपूर्व चला गया।

लगता था धौली उन दोनों के लौटने तक उदास रहेगा।

वैद्यजी को न रामायण-महाभारत अच्छी लगती थी, न नागमती की कही-अनकही। अब सब जादू-टोना व्यर्थ हो गया। वे बार-बार जाकर नीलकण्ठ से कहते, "अपूर्व को ढूँढकर लाओ। अन्तराल मिल जाए, तो उसे भी खींच लाना।"

"हाट-बाट के सपने उदास हो गए, वैद्यजी !" नीलकण्ठ यही उत्तर देता, "अब मैं उन्हें कहाँ ढूँढूँ ? वे न आएँ, तो मैं अन्तिम साँसों तक तड़पूँगा।"

"मैंने नहीं सोचा था कि इतना दुर्बल-चित्त सिद्ध होग अपूर्व। वह भी कोई मनुष्य है, जो दुःख की काली चट्टान पर पैर न जमा सके !"

"घर से भागकर अपूर्व ने अच्छा नहीं किया।"

"मेरे पास तो कहने को कुछ नहीं रहा। अपूर्व के पैरों की चाप सुन पाऊँ तो मेरे कान धन्य हो जाएँ, फिर एक दिन अन्तराल भी लौट आयेगा शायद !"

"दोनों ही लौटेंगे—कोई आगे कोई पीछे।"

चतुर्मुख का दृष्टिकोण और था। वे वैद्यजी से यही कहते, "तो क्या मैं कोइली का जीवन बरबाद कर देता ? वैद्यजी, आप भी भोली बातें करते हैं। हरिपद के घर में कोइली जो सुख पाएगी, वह क्या उसे अपूर्व दे सकता था ? अपूर्व तो सात जन्म में भी कोइली को इतनी सुख-सुविधा न दे सकता था।"

कटक से कोइली की ख़बर आती रहती थी। विवाह के बाद वह कई बार धौली आयी। अपूर्व के भाग जाने का उसे भी दुःख था। पर अब तो वह दूसरे की हो चुकी थी।

एक दिन कोइली ने सोना से कहा, "मुझसे अपराध हुआ।"

"तुम्हारी कविता को तो लाभ होगा, कोइली!" सोना ने चुटकी ली, "तुम चाहो तो अपूर्व को अपनी कविता का विषय बना सकती हो।"

लगता था अपनी बात कहने के लिए कोइली के पास शब्द नहीं रहे। उसने केवल इतना कहा, "कला सम्पूर्ण रूप में स्वयं नारी है।"

"नारी ?" सोना ने चकित होकर कहा, "जिसके नैन-बाण से कोटि-कोटि विश्वामित्रों की तपस्याएँ भंग हो सकती हैं ?"

कोइली ने इसका कोई उत्तर न दिया। उसे लगा, सोना का व्यंग्य एक साथ अनगिन घाव लगा गया।

दूसरे ही दिन वह कटक लौट गयी। हरिपद से भी उसकी उदासी छिपाए न छिप सकी। वह भी जानता था कि अपूर्व धौली से भाग गया और अब उसके लौटने की बहुत आशा नहीं है।

अपूर्व की रेखा कोइली के मन पर इतनी गहरी थी कि उधर से

उसका मन हटता ही न था। जैसे एक अजीब-से अनमनेपन का शाप लग गया हो—अथाह, गहरे अनमनेपन का शाप। पुखरी की सीढ़ियों की तरह जैसे अनमनेपन की सीढ़ियाँ नीचे को उतर रही हों। कई बार उसे लगता, अपूर्व उसे पुकार रहा है—'तुम सुनती ही नहीं, कोइली ! मैं कब से चिल्ला-चिल्लाकर कण्ठ सुखा रहा हूँ !'···वह मानो उसे समझाती—'अब मुझे भूल जाओ, अपूर्व! मैं तुम्हारी कृतज्ञ रहूँगी। ऐसा न हो कि हरिपद के हाथों तुम बुरी तरह पिटो। मुझे भूल जाओ। मर्यादा का कुछ तो विचार करो।'···जैसे अपूर्व कहता—'जनम अवधि हम रूप निहारल!'··· कोइली अब इसके सिवा क्या उत्तर देती—'मेरा रूप तो अब हरिपद के लिए है। अब तुम मुझे रिझा नहीं सकते। मुझ पर हरिपद का अधिकार है। तुम पर उसी की रोक लग गई।···'

मानो कोइली की कल्पना में अपूर्व की आँखें सजल हो जातीं। और जैसे वह उसे समझाती—'कोई देख लेगा। तुम भाग जाओ।'

'पहले अपने मन का चोर तो निकालो !' जैसे अपूर्व आग्रहपूर्वक कहता, 'नव अनुरागिनि राधा, किछु नँहि मानय बाधा ! एक युग तक हमारी कथा चली। अब मैं कैसे भूल जाऊँ ? मैं तो यही कहूँगा, कोइली !—नव वृन्दावन नव-नव तरुगन नव-नव विकसित फूल !···मेरी बात गाँठ बाँध लो। मैं तुम्हें भूल नहीं सकता, खो नहीं सकता। हमारी राह में कोई व्यवधान नहीं रहेगा। मुख से आँचल हटाओ। मैं तुम्हारा मुख देखूँ। स्नेह की छाया में तुम्हारी कथा सुनूँ।···आओ, मैं तुम्हें फूल का अर्घ्य दूँ।'

'अब यह फूल का अर्घ्य सजाना व्यर्थ है।'

'सोचा था, हम जन्म-जन्मान्तर तक एक-मन, एक-प्राण होकर रहेंगे।'

'अब मैं यह नहीं सुन सकती। लाख तुम्हारा स्नेह छन्द-भरे स्वर में गूँज उठे।'

'तो तुम वह दीया बुझा दोगी, जिसे हमने इतने यत्न से जलाया

था ? क्या हमारी कथा यों चुप हो जाएगी ?'

'अब तो यह बात काँटे-सी चुभ-चुभ जाती है।'

'मैं तो तुम्हारी पूजा करता रहूँगा। मेरी आँखों की पुतलियों में अपनी छवि अंकित कर दो।'

'अब यह याचना व्यर्थ है। दूर हट जाओ। मेरी आज्ञा शिरोधार्य करो। समझ लो कि वह मुहूर्त्त कभी का टल गया।'

'तुम्हारा नाम लिखकर तकिया के नीचे रख छोड़ता हूँ, कोइली ! इतनी दूर से मैं तुम्हारे केशों से आती सुगन्ध सूँघ लेता हूँ।'

'नहीं-नहीं, अब मेरे केशों की सुगन्ध तुम्हारे लिए नहीं है। समझ लो कि बचपन की कथा का वह क्षण वहीं कहीं थककर चुक जाता है।'

'मैं एक ही समय दो नावों पर पैर रखूँ, मुझसे यह आशा छोड़ दो।'

'तुमने तो कहा था, हम नूतन स्वर्गलोक रचेंगे। लगता है, वह स्नेह सुलभ नहीं रहा।'

कोइली यह तो नहीं चाहती थी कि अपूर्व को एकदम भूल जाए। यह वैसे भी सहज न था। वह सोचती, 'कितनी दूर बह आये थे हम ! अब जागो, मेरी कविता ! अंकित कर दो वह कथा शब्दों में, संकेतों में।'

कविता में कोइली पूछती, "चीथड़े और रेशम पास-पास क्यों साँस लेते हैं ?"

कभी वह यह प्रश्न उठाती, "पन्द्रह सदियों पहले चीन देश ने जो पोथी छापी थी, वह कथा कोई प्रेम-कथा थी ?" कभी वह सन्ध्या का दम घोटने वाले आँधी-तूफान का चित्र अंकित कर देती, "गुफा में सोते सपने, जाग ! नई स्वर्णिम वेला आई !" कभी वह टेर लगाती, "मैं युगान्त की कविता हूँ। पाताल में उतरो मेरे साथ मेरे सपनो !' ...साड़ी के चित्रित अंचल-सी मेरी प्रतिभा। उषा-सूक्त-सी मेरी प्रतिभा। आप कहेंगे नित-नूतन कविता की जय ! कोई अध्यापक सहसा पूछेगा— "हाथीदाँत के पीढ़े वाला, इसमें ऐसा क्या आशय है ? अमराई में बौर

आया, अजी महाशय !…"

कभी कोइली यों अपने भाव अंकित करती :

जन्म-जन्म क्या इसी तरह जीना है ?
सोंधी माटी में नित-नित खिलती हैं साँस
जैसे नदी-किनारे काँस
ओ रे अनागत, पाँखें खोल
ओ रे पत्थर, तू भी बोल
जल-प्रपात-सा किसका स्वर ?
उगा चेतना का दिनकर।
इस शिल्पी ने मेरा कुण्ठित मन चीन्हा है।

कभी उसे बाबा के शब्द याद आते, "निजी संग्रहों में मूर्तियों की ठीक से रक्षा हो पाएगी, ऐसा मैं नहीं मानता। अमुक-अमुक कला-प्रेमी कटक में जाने कब से मूर्तियाँ संग्रह करते आ रहे हैं, पर जब भी अवसर पाते हैं, सस्ते भाव की मूर्ति विदेशी यात्रियों को मंहगे दामों बेचने से नहीं चूकते।"

एक दिन कोइली ने हरिपद को बताया, "बाबा कहा करते हैं—मूर्तिकार के लिए अपनी मूर्तियों को अपने से अलग करना बहुत दुखदायी होता है। मेरी मूर्तियों की कुछ अनधिकृत प्रतिकृतियाँ दूसरों ने बनाकर बेचने का धन्धा अपनाया है, यह देखकर दिल जलता है।"

"बाबा की मूर्तियों की छाप मेरे मन से हटती ही नहीं। तुम बाबा पर एक कविता लिखो।" हरिपद ने आग्रहपूर्वक कहा।

"लिखूँगी। कई बार सोचा है।"

हरिपद ने गम्भीर स्वर में कहा, "चिन्ता की बात तो यह है कि जहाँ लेखक को प्रकाशक द्वारा प्रकाशित पुस्तक के प्रत्येक संस्करण पर बिक्री के अनुसार रॉयल्टी मिलती रहती है, जो उसके उत्तराधिकारियों तक पहुँचती है, वहाँ मूर्तिकार और चित्रकार बड़े घाटे में रहते हैं, क्योंकि जब वे अपनी कोई कृति किसी के हाथ बेच डालते हैं, तो सदा के लिए

उसके स्वामित्व से ही नहीं, रॉयल्टी के रूप में होने वाले लाभ से भी वंचित हो जाते हैं।"

"यह स्थिति तो बदलनी होगी।"

"कलाकृति के सम्बन्ध में एक और दृष्टिकोण भी हो सकता है। कोई एक व्यक्ति किसी मूर्तिकार या चित्रकार की कृति का एकाकी स्वामी बनकर बैठ जाए तो यह पूरे समाज के साथ घोर अन्याय है। एक अच्छी मूर्ति या चित्र के प्रकाशन द्वारा उसका रस-परिचय लाखों घरों तक पहुँचाया जा सकता है। विदेशों में ऐसे प्रकाशन राष्ट्रीय दृष्टिकोण से किये जाते हैं। कलकत्ते में नैशनल लाइब्रेरी में मैंने लियोनार्डो दा विंशी के चित्रों पर आधारित बहुत ही सुन्दर प्रकाशन देखा था, जिसका मुद्रण पेरिस में हुआ था। रोदाँ की मूर्तियों पर भी एक बहुत ही सुन्दर पुस्तक देखने को मिली थी, जिसे कलकत्ते से मँगवाकर मैं बाबा के जन्मदिन पर उन्हें भेंट करना चाहता हूँ।"

"अवश्य भेंट कीजिए वह पुस्तक। मेरी भेंट होगी मेरी वह कविता, यदि मैं लिख सकी।"

पाथुरिया गली के बड़े-बूढ़े अक्सर यह कह छोड़ते थे, "चोरी, चुगली और व्यभिचार से बचे रहो तो मामला ठीक है। बाकी स्वार्थ के लिए तो खुली छुट्टी है।" यह भी कहते थे, "दो कुटुम्बों के बीच मुड़-मुड़ नाता-रिश्ता होना न मानसिक विकास के लिए हितकर है, न सामाजिक स्वास्थ्य के लिए।" तीर्थयात्रा का प्रसंग सबको प्रिय था। जो पाप किसी के हाथों हो गए, उनका इलाज था तीर्थ-यात्रा। समाज के किसी कड़े नियम की अवहेलना हो जाए, तो प्रायश्चित द्वारा समाज को सन्तुष्ट करो। देवी-देवता के सामने झुके रहने में ही लाभ माना जाता। धार्मिक रीति-रिवाज में परिवर्तन की बात भूलकर भी न सोची जाती।

नीलकण्ठ के विलायत से लौटने पर चतुर्मुख ने समाज को सन्तुष्ट करने के लिए प्रायश्चित की बात उठायी तो नीलकण्ठ को हँसी आ गई थी। पर पाथुरिया गली के लोग तो तभी सन्तुष्ट हुए, जब उसने समुद्र-यात्रा का उपचार करते हुए देवता से क्षमा-याचना की और लोगों के लिए भोज-भात का प्रबन्ध किया।

"धर्म में रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का क्या काम ?" नीलकण्ठ

साहसपूर्वक कहता। पर जैसे घर का कबाड़ बाहर फेंकने की बात बहुत कम लोगों की समझ में आती है, पाथुरिया गली के लोग हँस छोड़ते।

परिवर्तन के लिए जो आग्रह और साहस चाहिए, उसकी कमी नीलकण्ठ को बहुत खटकती थी। पाथुरिया गली पुरातन को कायम रखने के पक्ष में थी, और इस भावना के पीछे सबसे अधिक एक प्रकार के अन्धे भय का हाथ था। वही कुलाचार, वही व्रत-उत्सव, वही अन्ध-विश्वास—इन्हीं का श्रद्धापूर्वक पालन करना होगा। इसके विरुद्ध वह कोई बात कहता, तो बाबा उत्तर देते, "तर्क और शंका की उँगली पकड़-कर चलोगे, तो पूरे नास्तिक बन जाओगे।"

"तर्कशुद्ध दृष्टि क्या इतनी ही बुरी है, बाबा?" नीलकण्ठ एक जिज्ञासु की तरह कहता, "क्या आग के ऊपर से राख हटाना भी नास्तिकता है?"

बाबा मुस्कराकर कहते, "पुरातन का अनादर तो भूलकर भी न करो।"

"पुरातन के प्रति तो मेरे मन में मुड़-मुड़कर कृतज्ञता जाग उठती है। और भक्ति भी सिर उठाती है, बाबा!"

लेकिन बाबा के मुख से बचपन में सुनी हुई उस बात पर तो उसे खुलकर हँसने की आदत थी। जब कलकत्ता से पुरी तक रेल की पटरी बिछायी गई और रेलगाड़ी के दर्शन हुए तथा धुआँ छोड़ता इंजन सामने आया, तो भोले-भाले लोगों के मन में वही देव-पूजा वाली भावना जाग उठी। आज यह बात कितनी हास्यास्पद प्रतीत होती थी कि उन दिनों दूर-दूर से लोग पूजा की थाली में नारियल लेकर आते थे। और यह प्रसंग तो वाकई अच्छा-खासा चुटकुला था कि उन दिनों पाथुरिया गली का कोई भी व्यक्ति भुवनेश्वर के रेलवे स्टेशन पर गाड़ी के डिब्बे में बैठने से पहले डिब्बे की देहली छूकर वह हाथ माथे से लगाना अपना कर्तव्य समझता था।

रेल के इंजन पर नारियल चढ़ाने की बात भी आज किसी चुटकुले से कम न थी। यह बात अपूर्व को हँसाने के लिए काफ़ी थी। मगर

आज अपूर्व का किसी को पता न था।

पाथुरिया गली में कहाँ-कहाँ सास-बहू में तू-तू मैं-मैं हुई या किस-किस घर में क्या-क्या पका, साँझ उतरने से पहले ही खुली पुस्तक की तरह जग-ज़ाहिर हो जाता था। नीलकण्ठ यह बात अपने पत्र में वीरा को कई बार लिख चुका था।

वीरा अपने पत्र में पूछती, "क्या अब भी गर्मियों के दिनों में कच्चे आम को भूनकर बनाया हुआ 'पना'[1] पीने का शौक है ?"

नीलकण्ठ दिल खोलकर अपने पत्र में अलवीरा के अनुभव की दाद देता। वह उसे विश्वास दिलाता कि विलायत से लौटने पर जब वह धौली गाँव आएगी तो उन दिनों कच्चे आम का मौसम रहने पर उसे भी अवश्य आम का 'पना' पिलाया जाएगा।

पत्र में नीलकण्ठ यह भी लिखता कि बुढ़ापे के बावजूद बाबा का एक भी दाँत न टूटा, न कमज़ोर हुआ। वह यह भी लिखता कि बाबा ने उसकी बहन कोइली का विवाह कटक के एक वकील से करके घोर अपराध किया, जबकि वह जानते थे कि पाथुरिया गली के लोकनाथ मिस्त्री के लड़के अपूर्व को वह सच्चे दिल से चाहती है। एक पत्र में उसने कोइली के विरुद्ध भी बहुत ज़हर उगला, जिसने बुज़दिली दिखाकर बेकार उस बेचारे अपूर्व को घर छोड़ने पर विवश कर दिया। वह यह भी लिखता कि पाथुरिया गली में हर कोई अलग-अलग कल्पना का घोड़ा दौड़ा रहा है, फिर भी यह पता नहीं चलाया जा सका कि इस समय अपूर्व कहाँ रहता है।

सभी जानते थे किच तुर्मुख को महत्त्वाकांक्षा का रोग नहीं लगा। पर कोइली की दादी को प्रतिष्ठा का लोभ रहता। वह सदा यही सोचती कि घर में सोना बरसे और फिर वह परोपकार का यश प्राप्त करे। गली के सार्वजनिक कामों में जी-जान से रस लेना दादी को सदा प्रिय रहा। उसके मन में सबके लिए स्नेह की गंगा बहती थी।

---

१. शर्बत।

"आकाश की ओर संकेत करने वाले मन्दिरों के शिखर तो हमें सदा प्रिय रहेंगे !" चतुर्मुख छेनी चलाते-चलाते कहते, "बचपन में मुझे दो ही कल्पनाएँ पसन्द थीं—पहाड़ खोदकर सुरंग बनाना और पुल तैयार करना। बड़े होने पर ये दोनों काम मुझसे दूर रहे।"

नीलकण्ठ मूर्ति बनाते समय कहता, "लन्दन में अलवीरा यह सूक्ति नहीं भूलती थी—जो पैदल चलता है उसी की यात्रा सबसे अच्छी होती है।"

"अलवीरा की यह आदत तो मुझसे भी छिपी नहीं," बाबा आँखों से चश्मा उतारकर इसे साफ करते हुए कहते, "जब भी वह अपने पिता बुलके साहब के साथ यहाँ आयी, उसे मैंने पैदल चलने की शौकीन पाया। वह तो कोई पूर्व जन्म की उड़िया नहीं कन्ध-कन्या प्रतीत होती है।"

उठती जवानी में बाबा ने कन्ध-देश की खूब पैदल यात्रा की थी, यह बात वे नीलकण्ठ को सविस्तार बता चुके थे, और मिशनरियों द्वारा कन्ध जाति में धर्मान्तर का आन्दोलन उन्हें बहुत अखरता था।

बाबा कहते थे, "कोई प्राणी जितना अधिक दूर का हो, उसके प्रति हमारा मन उतना ही अधिक खिचता है।"

जागरी हँसकर कहता, "घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध !" और फिर वह यह तर्क प्रस्तुत करता, "जो बात दूसरे लोग कर सकें, उसे हम सब कर सकते हैं।"

जब कोई सोना के रासलीला में उतरने का प्रसंग ले बैठता, तो जागरी झेंप जाता। यह बात छिपी न रहती कि भले ही चतुर्मुख के कारण उसने विरोध नहीं किया, पर वह इसे ठीक नहीं समझता।

अपनी बात सुनाते समय हर प्राणी यह चेष्टा करता कि इसमें गली की पुरानी यादों का रंग आ जाए। लोग लाख सोचते कि अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना गलत बात है, फिर भी आत्म-प्रशंसा की पुट आये बिना न रहती। ऐसे लोगों की आलोचना में जागरी सदा यही टंकार लगाता :

"अरे भैया, खुद अपने नाम 'सर्टिफिकेट' लिखना कहाँ से सीख आए ?"

पास से गुरुचरण थाप लगाता :

"अपने को महान् सिद्ध करने के लिए नहीं, बल्कि दिल का हाल बताने के लिए बात करो, यही तो पाथुरिया गली की सिखावन है।"

पास बैठा कोई प्राणी चुटकी लेता :

"क्या आप यह नहीं मानते कि सोने की अपेक्षा सुनार की कला ही अधिक बोलती है ?"

फिर कोई कहता :

"भैया, यह तो ज़मीन जोतने वाली बात है। जितना गहरा हल चलाओगे, ज़मीन का उपजाऊपन उसी हिसाब से बढ़ता जाएगा।"

एक दिन नीलकण्ठ अपने अड्डे पर काम करते-करते जागरी के आग्रह पर लन्दन का प्रसंग ले बैठा :

"सुनो जागरी, उस दिन लन्दन की सोर्थर आर्ट-गैलरी में इतनी भीड़ थी कि तिल रखने को जगह न थी।"

"क्या मामला था, भैया ?" जागरी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"देश-देश के श्रेष्ठ चित्र-व्यवसायी वहाँ आये हुए थे, और ज़्यादा भीड़-भड़क्का तो उन सैकड़ों लोगों के कारण था जो चित्र खरीदने के लिए जेब में पैसे नहीं रखते थे, फिर भी वे चित्र-कला के रसिये थे। तरह-तरह के चित्रों की अपनी दुनिया थी।"

"बड़े कीमती चित्र होंगे ?"

"सुनो तो, नीलाम करने वाले के डंके की चोट पर ये चित्र बिक रहे थे। बड़े-बड़े 'आर्ट-डीलरों' की आँखें नाच रही थीं।"

"कितनी देर चली यह नीलामी ?"

"दूसरे बहुत से चित्र बिकते तो बहुत देर न लगी, पर सेज़ाने के एक चित्र पर तो सब-के-सब आर्ट-डीलरों में होड़ शुरू हो गई।"

"आखिर कितने में बिका वह चित्र ?

"सात हज़ार पौंड पर उस चित्र का निपटारा न हुआ। नीलाम की बोलियाँ ऊपर-ही-ऊपर उठती गईं। वह था 'नीली पोशाक वाले किसान का चित्र।'"

"आख़िरी बोली क्या रही ?"

"एक लाख चालीस हज़ार पौंड।"

"हरि बोल !"

"तुमने यह नहीं पूछा कि सेज़ाने था कौन ? सन् १९०७ के जाड़े की एक बर्फीली रात में सेज़ाने इस दुनिया से चल बसा। किसी ने उसकी मृत्यु का शोक न मनाया। न कोई उसके लिए रोया, न किसी ने उसकी कब्र पर फूल चढ़ाए।"

"और तुम कहते हो, वह बहुत बड़ा चित्रकार था ?"

"सुनो तो। सेज़ाने जीवन-भर समाज द्वारा ठुकराया जाता रहा। उसके हिस्से आया अपमान या फिर घृणा का तूफ़ान। सरकारी लोगों ने ही नहीं, उस युग के कला-आलोचकों ने भी जमकर उसका विरोध किया।"

"उसका कसूर क्या था ?"

"यही कि उसने कला की परम्परागत मान्यताओं और कृत्रिम सीमाओं के विरुद्ध विद्रोह किया। उसकी यही कोशिश थी कि कला को जीवन के समीप लाया जाए। आख़िर एक दिन सेज़ाने को पेरिस से भाग जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। उसके बाद वह अँधेरे और गरीबी में खो गया।"

"फिर क्या हुआ ?"

"निर्जन ग्राम के आँचल में गरीबी का जीवन बिताते हुए भी सेज़ाने ने अपनी साधना न छोड़ी। पेरिस से निर्वासन के ये लम्बे पच्चीस बरस उसने चित्रों की दुनिया में बिता दिए।"

"कमाल है !"

"धन नहीं, कीर्ति नहीं, स्नेह नहीं, परिवार नहीं। केवल गरीबी की कुछ तस्वीरें ही सेज़ाने की पूंजी थी। जिन चित्र-शिल्पियों का उस युग

के पेरिस में दौरदौरा था, उन्होंने सेज़ाने को पागल करार दिया।"

"ग्रौर उसी पागल सेज़ाने की एक तस्वीर सैंतालीस हज़ार पौंड में बिकी ?"

"यही तो ज़माने के रंग हैं, जागरी ! मैं कहता हूँ कोई ग्राज सेज़ाने की कब्र के पास जाकर यह कहे, तो क्या कब्र में सोते हुए पागल चित्रकार को इसका विश्वास हो सकेगा ?"

"मेरा मन तो यह कहता है कि ग्रगर कोई ऐसी हरकत करेगा भी, तो पागल चित्रकार की कब्र के भीतर से एक ग्रट्टहास सुनायी देगा।"

"हाँ तो मैं कह रहा था जागरी, कि सेज़ाने का यही ग्रपराध था कि वह ग्रपने युग से, ग्रपने समय से बहुत ग्रागे था। ग्रब इस पर मुझे केवल यही टीका करनी है कि ग्रगर कलाकार इसी तरह लांछना, वंचना ग्रौर कंगाली की मार सहते हुए भी समय से ग्रागे न चले, तो कला लम्बे डग कैसे भरेगी ?"

"तुम्हारा मतलब है, समाज सदा कलाकार के पीछे चलता ग्राया है ?"

"इस सत्संग में पाथुरिया गली देश-काल के भेद लाँघती ग्राई है, भैया !" कहते हुए जागरी ने गाँजे का दम लगाया।

नीलकण्ठ बोला, "सेज़ाने की कथा मुझे ग्रच्छी लगी। ग्राज वह जीवित होता तो हम भी उसे ग्रपना परिचय लिख भेजते।"

जागरी ने हँसकर कहा :

"क्या ग्रात्म-परिचय की भूख ही सबसे बड़ी भूख है ?"

गुरुचरण ने प्रसंग बदलकर कहा :

"ग्राप लोगों को दूर की कौड़ी ढूँढ़ लाने की इतनी चिन्ता है, पर यह बात क्यों नहीं सताती कि ग्रपूर्व घर छोड़कर चला गया ?"

अपूर्व कहाँ है, इसकी कोई खोज-खबर न थी। कई मास बीत गए। धौली अपूर्व के वियोग में उदास थी।

गगन महान्ती कहते, "उस देवता को तीन बार प्रणाम, जो हमें बता दे कि हमारा अपूर्व कहाँ है।"

"उसे कितना क्षोभ हुआ, कैसे न होता ?" वैद्यजी उत्तर देते, "पर वह घर से क्यों भाग गया ? मेरा वश चलता तो काका को राजी कर लेता।"

"काका तो कभी न मानते। अब तो यह चर्चा व्यर्थ है। कोइली ब्याही जा चुकी है। अपूर्व को लौट आना चाहिए। उसके लिए कन्या की तो कमी न होगी।"

लगता था अपूर्व के लिए धौली छल-छल आँसू रोती है। धूप-छाँह की आँख-मिचौनी को भी जैसे अपूर्व का वियोग छू गया हो। कड़ियल चट्टानें भी जैसे उदास हो उठी हों। जैसे एक गहरा दर्द सहने की बेला टाले न टलती हो। जीवन का चिर-सत्य जैसे धौली के सिंहद्वार पर आकर खड़ा हो गया हो।

"यह अभिशाप कैसे दूर हो, वैद्यजी ?" गगन महान्ती बार-बार

पूछते। उस समय मानो हाट-बाट करवट बदलकर उत्तर देने को उत्सुक हो उठते। किसे ख़बर थी, धौली ने कितना सहा है।

वैद्यजी अपूर्व की बात करते-करते कहते, "मैंने हाल ही में कहीं पढ़ा था—मनुष्य के जीवन-पुष्प की अनेक पंखुड़ियाँ हैं और एक के कुम्हला जाने से दूसरी बहुत देर तक हरी नहीं रह सकती। लगता है, गर्वीले स्वभाव के कारण ही अपूर्व ने गाँव छोड़ दिया।"

गुरुचरण ठण्डी साँस लेकर कहता :

"न उसने किसी से सहानुभूति माँगी, न दुहाई दी, न किसी को मन का भेद बताया। उठाया पीढ़ा और चोरी-चोरी घर से निकल पड़ा। उससे तो पाँचू ही ठीक निकला, जिसने लोकनाथ की मृत्यु के बाद तुरन्त मुकद्दमा वापस ले लिया था।"

गगन महान्ती भी अपना स्वर मिलाए बिना न रहते :

"अब वह जहाँ भी रहेगा, मन की घुटन से पार नहीं पा सकेगा, और उसकी भावनाएँ पोथी के समान बन्द रहेंगी।"

गगन महान्ती के विविध-रंगी व्यक्तित्व में वेदना का स्वर सबसे उभरकर आता था। स्कूल में सबको ठण्डा-मीठा रखने के प्रयत्न में वे वर्षों से सफल होते आये थे। उनकी दूसरे विवाह की सबसे छोटी लड़की थी मीनाक्षी, जिसने इसी वर्ष मैट्रिक की परीक्षा में सबसे अधिक नम्बर लिये थे।

एक दिन वैद्यजी की दुकान पर बैठे-बैठे गगन महान्ती बोले, "अपूर्व वापस आ जाए तो मैं उसके साथ अपनी मीनाक्षी ब्याह दूँ।"

वैद्यजी ने मुस्कराकर कहा :

"विचार अच्छा है। अब तो अपूर्व को आ ही जाना चाहिए।"

बातों का क्रम मकड़ी के ताने से होड़ लेता रहा। वैद्यजी जानते थे, एक प्रकार से मीनाक्षी के कारण ही उनका अन्तराल घर से भाग गया था। उन दिनों अन्तराल ने मीनाक्षी की ओर ताक-झाँक की, जिससे गगन महान्ती ने वैद्यजी से शिकायत की। वैद्यजी ने घर जाकर बात की।

नागमती क्रोध से लाल-पीली होकर अन्तराल पर बरस पड़ी। उसी की यह प्रतिक्रिया हुई कि अन्तराल घर से भाग गया। और अब गगन महान्ती उसी मीनाक्षी को अपूर्व से ब्याहने को तैयार थे।

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर धुआँ छोड़ते हुए कहा, "आज एक यात्री ने अपनी भाषा का एक बोल सुनाया, जो मैंने याद कर लिया। आप भी सुनिए :

बात है भई बात है
चकवों की बरात है
हूँ-हुंकारा देते जाना
कथा को चलाते जाना
एक हुंकारा छूट गया
चकवा कण्ठ फूट गया
पाप चढ़ा किसके माथे
ऊँघते बबुआ के माथे

मैंने उस यात्री से कहा—'यह पाप किसके माथे' का उत्तर मैं और तरह से दूंगा। वह बोला—अच्छा कहो। मैंने कहा—वह पाप अपूर्व के माथे। उसने पूछा—अपूर्व कौन ? मैंने उसे अपूर्व की कथा कह सुनाई। उसे मानना पड़ा कि घर से भाग जाने के ज़िम्मे यह पाप आ सकता है।"

उपस्थित जनों पर विशेष प्रभाव होते न देखकर जागरी ने कहा, "क्या बताऊँ ! उस यात्री ने अपनी भाषा का एक बोल सुनाया, जिसे बच्चे, बूढ़िया का खेल खेलते समय अलापते हैं। आप भी सुनिये :

'कुबड़ी कुबड़ी का हेराना ?
'सुई हेरानी।'
'सुई लैके का करबे ?'
'कन्था सीबै !'
'कन्था सीके क्या करबे ?'

'लकड़ी लाबै ।'
'लकड़ी लाय के क्या करबे ?'
'भात पकइबै ।'
'भात पकाय के का करबे ?'
'भात खाबै ।'
'भात के बदले लात खाबै !'

उस यात्री ने बताया—कुबड़ी बनी हुई लड़की के ज़ोर से लात मारते हैं। मैंने अपूर्व की ओर प्रसंग मोड़ते हुए कहा—"खेल की बुढ़िया सुई भले ही ढूँढ ले, पर क्या वह अपूर्व को ढूँढकर ला सकती है ?"

इस पर सब हँस पड़े, जैसे अपूर्व का किसी को दुःख न हो।

"लगता है, अपूर्व भाग गया, जब कि धौली लोगों को आशीर्वाद बाँट रहा था।" वैद्यजी ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा, "रात को मुझे किसी पक्षी की करुण पुकार सुनायी देती है, जैसे वह भी अपूर्व को पुकार रहा हो।"

"हम इतना भी नहीं जानते कि अपूर्व कहाँ है।" गगन महान्ती भी चुप न रहे, "आज मानो धौली के मुख में बोल नहीं।"

"क्या धौली को अपूर्व की आवश्यकता न थी, मास्टरजी ?"

"धौली तो उसे जी-जान से चाहता है, वैद्यजी !"

फिर गगन महान्ती ने चतुर्मुख की बात छेड़ दी : "कुछ लोग उन्हें अहंकारी स्वभाव का प्राणी समझते हैं, पर वे तो कहते हैं—हम मनुष्य का विश्वास करते हैं, उसका सम्मान करते हैं, उसे मूर्ति में उतारते हैं, और मैं तो कहूँगा—"

"तो फिर उन्होंने अपूर्व का विश्वास क्यों न किया ?" वैद्यजी गगन महान्ती की बात काटकर बोले।

"मैं कला की बात कह रहा था, तुम उनके घर की बात ले बैठे।"

"कल मैं उनके पास गया तो बोले—मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं जन्म-जन्मान्तर का पाथुरिया हूँ और जैसे इस जन्म में भी मैंने किसी

एक मुहूर्त्त में मूर्ति गढ़ने का श्रीगणेश न करके सदा से ही मूर्ति गढ़ता आया हूँ।"

"यह तो मैं भी मानता हूँ कि उनके जीवन का उद्देश्य केवल मूर्तिकार बनना ही था, पर क्या यही बात नीलकण्ठ के सम्बन्ध में कह सकते हैं?"

"नीलकण्ठ की अभी क्या कहें? वह तो बाबा का हस्तक्षेप भी नहीं सह सकता। स्वयं अपना मार्ग खोजना ही उसे प्रिय है। यह उसका सौभाग्य है कि बुलके साहब ने उसे विलायती मूर्ति-कला की शिक्षा के लिए लन्दन भिजवा दिया था।"

"लन्दन में उसकी नियमित शिक्षा हुई, पर उसने आँख मूँदकर अनुसरण करना कभी पसन्द नहीं किया। वह साफ कहता है—मैं उस समय तक छेनी-हथौड़ा लेकर नहीं बैठ सकता, जब तक मेरी प्रेरणा के आन्तरिक अर्थ की पुष्टि मेरी वैयक्तिक धारणा द्वारा न हो जाए।"

"तो फिर लन्दन जाने की क्या आवश्यकता थी? उसे अपने लिए स्वयं सोचने और अपना मार्ग खोजने की शिक्षा तो काका भी दे सकते थे।"

"फिर भी लन्दन जाकर उसकी आँखें खुल गईं, मैं तो यही मानता हूँ। कल वह स्वयं कह रहा था—पूर्णता का सार है, सरलता!"

"यह तो काका भी कहते हैं कि आयु के आरम्भिक वर्षों में हमारी आँख आवश्यक साज-सज्जा से मुक्त नहीं हो पाती और तब हम कला की पूर्णता अपने सामने नहीं रखते। पर विवेक-बुद्धि का उदय होने के साथ-साथ हम सरलता को लक्ष्य बनाकर चलने लगते हैं।"

यह गोष्ठी चल ही रही थी कि बुलके साहब आ निकले। उनका सुझाव था कि मूर्तिशाला में चला जाए।

मूर्तिशाला में पहुँचने पर बुलके साहब ने कहा, "हमें कोणार्क का मॉडल चाहिए। कितने दिन में बनेगा?"

"नीलकण्ठ से बनवाइए।" चतुर्मुख हँसकर बोले, "जब से आया है, काम को हाथ नहीं लगाता।"

"काका की शिकायत करने का अच्छा अवसर हाथ लगा, गुरुदेव !" रूपक भी चुप न रह सका।

बुलके साहब चतुर्मुख को सम्बोधित करते हुए बोले, "कोणार्क का मॉडल तो आप ही को बनाना होगा। बंगाल के गवर्नर का आर्डर है। पाँच हज़ार मिलेंगे। एक हज़ार पेशगी देकर जाऊँगा।"

"अच्छा तो बनायेंगे।" चतुर्मुख मुस्कराए, "वैसे कोणार्क का मॉडल तो कोई भी बना सकता है।"

वैद्यजी बोले, "नीलकण्ठ को कहीं नौकरी भी आप ही दिलायेंगे, बुलके साहब !"

"नौकरी तो यह करता ही नहीं," बुलके साहब ने साफ शब्दों में कहा, "नौकरी तो इसे उसी दिन मिल सकती थी, जब इसने लन्दन से लौटकर कलकत्ते की धरती पर पैर रखा।"

"नौकरी भी नहीं करता, और त्रिमूर्ति भी पूर्ण नहीं करता !" चतुर्मुख ने शिकायत के स्वर में कहा, "मैंने तो अब कहना ही छोड़ दिया। पर इतना मैं भी जानता हूँ कि काम तो करने से ही होता है।"

बुलके साहब ने मुस्कराकर कहा, "अमृत शेरगिल का नाम तो आप ने भी सुना होगा। उसके माता-पिता उसे और उसकी बहन को क्रमशः चित्रकला और संगीत की शिक्षा के लिए पेरिस ले गए थे। छः वर्ष हुए, उनका परिवार पेरिस से शिमला लौट आया। अमृत शेरगिल ने स्वयं लिखा है कि पेरिस में उसके प्रोफ़ेसर उसके चित्रों के तेज़ रंग देखकर कहा करते थे कि पश्चिम के किसी भी स्टुडियो में उसकी प्रतिभा उतनी विकसित नहीं हो सकेगी। यहाँ लौटकर अमृत शेरगिल ने स्वयं अनुभव किया कि पेरिस में उसके प्रोफेसरों का कहना ठीक था कि पूर्व के रंगों और प्रकाश में ही उसके कलात्मक व्यक्तित्व को अनुकूल और यथार्थ वातावरण मिल सकेगा। पर उसने लिखा है कि पूर्व से उसने जो प्रभाव ग्रहण करने की आशा की थी, उससे वह इतना भिन्न और गम्भीर निकला कि उसके मन पर आज तक उसकी छाप है।"

वैद्यजी बोले, "कुछ नीलकण्ठ को भी समझाइए। नौकरी नहीं करता, तो घर पर ही काम करे। त्रिमूर्ति तो सबसे पहले पूर्ण करे।"

बुलके साहब ने मुस्कराकर कहा, "आर्टिस्ट को कहने की आवश्यकता नहीं होती। हाँ तो मैं अमृत शेरगिल की बात कह रहा था। यह भी सुनिए कि वह क्या छाप थी, जो उसके मन पर लगी।" और वह डायरी खोलकर अमृत शेरगिल के अपने शब्द पढ़ने लगे। बोले, "अमृत शेरगिल लिखती है—'वह दृश्य था हिन्दुस्तान की सरदियों का—जब सब-कुछ उजाड़ लगता है, फिर भी एक विचित्र सौन्दर्य से परिपूर्ण। इस हिन्दुस्तान की धरती अनन्त दूरी तक फैले रास्तों से भरी थी, जो श्वेत-पीले प्रकाश से परिपूर्ण थे। यहाँ के नर-नारियों के शरीर का रंग श्याम था; चेहरों पर उदासी थी; वे बेहद दुबले-पतले थे, और चलती-फिरती करुणा जैसे दीखते थे। एक अवर्णनीय गहरी उदासी जैसे हर समय उन पर छायी रहती थी। यह उस हिन्दुस्तान से एकदम अलग थी, जो आनन्दमय, रंगीन, चमकीला और बनावटी था। यह वह हिन्दुस्तान न था, जिसकी मिथ्या कल्पना मैंने यात्रियों के लिए बनाये गए पोस्टरों में देखकर की थी।"

वैद्यजी हँसकर बोले, "हम सोच रहे थे, आज तो आप अमृत शेरगिल पुराण खोलकर बैठ गए। हमारे नीलकण्ठ को कोई उपदेश देते।"

"यह उसी को लक्ष्य करके तो सुना रहा था।" बुलके साहब बोले।

चतुर्मुख बोले, "बुलके साहब की बातें ही सुनोगे या उन्हें चाय भी पिलाओगे ?"

चाय पीकर बुलके साहब ने एक हज़ार पेशगी देकर कहा, "दो-तीन महीने में यह काम हो जाना चाहिए। अच्छा तो मैं चलूँ। मुझे आज ही कलकत्ते पहुँचना है।"

चतुर्मुख बोले, "आप हमारा एक काम कर दें। अपूर्व घर से भाग गया। उसे आप पहचानते हैं। कलकत्ते में मिल जाए तो अपना आदमी साथ देकर उसे यहाँ भिजवा दें। भूलें नहीं।"

कई दिन तक वैद्यजी अमृत शेरगिल की चर्चा करते रहे। उस दिन वे बुलके साहब को छोड़ने गये थे भुवनेश्वर, बैलगाड़ी में बैठकर। नीलकण्ठ साथ था। वैद्यजी के पूछने पर बुलके साहब ने अमृत शेरगिल के परिवार का हाल बता दिया।

अब वे रोगी को दवा की पुड़िया थमाते हुए कहने लगते, "यह भी सुनते जाओ कि शिमले में रहती है अमृत शेरगिल। माँ हंगेरियन, बाप पंजाबी सिक्ख। समझे ? क्या समझे ?"

नीलकण्ठ को तो वैद्यजी बार-बार याद दिलाते, "क्या कह रहे थे बुलके साहब ? उन्होंने वे सब बातें तुम्हें ही लक्ष्य करके कही थीं। तो समझे ? क्या समझे ? बोलो, त्रिमूर्ति कब पूर्ण करोगे ?"

नीलकण्ठ प्रसंग बदलकर बोला, "कभी आप लोगों ने यह भी सोचा है, दुर्वासा ऋषि कैसे होंगे, जिन्होंने शकुन्तला को शाप दिया था ?"

"तुम बताओ।" जागरी और गुरुचरण एक स्वर होकर बोले।

"आप लोग भी तो कल्पना का घोड़ा दौड़ाइए।" नीलकण्ठ हँसकर बोला, "अच्छा मैं बताता हूँ। लम्बी जटा, विशाल चमकती हुई आँखें और क्रोध से लाल-भभूका मुख-मण्डल ! अब आप बताइए कि पाथुरिया

गली का दुर्वासा कौन है ?"

व्यंग्यपूर्वक उन्होंने आँखों-ही-आँखों में एक-दूसरे को देखा ।

"कहीं वैद्यजी ही तो हमारे दुर्वासा नहीं ?" जागरी चुप न रह सका ।

सभी जानते थे कि वैद्यजी को अन्तराल की याद अधिक नहीं सताती थी। पर नागमती हर समय कोसती रहती, "दुनिया-भर के काम करते रहते हो, तो अपने बेटे की खोज-खबर क्यों नहीं निकालते ?"

जब से अपूर्व गाँव से भाग गया था, अन्तराल की याद उभर आई थी ।

अन्तराल की याद में पाँच-सात डुबकियाँ लगाकर वैद्यजी समतल पर आ जाते और सोचते, 'नागमती की वाणी में अमृत की अपेक्षा विष की मात्रा ही अधिक है। माँ होकर बेटे को आघात पहुँचाए और बेटा घर से भाग जाए, तो इसमें बाप का क्या दोष है ?'

बात बहुत पुरानी तो नहीं हुई। वैद्यजी जानते हैं कि जागरी और गुरुचरण से वह बात छिपी हुई नहीं। नागमती को सन्देह हो गया कि अन्तराल पढ़ाई में जी न लगाकर हैडमास्टर की बिटिया से आँखें लड़ा रहा है। यही मीनाक्षी ही तो थी जिसे अन्तराल अपनी कल्पना-मूर्ति समझ बैठा था। बात कुछ ठीक ही थी। मीनाक्षी के लिए हमारी नागमती ने दुर्वासा की तरह शाप दिया। पर शाप कदाचित् उसके अपने विरुद्ध पड़ गया। बेटा घर से भाग गया।

वैद्यजी ठण्डी साँस लेकर बोले :

"हमें कहाँ शरण है ?"

उन्होंने संस्कृत कवि की सूक्ति प्रस्तुत की :

अपार संसार समुद्र मध्ये
निमज्जतो मां शरणम् किमस्ति !

[संसार रूपी अपार समुद्र में डूबते हुए मुझे कहाँ शरण है ?]

अन्तराल का प्रसंग लेकर नागमती उलटी-सीधी सुनाती है और

उन्हें 'उलटी खोपड़ी' और 'कुकुरमुत्ता' जैसी उपाधियों से विभूषित कर डालती है। उस समय उनकी आत्मा निराशा की पुखरी में डुबकियाँ लगाए बिना नहीं रहती। पाथुरिया गली जैसे काटने को दौड़ रही हो। मुँह का स्वाद खराब हो जाता है। घर से भाग जाने को जी होता है। कभी-कभी तो नागमती का क्रोध भूत के समान उन्हें झकझोरकर आधी रात के समय बुरी तरह डराता है। उसने बस एक ही बात रट ली है—मैं अभी जाकर कौशल्या-पुखरी में कूद पड़ूँगी! अन्तराल घर लौट आए, तो शायद जीवन के फीके पड़े हुए रंग फिर से गहरे हो जाएँ।

• • •

सृजन और संग्रह की मूल-प्रवृत्तियाँ पाथुरिया गली के इतिहास की साक्षी रही हैं।

वैद्यजी अख़बार का मोह नहीं छोड़ सकते।

नित-नित की ख़बरें अन्न के समान पचती रहती हैं।

कभी-कभी महापुरुष की सूक्ति भी अख़बार के पन्ने पर पढ़ने को मिल जाती है। इसे वैद्यजी ज्यों-की-त्यों तस्वीर की तरह सजाकर किसी-न-किसी प्रसंग के चौखटे में जड़ने के चिर-अभ्यस्त हैं।

गली में लोग आते-जाते रहते हैं। सृजन की चाह ही उन्हें साहस देती है, प्रसंगों का यथाविधि वर्गीकरण सबके बस का रोग नहीं। इसके बिना ही उनका काम चलता रहता है। कोई चलते-चलते आँखें झिपझिपाता है। पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन, धर्म की जय होती है। लड़ाई लगी है सात सागर पार। हिटलर की सेनाएँ लड़ रही हैं। तो क्या फिरंगी हार जाएगा? हम कब कहते हैं, फिरंगी न हारे? सौ-सौ बार हम पाथुरिया गली में ही जन्म लेते रहें। पाथुरिया गली की क्या बात है, भैया! उत्तरी छोर पर अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान खड़ी है। दक्षिण छोर पर ब्रह्मा-विष्णु वाली चट्टान ने मन्दिर के शिखर की

तरह आकाश की ओर सिर उठा रखा है।

खाना-वाना तो चलता ही रहता है। जिसे तमाखू पीने का शौक है, उसके लिए तमाखू ही स्वर्ग का द्वार खोलता है। कपड़े-लत्ते की तड़क-भड़क रहनी चाहिए, यह इच्छा भी सिर उठाती है।

चूल्हे में आग जलेगी, तो रसोई से धुआँ कैसे नहीं उठेगा ?

राह-चलते कोई यों बात करता है, जैसे कोई कहीं पर कुछ छौंक रहा हो। बात करते समय अनुप्रास का कुछ ऐसा ही मज़ा आता है जैसे छौंक लगाने से तेज़ गन्ध आकर नयनों को सहलाती है।

सब कमाते हैं। अपना खाते हैं। अपना पहनते हैं।

कभी कथा बीच से टूट जाती है, जैसे किसी के हाथ से चौके में माँड़-भरी हाँडी गिर जाए !

यहाँ से तो दया नदी भी दो-ढाई फर्लांग पर बहती है। सागर तो और भी दूर है। सागर तो पुरी और कोणार्क के पास है। फिर भी सात सागर तेरह नदियाँ लाँघकर आते हैं मन के विचार।

बहुत से दिन लद गए। बहुत से लोग चल बसे। उनके नाम रह गए। कथा में जुड़ गए। कथा में तो गए हुओं के नाम भी झाँकते रहते हैं, जैसे अधबाँही कमीज़ से कुहनियाँ।

हाँ, भैया ! यह तो सोलह आने सत्य है कि कोणार्क का महाशिल्पी बिशु इसी पाथुरिया गली का वासी था। उसी ने बुढ़ापे में वह नारी-मूर्ति बनायी थी उत्तर वाली चट्टान पर। मूर्ति अधूरी रही। बिशु पाथुरिया छेनी चलाते-चलाते चल बसा।

अब बिशु पाथुरिया का भूत आधी रात को उस चट्टान पर आकर ठक-ठक किया करता है। ठक-ठक का स्वर कभी बेसुरा नहीं लगता।

हाँ-में-हाँ मिलाने के लिए यही कहा जाता है :

सत्य वचन, महाराज !

बच्चों के साथ खेलोगे तो अपने आप तोतली बात करने लगोगे, भैया !

वशीकरण से भी अपरिचित नहीं पाथुरिया गली। हुलू-ध्वनि और शंख-नाद की भी उसे सार है। विवाह-अनुष्ठान के समय नारी-पुरुष कण्ठों से निकली व्यंग्योक्तियों और ठिठोलियों में जैसे बेला-चमेली की सुगन्ध भी हाथ की चूड़ियों की तरह खनक उठती है।

नव-वधू का स्वागत यह समझकर किया जाता है, जैसे सचमुच परी-कथा की राजकुमारी आ पहुँची। या जैसे अखबार के दफ़तर में नई खबर आ पहुँची। फिर भी वैद्यजी को शिकायत है कि अखबार में कभी धौली गाँव की कोई ख़बर क्यों नहीं छपती ?

● ● ●

न जाने क्या सोचकर वैद्यजी गुनगुनाते हैं :

दुःख सत्यं सुखं मिथ्या
दुःखं जन्तोः परं धनम्

फिर प्रसंग बदलकर कहते हैं :

औषधं जाह्नवीतोयं
वैद्यो नारायणो हरिः

[दवा तो गंगा-जल के समान पवित्र है, वैद्य स्वयं हरिनारायण।]

रोगी को चंगा करने में वैद्यजी की दवा से भी अधिक उनकी बातें काम करती थीं। वाकई वे अपनी विद्या में बड़े निपुण थे। वे आराम से नाड़ी देखते और आवश्यक बातें पूछकर हिसाब लगाते।

"क्यों महाराज !" कहकर वे हर छोटे-बड़े का अभिवादन करते। किसी को मुरब्बा देते, तो साथ ही आयुर्वेद की महिमा भी दरसाते। कभी तरंग में आकर कहते :

अमंत्रम् अक्षरम् नास्ति
नास्ति मूलम् अनौषधम्।

तरह-तरह की वनस्पतियों के गुण-धर्म बताते। कभी कहते, "नीम

के पेड़ वाले मधु-मक्खियों के छत्ते से शहद के गुण के क्या कहने !" कभी कहते, "आपने देखा होगा। कभी-कभी पुराने नीम का तना फट जाता है। उसके भीतर से गोंद सदृश रस निकलता है। वह रस तुरन्त खा लेना चाहिए। नीम के उस ताज़े गोंद में अद्भुत शक्ति का बखान किया गया है आयुर्वेद में। जिन लोगों के पैर हमेशा फटते हैं, वे उस रस को चाट लेंगे तो समझो उनकी वह शिकायत दूर होते देर नहीं लगेगी।"

जागरी और नीलकण्ठ को गले मिलते देखकर वैद्यजी कहते हैं, "कपड़े-लत्ते नये अच्छे, मित्र पुराने !" और फिर पुड़िया बाँधकर रोगी के हाथ में देते हुए हँसकर कहते हैं, "बगले को कौशल्या पुखरी में मछली मिल जाए तो उसकी दृष्टि में यही मानसरोवर है।"

"अरे भैया, माँदर बढ़िया हो, तो बहुत हलके हाथ से भी ऊँचा बजता है।" पास से जागरी संकेत से वैद्यजी की राम-वाण जड़ी-बूटी का गुण-गान करता है।

"वैद्यजी तुम्हें कितना 'कमीशन' देते हैं, जागरी ?" नीलकण्ठ चुटकी लेता है।

"कैसी तबीयत रही आज ?" वैद्यजी किसी रोगी से पूछते हैं।

रोगी के कान्तिहीन मुख पर मुस्कान खिल उठती है। वैद्यजी चुटकी लेते हैं, "खूब नींद आई। रात-भर सपनों में बच्चों की तरह समुद्र की आग बुझाते रहे !" फिर वे थोड़ी खामोशी के बाद उसे गरम पानी से नहाने का आदेश देते हैं।

गाँव में वैद्यजी को सभी प्रेम करते हैं। उन्हें देखकर सबका मन आदर से भर उठता है। सफ़ेद वस्त्रों में वे वाकई भव्य मूर्ति प्रतीत होते हैं। उनके चेहरे पर नज़र आने वाले सन्तोष की झलक के पीछे कहीं अन्तराल की याद उन्हें दुखी कर रही है, इसका तो अब किसी को भूल-कर भी ध्यान नहीं आता।

किसी रोगी से वैद्यजी कहते हैं, "सवेरे उठकर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान की सात बार प्रदक्षिणा किया करो।"

"सत्य वचन, महाराज !" कहकर रोगी चला जाता है, तो जागरी पूछता है, "उस चट्टान की प्रदक्षिणा में ऐसी क्या बात है, वैद्यजी ? ब्रह्मा-विष्णु वाली चट्टान की प्रदक्षिणा के लिए क्यों न कहा ?"

"उसमें अभी शिव-मूर्ति की कमी है ।" वैद्यजी नीलकण्ठ की ओर देखकर मुस्कराते हैं, "कौन जाने वह शुभ घड़ी कब आए, जब नीलकण्ठ की छेनी इस चट्टान पर चलेगी !"

थोड़ी खामोशी के बाद वैद्यजी कहते हैं :

"नीलकण्ठ को विलायत से लौटे तीसरा साल चल रहा है । चतुर्मुख बहुत परेशान रहते हैं । कभी-कभी वे सोचते हैं, नीलकण्ठ शिव-मूर्ति में हाथ नहीं डालता तो जिन हाथों ने विष्णु-मूर्ति बनायी उन्हीं से कहें कि शिव-मूर्ति भी बना डालो ।"

जागरी व्यंग्यात्मक दृष्टि से वैद्यजी की ओर देखकर स्थिति को सँभालता है ।

"नहीं वैद्यजी, ऐसा नहीं होगा । शिव-मूर्ति तो नीलकण्ठ ही बनाएगा ।"

● ● ●

वैद्यजी की दुकान के सामने पीपल का पेड़ है जिसके पत्ते हर समय डोलते रहते हैं । यहाँ से थोड़ी दूर ब्रह्मा-विष्णु वाली चट्टान है, जिस पर एक दिन शिव-मूर्ति बनके रहेगी ।

पाथुरिया गली के दक्षिण सिरे पर खड़ी इस चट्टान के पास से गुज़रते हुए लोग कई-कई मिनट खड़े सोचते रहते हैं—एक मूर्ति पड़दादा ने बनायी, दूसरी दादा ने, तीसरी नीलकण्ठ बनाएगा, पड़दादा का पड़पोता !

इस चट्टान के पास से गुज़रते हुए लोग कभी-कभी गाली-गलौज पर ही नहीं, हाथापाई पर भी उतर आते हैं ।

यह चट्टान लोगों को गरम-सरद से गुजरते देखती आई है । इसने

बच्चों की किलकारियाँ सुनी हैं, बड़े होते देखा है। ब्रह्मा की मुखाकृति अन्तर्मुखी मुद्रा में बनायी गई है, तो विष्णु के मुख पर मुस्कान खिल उठी है, जिसके पीछे यह आभास भी मिलता है कि विष्णु को लोगों की यातनाओं की पूरी ख़बर मिलती रहती है। वैद्यजी सोचते हैं, शिव-मूर्ति में विष-पान वाली गाथा ही उभरनी चाहिए।

पीपल के पत्ते डोलते रहते हैं।

चट्टान के पास खड़े चतुर्मुख किसी बालक से कहते हैं।

"पायुरिया बनोगे, बेटा ?"

घर में पूजा का नारियल साल-भर रखने की रीति न जाने कब से चली आ रही थी। यह रीति चतुर्मुख को जी-जान से प्रिय थी। वे महादेव की उपासना को सर्वोपरि मानते थे। वैसे घर की पूजा में मंगल-कामना की दृष्टि से अनेक मूर्तियाँ रखी रहती थीं। शिवजी का लिंग था, तो विष्णु का शालिग्राम भी; गणपति का लाल पाषाण था, तो सूर्य की सूर्य-कान्त मणि भी। देवी का दीप्तिमान सुवर्णमुखी धातु का टुकड़ा भी इस देव-पूजन में कभी आँख से ओझल नहीं रहता था। अब परिवार की पुरातन मर्यादा की बड़ी सिखावन यही थी कि पूजा के प्रमुख स्थान पर महादेव की नहीं, एक नारियल की प्रतिष्ठा की जाए।

हर रोज़ उस नारियल का अभिषेक किया जाता। चन्दन-अक्षत-फूल चढ़ाकर भोग लगाया जाता। आरती उतारकर प्रार्थना की जाती।

श्रावण मास के प्रथम सोमवार को पुराना नारियल उठा देते। उसके स्थान पर नया नारियल रखते।

वैसे पुराने और नये नारियलों का एक साथ अभिषेक करते। पूजा का नारियल अपना स्थान ग्रहण कर लेता, तो पुराना नारियल उस दिन पूजा के स्थान पर ही एक तरफ टिका देते।

दूसरे दिन पुराना नारियल तोड़ डालते और खोपे का प्रसाद घर में सबको बाँटते। नारायण और उसकी पत्नी के लिए डाक द्वारा नारियल का प्रसाद भेजना आवश्यक था।

"जिस नारियल को साल-भर रखना हो, उसे तो बड़ी सावधानी से चुनना चाहिए, कोइली की दादी !" चतुर्मुख कहते, "यह नारियल पका हुआ होना चाहिए, कच्चा नहीं।"

आज श्रावण मास का प्रथम सोमवार था। पूजा के पश्चात् कोइली की दादी बोली :

"कल मंगलवार के दिन पुराने नारियल का खोपा अच्छा निकला, तो हम समझेंगे कुल-देवता की हम पर अपार कृपा है। भगवान् करे, खोपा खराब अथवा सड़ा हुआ न निकले। खराब निकला, तो हम समझेंगे कुल-देवता हमसे नाराज़ हैं।"

आज उपवास का दिन था। पूजा के लिए पुरोहित आ गया।

चतुर्मुख ने देवघर के भीतर बैठकर एक बढ़िया कागज़ पर चन्दन-कुंकुम लगाया, और उस पर कुल-देवता के नाम एक पत्र लिखने लगे।

पूजा समाप्त होने पर पत्र कुल-देवता के चरणों में रख दिया। वे प्रति वर्ष ऐसा ही किया करते थे। यह पत्र आवश्यक था, जैसे घर की मर्यादा, सृष्टि, स्थिति और लय की इसी टेक पर प्राण-सागर में तरंगें उठती आई हों।

"रक्त-शिखा की यही भाषा है, नीलकण्ठ !" चतुर्मुख गम्भीर स्वर में बोले, "श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, सभी चाहिए। संकल्प, साधना, संस्कार, सभी की यह पुकार है कि सत्यवादी, प्रियभाषी और चरित्रवान् बनो। आज यही संकल्प करो।"

"संकल्प से इच्छा का भाव है, बाबा !" नीलकण्ठ ने जिज्ञासा की।

"निश्चय, प्रयोजन, उद्देश्य, सभी संकल्प के भीतर आते हैं, बेटा !"

"विचार, कल्पना, मन, ये भी तो संकल्प के अन्तर्गत आते हैं न ?"

"मन्त्रोच्चारण के साथ धार्मिक कृत्य करने की प्रतिज्ञा, यह हुई

संकल्प भी आधारभूमि । व्यंग्य और अनास्था की भँड़ैती शुद्ध संकल्प का विनाश करती है ।''

''मैं समझा नहीं ।''

''संकल्प ही मनुष्य का प्रथम और अन्तिम परिचय है । संकल्प के चरण-स्पर्श द्वारा ही पत्थर की अहिल्या फिर से मानवी बन सकती है ।''

''अलवीरा लन्दन में कहा करती थी बाबा, कि क्या स्त्री-पुरुष का पति-पत्नी होकर रहे बिना गुज़ारा नहीं ? वैसे शुद्ध संकल्प को तो वह भी मानती है । उसने मुझे साथी बनाने का संकल्प किया है, जैसे एक कन्ध-कन्या ने बिशु के लिए संकल्प किया था ।''

''एक बात समझ लो, बेटा ! आहार, निद्रा, भय, मैथुन, इनमें तो पशु और मनुष्य एक हैं । दोनों को जो वस्तु अलग करती है, वह है संकल्प । वह मनुष्य नहीं जिसका कोई संकल्प नहीं ।''

''बुरा न मानना, बाबा ! अलवीरा का पत्र आया है, उसने लिखा है कि वह तो महान् मूर्तिकार उसे ही मानती है, जो पुरानी मूर्ति तोड़कर नई मूर्ति गढ़ सके ।''

''नई मूर्ति गढ़ने के लिए पुरानी को तोड़ना क्या इतना ही आवश्यक है ?'' चतुर्मुख जैसे स्वयं ही अपने प्रश्न के उत्तर में उलझ गए ।

''मेरा तो विचार है बाबा, वीरा में भी संकल्प है । और उसने मुझे भी बिशु की कन्ध-प्रेयसी की तरह संकल्पवान् कर दिया । मैं तो संकल्प को चैत की हवा समझता हूँ, जो कच्चे फल को ऊपर से रंग देती है और भीतर रस भरती चली जाती है ।''

''यह बात छोड़ो, नील ! तुमसे मुझे बड़ी आशा है । मैंने तुम्हें पत्थर समझकर मूर्ति की तरह गढ़ा है । इसे मेरा संकल्प समझो ।''

''अब यही तो सारा अन्तर पड़ जाता है, बाबा ! मैं पत्थर नहीं, पाथुरिया हूँ । मैंने अलवीरा को लिखा है—माँ, बहन, प्रेयसी, पत्नी, ये एक ही नारी के चार रूप हैं । मैंने तो तुम्हें नारी-रूप में ही देखा है, वीरा ! मैं पुरुष हूँ । वही युग-युग का आदम और तुम युग-युग की हौवा ।

हम अति नूतन होकर भी अति पुरातन हैं। हम तो सनातन ठहरे, सनातन अनुभव के प्रहरी !"

"संकल्प पहले है, अनुभव पीछे। पाथुरिया की छेनी का अवलम्ब है संकल्प। इसी में सम्भावना निश्चित है, जो आगे चलकर प्राप्ति बनती है।"

"अलवीरा ने अपने पत्र में लिखा है, बाबा, वह मुझे सम्पूर्ण रूप से पा लेना चाहती है। उसने लिखा है कि वह अपने संकल्प की अधिक व्याख्या नहीं कर सकती।"

चतुर्मुख हँसकर बोले :

"नारी पुरुष को सम्पूर्ण रूप से कभी नहीं पा सकती। उस कन्ध-कन्या ने बिशु को सम्पूर्ण रूप से पा लिया होता, तो क्या वह उसे गर्भावस्था में छोड़कर भाग खड़ा होता ?"

"पर यह भी तो सत्य है बाबा कि बिशु ने उसी कन्ध-कन्या की मूर्ति गढ़ते-गढ़ते प्राण त्यागे। एक बात पूछूँ। ज़रा-से संकल्प के चारों ओर अनास्था के अड्डे क्यों रहते हैं ? अलवीरा मुझे सम्पूर्ण रूप से पा ले, तो मेरे संकल्प में कहाँ क्षति आती है ? मैं उसे जानता हूँ। वह भी मुझे समझती है।"

चतुर्मुख गम्भीर स्वर में बोले :

"कोइली की दादी अगले ही रोज़ कह रही थी कि लाख बसन्त ऋतु सिर पर आ जाय, जब कोयल अण्डे दे रही हो, तो उस बेचारी का स्वर-साधना में मन नहीं लगता। मैंने उसे बताया—संकल्प के बिना मूर्ति नहीं गढ़ी जाती, न कोयल के लिए अण्डे देना ही सम्भव है।"

"अलवीरा ने लिखा है बाबा, कि उसने धौली गाँव की पाथुरिया गली में ससुराल की कल्पना करके हवा में महल नहीं बनाया।"

"यह तो बाल्यकाल का परिचय बोल रहा है। क्या अलवीरा इस पर्ण-कुटी में आकर रहेगी ? पत्थर की मूर्ति बनकर सजेगी ? रवीन्द्रनाथ ने नारी के प्रति कहा है—'तुम आधी मानवी हो, आधी कल्पना !' तुमने अलवीरा को यह नहीं लिखा कि कौतुक, कुतूहल और आकर्षण से आगे

का रास्ता बहुत कठिन होता है ? छूँछे मत बनो । हमारी मानो । कलकत्ते वाली लड़की ठीक रहेगी ।"

"बाबा, अलवीरा ही ठीक रहेगी ।"

"अच्छा तो पत्थर की दीवार, चुप हो जा ।"

"गुस्सा हो गए, बाबा ! क्या अलवीरा को मायाविनी समझूँ ? वह तो महाकल्याणी है । उसे मन से निकाल दूँ ?"

चतुर्मुख गम्भीर मुद्रा में बोले, "कल मंगलवार है । कल गत वर्ष वाले नारियल का प्रसाद सबमें बँटेगा । नारायण और तुम्हारी माँ के लिए नारियल के दो टुकड़े लिफाफे में डालकर डाक से कलकत्ते भेजने होंगे । भूलना मत । शायद मैं कल न रहूँ और यह काम तुम्हें ही करना पड़े ।"

"ऐसा मत बोलो, बाबा !"

चतुर्मुख की आँखें नीलकण्ठ के चेहरे पर टिक गईं । हाथ की छेनी वहीं रह गई । नीलकण्ठ को लगा, बाबा बैठे-बैठे स्वप्न देख रहे हैं । अलवीरा की रूप-माधुरी उसकी कल्पना में घूम गई, जैसे वह कह रही हो—अच्छा तो बाबा की बात मान लो, मुझे भूल जाओ । कल्पना में अलवीर का चेहरा कुम्हला गया । उसने मन-ही-मन कहा, 'नहीं अलवीरा, ऐसा नहीं होगा ।'

बाबा के बिखरे-फैले मन को समेटने की उसे कोई चिन्ता न थी । बाबा की आँखों में आँसू ढुलक पड़े । वे बोले, "मैं कहता हूँ, तुम मेरी बात मान लो । कलकत्ते वाली लड़की ही ठीक रहेगी, नील !"

"नहीं, बाबा ! यह नहीं हो सकता ।"

बाबा फटी-सी आँखों से देखते रह गए ।

नीलकण्ठ की याद में जैसे इश्क-पेचे की बेल फैलती चली गई । उसने मन-ही-मन कहा—अलवीरा इश्क-पेचे की बेल से कम नहीं । इसकी जड़ें कायम रहेंगी । इसकी पत्तियाँ लहलहायेंगी । उसने सोचा—आज अलवीरा यहाँ होती तो हम झूठ-मूठ रूठ जाते और फिर अलवीरा को मनाने में कितना मज़ा आता !

बाबा बोले, "सोचा था, सौ साल की उम्र भोगकर मरूँगा···" कहते-कहते वे रुक गए, जैसे उन्हें गीली लकड़ियों को फूँक मारकर जलाने का ध्यान आ गया हो। उनकी आँखों से प्रतीत होता था कि मन में तूफान उठ रहा है। थोड़ी खामोशी के बाद उन्होंने फिर कहा, "अलबीरा के पीछे तुम अपना दिमाग खराब करोगे, मैंने यह नहीं सोचा था।"

नीलकण्ठ कुछ न बोला।

वह समझ गया कि छोटी-सी बात ने बाबा के अन्तर के अन्तस्तल तक को झकझोर दिया। एक गहरी लम्बी साँस छोड़ते हुए बोले, "जी में आता है, यह सब छोड़-छाड़ दूँ। एक बात याद रखो। इस विश्वास के साथ कला-साधना में संकल्प के स्वर मिलाओ कि आने वाली पीढ़ियाँ तुम्हारी देन को पहचानें। तुम सस्ते यश के पीछे नहीं भागोगे, यह मैं जानता हूँ। एक बात याद रखो। पुराने सत्य को नया अर्थ दिये बिना पत्थर में प्राण नहीं पड़ सकते।" वे कुछ इस तरह मुस्कराए, जैसे बहुत आगे चले गए हों।

नीलकण्ठ को चुप देखकर वे फिर बोले, "त्रिमूर्ति तो एक दिन पूर्ण होकर रहेगी। मैं जानता हूँ, जब यह त्रिमूर्ति पूर्ण होगी तो संकल्प, साधना और संस्कार की त्रिमूर्ति कहलायेगी।"

इतने में वैद्यजी आ निकले और वे छूटते ही बोले, "काका, उस दिन बैलगाड़ी में बुल्के साहब अमृत शेरगिल की कथा कहते रहे। उनके कथनानुसार उसकी वृत्तियाँ यूरोप-यात्रा से पहले अन्तर्मुख थीं। अपने आस-पास या बाहर की किसी वस्तु को न वह देखती थी, न उस पर ध्यान देती थी। उन दिनों वह बस कल्पना के सहारे काम कर रही थी। वास्तविकता के स्थान पर चित्रों से घिरी रहती थी। उसने हिन्दुस्तान की कल्पना एकदम साधारण, पाँचवीं कोटि के उन विलायती चित्रों के सहारे की थी, जो आज भी अक्सर चित्र-प्रदर्शनियों में देखे जा सकते हैं और कला के अविकसित पिपासुओं के लिए हानिकर नहीं तो सन्दिग्ध सामग्री अवश्य हैं।"

"ये सब बातें बुलके साहब ने स्टेशन के रास्ते में बताईं ?" चतुर्मुख ने छेनी चलाते हुए कहा।

"हाँ, काका !" वैद्यजी मुस्कराए। "बुलके साहब देर तक अमृत शेरगिल की कथा कहते रहे।"

"हमें भी साथ ले जाते।" रूपक ने अपनी मूर्ति से नज़र हटाकर कहा, "हम भी सुन लेते।" और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही फिर पत्थर कोरने लगा।

सहसा वैद्यजी की नज़र कोरणार्क के मॉडल पर पड़ी। बोले, "यह कब तैयार हो गया ? मार लिए पाँच हज़ार !"

"इसका काम भी साथ-साथ होता रहा। घर का खर्च तो निकलना चाहिए। घर का खर्च तो तुम्हारी अमृत शेरगिल भी निकालती होगी।"

"बुलके साहब उस दिन कह रहे थे, काका !" वैद्यजी कहते चले गए, "अमृत शेरगिल ने एक लेख लिखा है। यूरोपियन चित्रकारों द्वारा चित्रित घटिया चित्र विलायत में ही निर्मित नहीं किये जा रहे, अनेक हिन्दुस्तानी कलाकार भी अज्ञानतावश, खुशी-खुशी, उनके दोष समझे बिना ही, इनका अनुकरण कर रहे हैं। वह कहती है, ये चित्र न तो हिन्दुस्तानी हैं, न कला की दृष्टि से उत्तम। उसका तर्क है, यदि शौकिया कलाकार यात्रा-स्मृति बनाए रखने की खातिर ऐसे तैल या जल-रंग चित्र चित्रित करते हैं, जिनमें कोई कलापूर्ण विशेषता दरसाने की चिन्ता उन्हें नहीं रहती, तो यह क्षम्य है। पर जब सामान्यता को लेकर एक नूतन स्कूल की स्थापना की जाती है, जिससे एक नये हिन्दुस्तानी कला-आन्दोलन को उत्साहित किया जाए, तो उसकी जितनी निन्दा की जाए, थोड़ी है। अमृत शेरगिल ऐसे चित्रों को यात्रा-चित्र कहती है, क्योंकि उनमें तो बस यात्री के मन की विशेषताएँ रहती हैं—यथा अंकन, मनःस्थिति का नितान्त हल्कापन तथा अभावों के प्रभाव, जिनमें कलात्मक निर्धारण और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि को कोई स्थान नहीं होता।"

"बड़ी गहरी बातें हैं।" चतुर्मुख ने छेनी चलाते हुए कहा।

नीलकण्ठ और रूपक चुप बैठे सुनते रहे।

वैद्यजी बोले, "जैसा सुना, कह रहा हूँ। अमृत शेरगिल के मतानुसार कुछ ऐसे तथाकथित चित्र होते हैं, जो हिन्दुस्तान का वह रूप दरसाते हैं, जिसमें सूरज का चमकना ज़रूरी है। वह कहती है—इन चित्रों में की गई हिन्दुस्तान की कल्पना उतनी ही साधारण कोटि की है, जितनी उनमें चित्रित सूरज की वह रोशनी, जिसे गोरी और भूरी चमड़ी के रंगों पर चमकते दिखाया जाता है और महत्त्वाकांक्षी कलाकार नारंगी रंगों की प्रतिबिम्बित चमक और नीले अध-रंगों की सम्भावनाओं का अनुचित लाभ उठाते हैं।"

"थे सब बातें तुम्हें याद रह गई हैं, वैद्यजी !" चतुर्मुख ने हँसकर कहा, जैसे यह भी किसी रोग की दवा हो।

"कुछ आप भी तो कहो, काका !" रूपक ने नीलकण्ठ को सम्बोधित करते हुए कहा, "वैद्यजी ही कहते जायेंगे, तो थक जायेंगे।"

नीलकण्ठ ने लम्बी चुप्पी समाप्त करते हुए कहा, "अमृत शेरगिल के मतानुसार यह चित्रकला की एक ऐसी भद्दी विशेषता है, जिसका साथ एक सच्चे कलाकार के लिए उसी प्रकार छोड़ देना अच्छा है, जिस प्रकार इसका सीखना ज़रूरी है। अमृत शेरगिल की बात ठीक है। इस प्रकार के दृश्य या सूरज की धूप से परिपूर्ण चित्रों में जान-बूझकर प्रकृत रूपों का समावेश किया जाता है तथा पृष्ठभूमि के रूप में मध्य की दूरी में हिन्दुस्तानी खण्डहर दिखाए जाते हैं। और यही बात इसका प्रमाण मानी जाती है कि कलाकृति सच्ची है और हिन्दुस्तान में ही बनी है। पर ऐसे चित्रों में चित्रित एक भी विवरण वास्तव में हिन्दुस्तान को उपस्थित नहीं करता।"

"और बुलके साहब यह भी तो बता रहे थे," वैद्यजी ने वार्तालाप की बागडोर सँभालते हुए कहा, "कि अमृत शेरगिल के मतानुसार हिमाच्छादित गिरि-शृंखलाओं के निरर्थक दृश्यों में छायाओं को दिखाने के लिए गहरे नीले रंग का प्रयोग किया जाता है। पर यह बात उस

सौन्दर्यानुभूति को नष्ट करने वाली ही सिद्ध होती है, जो इन गिरि-शिखरों के प्रत्यक्ष दर्शन से विकसित होती है। अमृत शेरगिल कहती है, यही हाल भिखारियों तथा अन्य दुर्दशाग्रस्त लोगों के चित्रण का है, क्योंकि उसमें हिन्दुस्तान की धरती के सम्बन्ध में भले ही कोई रुचि-वर्द्धक वस्तु मिल जाए, पर उसमें न तो कोई कलापूर्ण वस्तु मिलेगी, न मानवीय सहानुभूति।"

चतुर्मुख बोले, "जो बात चित्रकला के विषय में सत्य है, वह मूर्तिकला के विषय में भी उतनी ही सत्य है।"

नीलकण्ठ ने कहा, "अमृत शेरगिल ने यह भी लिखा है कि इस प्रकार की चित्रात्मक तथा मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति के प्रति उसकी तीव्र विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया और उसकी अपनी चित्रांकन-पद्धति को किसी सीमा तक उसी अवस्था में समझा जा सकता है, जब यह पता चल जाए कि उसने हिन्दुस्तान के विषय में जो चित्र देखे थे, उनके स्थान पर उसके हिन्दुस्तान पहुँचने पर क्या प्रभाव हिन्दुस्तान ने उस पर डाला। वह लिखती है—मैं व्यक्तिवादिनी हूँ और अपनी नूतन टेकनीक का विकास कर रही हूँ, जो रूढ़िवादी दृष्टि से देखने पर अनिवार्यतः हिन्दुस्तानी शैली तो नहीं है, पर उसकी आत्मा मूलभूत रूप में हिन्दुस्तानी है। अमृत शेरगिल का यह तर्क है कि रूप और रंगों की अनन्त लाक्षणिकता द्वारा वह हिन्दुस्तान को, विशेष रूप से हिन्दुस्तान के दीन-हीन मानव को, उस स्तर पर चित्रित करने में संलग्न है, जो केवल भावुकतापूर्ण रुचि से कहीं ऊँचा स्तर है।"

चतुर्मुख बोले, "मूर्तिकला का माध्यम चित्रकला से कितना भी भिन्न क्यों न हो, पर जहाँ तक मूर्ति में हिन्दुस्तानी शैली विकसित करने की बात है, वहाँ अमृत शेरगिल के विचारों से मैं पूरी तरह सहमत हूँ।"

रूपक ने हँसकर कहा, "मैंने बुलके साहब से ये बातें सुनी होतीं, तो कहाँ याद रहतीं। कला का घर दूर है। मैं वहाँ पहुँचना चाहता हूँ, इतना मैं ज़रूर जानता हूँ।"

हवा-पानी का ज़ोर बढ़ता गया। गली के बच्चे दौड़ लगाने लगे। चतुर्मुख को याद आया, बचपन में इसी तरह भीगे होंगे। आज उपवास है। तब भी उपवास रहा होगा।

गली में बच्चे हँस रहे थे, गा रहे थे, दौड़ लगा रहे थे। कुछ मूँछ-उठान जवान भी वर्षा में नहाने को निकल पड़े। बीती हुई बरसातों की बातें याद हो-हो आती थीं। चतुर्मुख चाहते थे खिलखिलाकर हँस पड़ें, पर मन ने साथ न दिया। जीवन की प्रवहमानता उन्हें अभिभूत किये दे रही थी। वे बैठे अपनी तबीयत को टटोलते रहे।

बैठे-बैठे मन न लगा तो मूर्ति गढ़ने लगे।

छेनी चलाते-चलाते याद आया कि उनकी जन्म-पत्री में लिखा है : 'अन्तिम काम अधूरा छोड़कर मरेगा !'

इधर छेनी चलती रही, उधर वर्षा होती रही।

वे सोचने लगे—सोना जब राधा बनती है तो परम सुन्दरी और पूर्ण-यौवना प्रतीत होती है। रासलीला में उतरकर वह भूल जाती है कि वह जागरी की पत्नी है।

छेनी चलाते हुए वे मन-ही-मन बोले, "हाँ, ठीक है सोना ! इसी

तरह ठीक है। ऐसे ही खड़ी रहो। अरे तुमने तो स्वयं को जागरी के साँचे में ढाल दिया था। फिर, तुम्हारे भीतर से यह राधा कैसे निकल आई ?"

वर्षा के ताल पर छेनी चलती रही। पत्थर छिला जा रहा था। चतुर्मुख मन-ही-मन बोले, "जागरी तो पूरा विदूषक है, सोना ! उल्टा कुरता पहनकर गली में चलेगा तो लोगों को यह पूछने का अधिकार तो होगा ही कि जेब में हाथ कहाँ से डालोगे, बाबू ? अरे ज़्यादा नहीं हँसो, सोना ! बस ऐसे ही खड़ी रहो ! सात गाँठ बाँधो, एक गाँठ खोलो। एक फूल, सात पंखुड़ियाँ। एक तागा, सात गाँठ। इसी तरह हँसो, सोना ! एक कण्ठ, सात स्वर। क्या कहा, जागरी के प्रेम में ही मोती जड़े हैं ! अरे कभी मयूरभंज से माँ की चिट्ठी भी आती है, सोना ? तेरी हँसी में तेरी कला है। जागरी को लोगों ने बहुत भड़काया। गुरुचरण के साथ तुझे क्या कम बदनाम किया गया ? जागरी की जगह कोई और होता तो तुझे घर से निकाल देता। पर उसने ठण्डे माथे सब सुना, सब सहा।"

वर्षा और भी तेज़ हो गई थी। गली में जैसे नाला बह रहा हो। बच्चे और मूँछ-उठान युवक घरों में घुस गए।

मूर्ति गढ़ते-गढ़ते उन्हें जागरी का ध्यान आया, जिसे गली के कुछ लोग 'गुरु की दुम' कहकर हँस पड़ते थे। सीधी तरह नहीं कहते थे कि सोना गुरुचरण की राधा बनती है, फिर भी जागरी को गुरुचरण का मित्र बनते लाज नहीं आती। जागरी तो ठण्डे दिल से सब सुन छोड़ता है। वह तो मुस्कान में भी विष नहीं घोलता। सोचता है, अपनी सोना ठीक है तो सब ठीक है। जब तक वह तेल-मालिश करती है, मल-मलकर नहलाती है और गमछे से शरीर पोंछते समय मुस्कराती है, मैं क्यों उसके चरित्र पर सन्देह करूँ ? घर में पैसा आता है, मुफ़्त में तो राधा नहीं बनती सोना।

ज़ोर का पानी पड़ रहा है। गली में नदी बह रही है। भगवान् की लीला ! इतना पानी कहाँ से आता है ? मूर्ति गढ़ते-गढ़ते चतुर्मुख मन-

ही-मन प्रश्न करते रहे और जवाब पाते रहे। गुरुचरण की रासलीला देखने वाले टीका-टिप्पणी करते हैं, और सोना की कथा पर हँसी की फुलझड़ी छोड़ते हैं।

मूर्ति गढ़ते-गढ़ते चतुर्मुख मानो हाथ वाली मूर्ति से बोले, "पत्थरों के देवता बन जाते हैं, देवताओं के पत्थर !" थोड़ी खामोशी के बाद वे बोले :

"बस इसी तरह खड़ी रहो, सोना ! अभी बहुत काम रहता है। मस्ती की झलक तो आ गई। कमल खिल गया। पर अभी काम रहता है।"

उन्होंने सोचा, सोना का रूप मूर्ति में उतर आया और मूर्ति सुन रही है। वे बोले :

"सोना, तुम माँ नहीं बन सकीं। भगवान् की लीला ! बालक जन्म न लें, तो पाथुरिया गली बुड्ढों की ठौर बन जाए, सोना ! बालक आता है, तो पाथुरिया चिर-नूतन बन उठता है। सच्चा पाथुरिया बाल-भाव बनाए रखता है। वह बाल-भाव से ही मूर्ति गढ़ता है। पत्थर यही कहता है—आओ पाथुरिया दादा, हमें गढ़कर प्राणवान् बनाओ !

उनके माथे पर बल पड़ गए। क्रोध आने लगा, "नीलकण्ठ मेरा कहा नहीं मानता। न वह कलकत्ते वाली लड़की से विवाह करता है, न त्रिमूर्ति का काम सम्पूर्ण करता है।...

"क्या मैं अति तुच्छ हूँ ? क्या नील को मेरी आवश्यकता नहीं रही ? जितनी नदियाँ हैं, उन सब पर कौन पुल बना पाया ? जितनी रूपवती कन्याएँ हैं, उन सबको कौन ब्याहकर घर ला पाया ? अलवीरा को क्या वर नहीं मिलेगा ? पत्थर जैसा इस वर्ष है, अगले वर्ष भी वैसा ही रहेगा। हंस अकेला जाए, अमर तो कोई नहीं।

"पाथुरिया गली को पीठ पर लादकर कौन ले जा सकता है ? जो जीव आया, उसे जाना है। पत्थर तो घाट-वाट रोकने से रहे। कहते हैं, बाँटा हुआ पानी नहीं पीना चाहिए। माटी का ओढ़ना, माटी का ही बिछौना।...

"किसी को मेरी आवश्यकता नहीं। तो क्या जीवन-लीला समाप्त कर देनी चाहिए ? मैं अपनी छाया से पाथुरिया गली को कब तक ढकता रहूँगा ? मेरी मूर्तियों में दम होगा, तो वे रहेंगी।

"कोइली की दादी की शिकायत है, ब्रह्मा अभी तक मेरी मूर्तियों में प्राण नहीं डाल सके।...अब उस चिन्ता के घेरे में बँधकर क्यों रहूँ ?"

प्रबल वेग से वर्षा होती रही। वृक्षों की डालियाँ हवा-पानी की मार सह रही थीं। हवा का आर्तनाद बढ़ता गया। कोइली की दादी ने कई बार आवाज़ देकर कहा, "छोड़ो यह काम, फिर हो जाएगा।"

नीलकण्ठ ने भीतर से आकर कहा, "यह ठक-ठक छोड़ो, बाबा !"

चतुर्मुख के हाथ चलते रहे, जैसे आज ही इस मूर्ति को सम्पूर्ण करना हो।

छेनी चलाते हुए चतुर्मुख सोचते रहे, 'पुखरी तटों से घिरी रहती है, आदमी कर्तव्य से। घोड़े को विधाता ने हवा से बातें करने का स्वभाव दिया है, आदमी उसे लगाम डालकर काबू कर लेता है, उस पर ज़ीन डालकर सवारी करता है। आदमी को कार्य पकड़े रखता है; उससे भागने का रास्ता नहीं, पर सदा कौन बैठा रहता है ? बहुत काम किया। कलापथ पर पाथुरिया जो विजय प्राप्त करता है, उसमें कोई अशोक भी क्या बराबरी करेगा ? मुझे अपनी एक-एक मूर्ति प्रिय है। वह मुझसे क्या कहती है...वीणा की तूँबी से लेकर इसके सूक्ष्मतम तार तक सभी सत्य है। पर हम वीणा के नियम ही नहीं, संगीत भी चाहते हैं। संगीत द्वारा ही हम वीणा का अर्थ पा सकते हैं। मूर्ति पूर्ण किये बिना पत्थर मुँह से नहीं बोलता...'

सहसा आँखें चौंधिया गईं। कड़ाकड़ की आवाज़ से कान के परदे फट गए, जैसे पाथुरिया गली में ही कहीं बिजली गिरी हो।

चतुर्मुख ने छेनी-हथौड़े रखकर पूछा, "अरे बिजली कहाँ गिरी है ?"

लालटेन के प्रकाश में चतुर्मुख अकेले बैठे छेनी-हथौड़ी चलाते रहे।

रात-भर वर्षा होती रही। कोइली की दादी ने उठकर देखा, चतुर्मुख बिस्तर पर नहीं हैं। नीलकण्ठ अभी तक सो रहा था।

नीलकण्ठ जैसे घोड़े बेचकर सो रहा था।

"उठो, बेटा!" दादी ने घबरायी हुई आवाज़ में पुकारा, "देखो तुम्हारे बाबा कहाँ चले गये?"

नीलकण्ठ आँखें मलता हुआ उठा। दादी बहुत घबरा रही थी। बाबा का कहीं पता न था। मूसलाधार मेह बरस रहा था।

"मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है।" दादी ने सिर पीट लिया, "हाय वे कहाँ चले गए?"

"मैं जाकर देखता हूँ।" कहते हुए नीलकण्ठ वर्षा में बाहर निकल गया।

वह अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान की ओर हो लिया।

चट्टान के पास खड़े होकर वह सोचता रहा, 'कहीं अश्वत्थामा की ओर तो नहीं गये?'

उसे याद आया, कल उसने अशोक के अश्वत्थामा वाले शिलालेख का पूरा मतलब समझाया था। हो न हो, बाबा वहीं गये होंगे। उसके पैर

उधर को उठ गए।

कौशल्या पुखरी को एक ओर छोड़ता हुआ वह अश्वत्थामा के पथ पर लम्बे डग भरता रहा। मेह का ज़ोर रास्ता रोक रहा था।

बाबा पर क्रोध आ रहा था, "सवेरे-सवेरे मेह में अश्वत्थामा जाकर कौनसे वेद पढ़ने थे ?"

वह लम्बे डग भर रहा था। फिसलन का ज़रा भी डर न था।

"बाबा ! बाबा !" उसने पुकारा, पर कोई उत्तर न मिला।

उसे अलवीरा की याद आई। वह कितनी हँसमुख है, कितनी मधुर ! बाबा कहते हैं, मैं उसे भूल जाऊँ !

वह बार-बार आँखों से पानी पोंछता था। कई बार उसका पैर फिसला।

उसने फिर आवाज़ दी, "बाबा ! तुम कहाँ हो ?" और कोई उत्तर न मिला।

उसके पैर अनायास आगे उठते गए।

पानी बरस रहा था। अश्वत्थामा शिला उसी तरह खड़ी थी। हाथी-मुख की आकृति जैसे ज़माने की गरमी-सरदी सहते जरा भी न बदली हो। शिलालेख पानी की बौछार से धुल रहा था। बाबा का कहीं पता न था।

"बाबा !" उसने फिर पुकारा। उसके शब्द हवा में गूँजकर रह गए।

शिलालेख पर वह हाथ फेरता रहा। वह दृश्य उसकी आँखों में घूम गया, जब अशोक ने अपने अभिषेक के आठ वर्ष बाद एक विशाल सेना के साथ कलिंग पर आक्रमण किया। कलिंगवासियों ने वीरतापूर्वक सामना किया। मेगस्थनीज़ के अनुसार, महानदी और गोदावरी के बीच वाले पूर्व सागर-तटवर्ती कलिंग देश में साठ हज़ार पैदल, एक हज़ार घुड़सवार और सात सौ हाथियों की सेना थी। भयानक युद्ध हुआ। भीषण रक्तपात। शिलालेख में अशोक ने स्वीकार किया था कि डेढ़ लाख बन्दी कर लिए गए, एक लाख मारे गए और उनसे कई गुना लोग रोगों और सामरिक

परिस्थितियों से मृत्यु के ग्रास हुए। जैसे सम्राट् अशोक स्वयं स्वीकार कर रहे हों कि उस युद्ध की नृशंसता ने उनके हृदय पर गहरा आघात किया। जैसे वे कह रहे हों—मैं शपथ लेता हूँ कि फिर कभी रक्तपात नहीं करूँगा, भेरी-घोष का स्थान अब धर्म-घोष को मिलेगा, दिग्विजय का धर्म-विजय को। अब मैं धर्म के अनुचरण और प्रसार में ही दत्तचित्त हूँगा। मैं बौद्ध हूँ, पर सभी सम्प्रदायों का आदर करता हूँ। हममें आपस का मेल तो होना ही चाहिए।...

"बाबा!" उसने फिर पुकारा, और कोई उत्तर न मिलने पर उसने सोचा कि बाबा आज दया नदी की ओर निकल पड़े होंगे। पर इसमें उसे कोई तुक नज़र न आई।

वर्षा की आवाज़ में सब आवाज़ें डूब गईं।

अश्वत्थामा के नीचे धान के खेतों में जल-थल एक हो रहा था। उसके पैर सहसा गाँव की ओर उठ गए।

पाथुरिया गली के उत्तरी सिरे पर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान उसी तरह महाशिल्पी विशु का स्मरण करा रही थी।

गली के दूसरे सिरे से कोई भागता हुआ आ रहा था।

पास जाकर पता चला, जागरी आ रहा है।

जागरी ने सिर पीटकर कहा, "भैया, हम लुट गए!"

नीलकण्ठ ने कहा, "क्या बात है?"

"भैया, बाबा चल बसे!" जागरी ने रोते हुए कहा, "हम लुट गए! बाबा चले गए!"

"पागल तो नहीं हो गए, जागरी?" नीलकण्ठ ने तेज़ डग भरते हुए कहा, "तुमने बाबा को कहाँ देखा?"

"ब्रह्मा-विष्णु मूर्ति वाली चट्टान के पास पड़े हैं, बाबा।"

"क्या वे गिर गए? चोट आ गई?"

नीलकण्ठ और जागरी को ब्रह्मा-विष्णु मूर्ति वाली चट्टान के पास पहुँचते देर न लगी।

चट्टान के चरण-स्थल में चतुर्मुख की मृत देह पड़ी थी। पास ही एक शंख दिखायी दे रहा था, जिसमें विष-पान करके चतुर्मुख ने जीवन-लीला समाप्त कर दी थी।

बाबा की मृत्यु का समाचार सारे गाँव में फैल गया। वर्षा में भीगने की परवाह न करते हुए लोगों की भीड़ जुड़ गई। हर कोई यही कह रहा था, "विष-पान का प्रसंग तो चतुर्मुख अक्सर ले बैठते थे।"

कुल-देवता को लिखे गए पत्र में विष-पान का संकेत किया गया था। चतुर्मुख ने यह इच्छा भी व्यक्त की थी कि उनके फूल समुद्र में डाले जाएँ।

फूल पोटली में बँधे थे। नीलकण्ठ ने सोचा, 'बाबा पचासी के होकर चले गए। वे सदा शिव बने रहे। क्या लोक-मंगल के लिए ही उन्होंने विष-पान किया? मरने के बाद उनके मुख पर मुस्कान थी। उससे तो लगता था, अन्तिम साँस छोड़ते समय उनकी आत्मा शान्त थी।'

उसने अपने मन में कहा, 'महानदी पार करते समय जल में ताँबे का पैसा फेंकते हैं, और मरने वाले के मुँह में अन्तिम संस्कार से पहले ताँबे का पैसा डालने का विधान चला आता है।'

बाबा के अन्तिम संस्कार का दृश्य उसकी आँखों में घूम गया। वर्षा न रुक गई होती तो बड़ी मुश्किल होती। पाँच मन लकड़ी लगी। चन्दन भी डाला गया था। हवन-सामग्री वैद्यजी ने तैयार की। घी का एक कनस्तर गगन महान्ती ने दिया। दाह-संस्कार के बाद हर कोई यही रट लगा रहा था, "अब तो नीलकण्ठ को त्रिमूर्ति पूर्ण करनी चाहिए। बाबा की आत्मा को प्रसन्न करने का यही उपाय है।"

आज सवेरे फूल चुनते समय वह लोक-भावना उसे छू गई थी। उसने

मन में कहा, 'अन्तिम संस्कार के तीसरे दिन ही फूल क्यों चुनते हैं ?'

फूल चुनने का दृश्य उसकी आँखों में घूम गया। पण्डे के हाथ में काँसे की थाली थी, जिसमें गुलाब की पंखुड़ियाँ भरी थीं। पण्डे के पास पीतल की दोहनी में दूध था और उसका एक साथी खाली थाल लिये खड़ा था। पण्डे के संकेत पर नीलकण्ठ ने चिता वाले स्थान के तीन चक्कर लगाए थे।

उसने मन में कहा, 'यहाँ भी तीन की संख्या ! तीन ही चक्कर क्यों लगाते हैं ? और पण्डे ने मुझे अपने दाईं ओर बैठने को क्यों कहा था ?'

पण्डे ने इसका यह कारण बताया था कि इसी दिशा में लकड़ियों पर मरने वाले का सिर रखते हैं।

पण्डे के आदेश पर जब वह राख पर दूध के छींटे मार रहा था, तो पण्डा साथ-साथ मन्त्र-पाठ करता जा रहा था। उसने सात बार दूध के छींटे मारे थे।

उसने मन में कहा, 'यहाँ सात की संख्या क्यों रखी गई ?'

पण्डे के आदेश पर वह दोनों हाथों की अँगुलियों से राख को टटोलने लगा था। पण्डे ने समझाया था, "जो भी फूल मिलते जाएँ उन्हें काँसे की थाली में रखते जाओ।" और नतमस्तक होकर उसने वैसा ही किया था।

फूल चुनते-चुनते राख से एक छोटी-सी हड्डी मिली, जिसे देखकर जाने किस-किस शास्त्र का उल्लेख करते हुए पण्डे ने बताया था, "मरने वाले को शान्ति मिल गई, यह इस 'आत्माराम' से स्पष्ट हो जाता है।"

तब तक फूल चुने जा चुके थे। वह हड्डी भी पण्डे ने फूलों वाली थाली में रख दी। और फिर पण्डे ने थाल में चिता की राख भर कर दया नदी में प्रवाहित कर दी।

उसने बाबा के फूल उस दूध में धो लिए थे, जिसमें पहले से गुलाब की पंखुड़ियाँ डाल दी गई थीं।

उसने फूलों को प्रणाम किया, तो पण्डे ने कहा था, "बाबा को श्रद्धा-

पूर्वक स्मरण करो।"

अब सागर-तट पर आकर वह फिर बाबा का स्मरण करने लगा। उसने अपने मन में कहा, 'बाबा महान् थे।'

उसने सोचा, 'क्या मैं भी बाबा की तरह महान् बन सकता हूँ? बाबा का स्थान खाली नहीं रहेगा। मैं त्रिमूर्ति पूर्ण करूँगा, और पत्थर-से मन का मेल नहीं टूटने दूँगा।'

समुद्र की लहरें बार-बार उसके पैरों से निकलकर ऊपर चली जातीं और फिर पीछे हट जातीं।

पोटली खोलकर उसने बाबा के फूलों के अन्तिम दर्शन किये। बड़ी श्रद्धा से उन्हें आँखों से लगाकर बाबा के जीवन की बड़ी-बड़ी घटनाओं का स्मरण किया। उसने कहा, "सागर देवता, बाबा महान् थे। उनकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उनके फूल स्वीकार करो।"

समुद्र गरज रहा था। उसे लगा, इसी गरज में सागर देवता ने कह दिया, "तुम बाबा के फूल मुझे दे सकते हो।"

पास ही कुछ लोग सागर-स्नान कर रहे थे।

उसने फिर से पोटली बाँध ली। वह सागर में लहरों से लड़ता, थोड़ा भीतर तक तैरता चला गया। पोटली उसके हाथ में थी।

उसने पोटली दूर फेंक दी और वह तट पर आ गया।

फिर वह पोटली लहरों ने तट पर ला पटकी।

उसने पोटली खोलकर देखी। फूल भीग गए थे। खुली पोटली को हाथ में थामकर वह फिर से सागर में कूद पड़ा।

उसने खुली पोटली दूर फेंक दी, और वह फूलों को लहरों पर तैरते देखता रहा। लहरों के साथ फूल कभी ऊपर उठते, कभी भीतर जाते।

तट पर खड़े-खड़े वह सोचने लगा, 'बाबा ने यह आदेश क्यों दिया कि उनके फूल सागर में ही डाले जाएँ?'

कथा का यह तार स्पष्ट था कि महादेव ने समुद्र-मंथन के पश्चात् समुद्र-तट पर ही शंख में विष-पान किया था। उसने सोचा, 'बाबा को यही

दुःख था कि हमारी एक पीढ़ी पाथुरिया के धन्धे से कट गई। पिताजी कलकत्ते में हैं। उन्होंने बाबा की अवहेलना करते हुए यह नौकरी कर ली थी, जो उन्हें बुलके साहब ने दिलवाई थी। बाबा बहुत दिन बुलके साहब से नाराज़ रहे, पर बुलके बराबर बाबा से मिलते रहे। आगे चलकर उन्होंने ही मुझे लन्दन भेजने का प्रस्ताव रखा। बाबा हँसकर बोले, "नारायण को छीनने के बाद आप नील को भी छीन रहे हैं?" बुलके सँभलकर बोले, "मैं तो नील को बड़ा मूर्तिकार बनाना चाहता हूँ। आपकी कला महान् है, पर पश्चिम में मूर्ति-कला कहाँ-से-कहाँ जा पहुँची। क्यों न नील लन्दन जाकर मूर्ति-कला सीखे?" बाबा ने पूछा, "कितने दिन लगेंगे?" बुलके साहब बोले, "पाँच साल लगेंगे। बाबा बोले, "मैं तो नील को पाँच दिन के लिए भी अलग नहीं कर सकता।" आखिर बुलके की जीत हुई। उन्होंने बाबा को राज़ी कर लिया। अब उन्हें बाबा की मृत्यु का कितना दुःख होगा!

जैसे समुद्र की लहरें एक ही रट लगा रही हों—यहाँ कौन किसी को याद रखता है?

नीलकण्ठ ने समुद्र-तट पर खड़े-खड़े फैसला किया कि वह त्रिमूर्ति शीघ्र ही पूर्ण करेगा। उसे बाबा याद आ गए। वह फूट-फूटकर रोने लगा, "बाबा, तुम कहाँ चले गए? क्यों चले गए?..."

विष-पान की कथा किसी की समझ में न आई।

धौली में हर किसी को यही आभास हो रहा था कि चतुर्मुख अपनी ही बात काटकर गोष्ठी से उठ गए, जैसे वे अपने संकल्प का गला घोंट गए हों।

"धन्य है वह पत्थर जिसमें छेनी कोई सपना जगा दे। जहाँ भी कोई प्रिय कथा कही जा रही हो उसका एक-न-एक पात्र मैं भी तो हूँ!" बाबा के ये शब्द जागरी हर किसी के सामने ले बैठता।

नीलकण्ठ कहता, "बाबा का वह बोल स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है—'पत्थर में मूर्ति कोरने वाला पाथुरिया वह सब-कुछ हुए बिना नहीं रहता जो उसे अपनी मूर्तियों में नज़र आता है।"

दादी ने एकाएक यह कहना आरम्भ कर दिया, "तुम्हारे बाबा की मूर्तियों में ब्रह्मा ने प्राण डाल दिए।"

वैद्यजी व्याख्या करने लगते, "जब पाथुरिया चला जाता है, तो उसकी कला उसकी कथा कहने को शेष रह जाती है।"

दादी को अथाह दुःख हुआ। पर उसके सम्मुख एक ही प्रश्न था—"आगे की कथा किस ओर मुड़ेगी?"

कलकत्ता से नारायण पत्नीसहित आया और कुछ दिन रहकर जाने की तैयारी कर ली।

जाते समय नारायण ने तीन-चार मूर्तियाँ साथ ले जानी चाहीं, पर दादी ने इन्कार कर दिया।

कोइली को बाबा के चले जाने का बहुत दुःख हुआ। दुनिया को दिखाने के लिए तो हरिपद भी तीन-चार दिन धौली में रहा। फिर वह कोइली को लेकर चला गया।

नीलकण्ठ को रात-भर सपने आते रहते, जिनमें बाबा यही पूछते—"तुम त्रिमूर्ति कब पूर्ण करोगे ?..."

ब्रह्मा और विष्णु-मूर्ति वाली चट्टान के सामने खड़ा होकर नीलकण्ठ उसे एकटक निहारता रहता, जैसे वह अभी उस भय से मुक्त न हो पाया हो, जिसे हौए की काल्पनिक मूर्ति के रूप में माता बाल्यकाल में ही शिशु के सम्मुख खड़ा कर देती है। वह अपने मन से पूछता, 'क्या सचमुच प्रेत-पिशाच होते हैं ? क्या बाबा की आत्मा इस चट्टान के आस-पास मँडरा रही है ?' और फिर इस भय से मुक्त होने के लिए वह कहता, "हौए की मूर्ति कब तक हमें मदारी का बन्दर बनाए नचाती रहेगी ?"

टिकी हुई रात में सियार की 'हुआ-हुआ' सुनायी देने लगती, तो उसके उत्तर में पाथुरिया गली का कोई कुत्ता भौंकने लगता। जैसे प्रत्येक व्यक्ति शून्यता की विराट् खोह का अकिंचन्-सा प्रतिनिधि हो और सियारों की 'हुआ-हुआ' में यही रुदन चल रहा हो कि उसे अभी तक भीतर से भरा क्यों नहीं गया ? वह मन से पूछता, 'यह, सब निरर्थक है या इसमें कुछ सार्थक भा है ?' हौआ की मूर्ति दढ़ियल वटवृक्ष की तरह फैलने लगती। उसके सम्मुख वह स्वयं कितना बौना प्रतीत होता ! वह पूछता, "क्या हौआ ही महान् है ? अनगिन पीढ़ियों का दाम चुकाने को मैं क्यों महान् बन नहीं सकता ? पहले के पाथुरियों द्वारा उत्कीर्ण पत्थर मूर्तियों के रूप में क्या सचमुच उन लोगों की कथा नहीं कहते, जिनकी छेनियों ने उन्हें यह रूप दिया ? क्या पाथुरिया स्वयं अपने भय से आतंकित होकर छेनी

रख दे ? इस अन्तहीन घुटन का कहीं अन्त भी है ? पुरातन मूर्तियों के स्पष्ट कटाव और कसा हुआ गठन तो यही कहता है कि हर पीढ़ी का संकल्प युग-परम्परा को नूतन आलोक से परिपूर्ण कर देता है।"

कभी नीलकण्ठ वेदना के प्रवाह में बहता हुआ सोचता, 'सृष्टि-सूक्त का यह कथा-सूत्र कितना महान् है कि स्रष्टा की वासना से ही सृष्टि की रचना हुई। उन पाथुरियों में कितना साहस और धैर्य रहा होगा, जिनकी कला भुवनेश्वर और कोणार्क में आज भी जीवित है ! मूर्ति में स्वयं मानव ने देवत्व प्राप्त किया ! सौन्दर्य-बोध द्वारा बौना मानव महान् बना ! पत्थर में पाथुरिये ने नये अर्थ उत्कीर्ण किए, नये प्रतीक खोज निकाले, नये लक्षणों में अपनी कल्पना का रूप निहारा, फिर यह हौआ इतना मुखर क्यों हो उठा है ?'

कभी वह आज की दुनिया की राजनीतिक पृष्ठभूमि में सोचता, 'पूर्वकाल में कितने युद्ध हुए ! आज भी एक युद्ध हो रहा है। क्या पूर्वकाल का हौआ ही हिटलर बनकर सारे संसार पर अपना राज्य स्थापित करने जा रहा है ? पूर्वकाल के युद्धों में तलवारों से नर-मुण्ड कट-कटकर गिरा करते थे। कलिंग के युद्ध में हमारी इसी धरती पर कितना रक्त बहा होगा ! सत्य और मिथ्या का युद्ध क्या इसी तरह होता आया है ? कलिंग और अशोक में कौन सत्य था, कौन मिथ्या, इसकी खोज किसने की है ?'

फिर जैसे विवेक का स्वर गूँज उठता, "नीति-शास्त्र की पुरातन वाणी हम कब तक अनसुनी करते रहेंगे—'जो कर्तव्य है, वह तो उपेक्षित है और जो अकर्तव्य है, वही किया जाता है !···अविवेकी, असंयत लोगों की इच्छाएँ सदा बढ़ती जाती हैं !' उत्कीर्ण पत्थर तो मानव की रुचि और संस्कार की कथा कहते नहीं अघाते। क्या मानव ने सदा आत्म-सम्मोहन द्वारा ही हौए की मूर्ति पर विजय पाने की चेष्टा की है ? पर हौए ने तो हर मोड़ कर नाकेबन्दी कर रखी है। उसी का चोर-बाज़ार चलता है। हौआ लेनदार है, हम देनदार। युद्ध का आतंक अखबार की खबरें बनकर जगह-जगह पहुँचता है। क्या इस युद्ध में मानव की हार

हो जाएगी ? उत्कीर्ण पत्थरों का गला घोंट दिया जाएगा कि वे अपनी कथा न कह सकें ? कोणार्क के खण्डहर भी ढह जाएँगे ? सूर्य-रथ की रही-सही कल्पना भी मिट जाएगी ?...''

दया नदी के पुल पर खड़ा होकर वह सोचता, 'इस पुल के नीचे से प्रति पल कितना जल लाँघकर सागर की ओर बढ़ता रहता है ! यह सब तो शून्य की बात नहीं हो सकती । क्या दया नदी का प्रवाह परिवर्तन का तर्क प्रस्तुत नहीं करता ? हेराकिलटस ने पुल के नीचे बहते जल को देखकर कहा था—सब-कुछ बदल जाता है । ठीक ही तो कहा था, क्योंकि इतिहास के एक युग-द्रष्टा के रूप में उसने परिवर्तन का ताप अनुभव किया था, वह बर्बरता और असभ्यता के लोप का आँखों-देखा हाल जानता था, सभ्यता के रंग-मंच पर उसने नये मानव के दर्शन किये थे ।'

वेदना ने उसे विचारवान् बना दिया था । लन्दन-प्रवास का ध्यान आते ही वह सोचता, 'दीवार की दरार में फूल देखकर टेनिसन को नूतन मानव का आभास हुआ था और वह पुकार उठा—"दीवार की दरार के ओ फूल, मैं तुझे जान सकता, तो मैं सब-कुछ जान सकता !" यह बात कि मानव-स्वभाव परिवर्तनशील है, हौए की मूर्ति को सबसे बड़ी चुनौती है ।'

पुरातन मूर्तिकला का अध्ययन उसे इस चिन्तन-धारा में बहा ले जाता, 'उत्कीर्ण पत्थर की कथा का एक ही स्वर है कि पाथुरिये के मन की बात ही छेनी द्वारा अग्रसर होती है !...आज भी छेनी चलेगी और त्रिमूर्ति पूर्ण होगी ।...पर बाबा न होंगे ।'

साधना

मानवता पर आज जो गहरा सङ्कट छाया हुआ है, उसके समस्त कारणों के मूल में है मानव की अपरिमित तृष्णा। हमारा व्यक्तिगत और वास्तविक जीवन वास्तविक विकास के रास्ते से दूर जा पड़ा है। विकास की दिशाओं में एक असन्तुलन है, जिससे वास्तविक विकास मारा जाता है। केवल राजनीतिक या आर्थिक उपाय इस अवस्था का सामयिक प्रतिकार ही दे पाते हैं। किन्तु इसका अधिक प्रभावशाली और अधिक स्थायी प्रतिकार तो केवल ऐसी प्रेरणाएँ हैं—अगर हैं तो—जो केवल इस जीवन की परिधि, अपने ही अहं की तुष्टि और अहं के प्रसार तक ही सीमित न हों।

···सच्ची कला बिखरे हुए तत्त्वों को संयोजित करती है और आदमी को ऊपर उठाती है···कला की साधना विलास नहीं, न स्वप्नलोक में पलायन है।···कला तो हमारे स्वभाव की एक विचित्र आवश्यकता है।

···प्रत्येक मनुष्य में कहीं-न-कहीं एक कलाकार है···अपने अतीत की कला-शैलियों पर गौरव करने से कोई लाभ नहीं, जब तक उन्हें समझ न सकें और स्वयं भी नव-निर्माण न कर सकें। हमारी अपनी ही कला के प्रति हमारे अज्ञान की बलिहारी है, जिसके कारण यह आवश्यक हो गया कि यूरोपीय कला-मर्मज्ञ और आलोचक आकर हमें उसका मर्म समझाएँ और तब उस झूठे ज्ञान के बल पर ही हम उस महान् वैभव को समझ सकें जिसमें हमारे राष्ट्र का अतीत पलता था।

—नन्दलाल वसु

सात महीनों में जाकर त्रिमूर्ति में महादेव की कल्पना साकार हुई।

ब्रह्मा के रूप में चतुर्मुख के पिता मूर्तिकार उपेन खड़े थे, हाथ में नटराज की मूर्ति लिये हुए। विष्णु के रूप में दरशाये गए थे महात्मा गांधी, हाथ फैलाए, चन्दा माँगने की मुद्रा में। महादेव के रूप में विराजमान थे चतुर्मुख, शंख में विषपान करते हुए।

ब्रह्मा और विष्णु की मूर्तियों में पचास वर्ष का अन्तर था। विष्णु और महादेव की मूर्तियों में पच्चीस वर्ष की दूरी। केलू काका, चतुर्मुख और नीलकण्ठ इस त्रिमूर्ति के निर्माता थे। फिर भी ऐसा प्रतीत होता था कि त्रिमूर्ति एक ही शिल्पी की रचना है।

पाथुरिया गली के दक्षिणी छोर पर वैद्यजी की दुकान के सामने मुंह किए खड़ी थी त्रिमूर्ति। पीठ खेतों की ओर थी, जो नदी तक चले गए थे।

मूर्तिशाला में त्रिमूर्ति का प्रसंग चल रहा था। जागरी बोला, "बाबा कितने गम्भीर लगते हैं त्रिमूर्ति में, जैसे वह कह रहे हों—मैं विष को कंठ से नीचे नहीं उतरने दूँगा!"

पास से रूपक ने शह दी, "बाहर से जो लोग अश्वत्थामा चट्टान का

फोटो लेने आते हैं, वे त्रिमूर्ति का फोटो लेने से नहीं चूकते। क्यों, काका!"

जागरी ने झट नीलकण्ठ का कन्धा झकझोरकर कहा, "तुम तो नाम के नीलकण्ठ हो। असली नीलकण्ठ तो बाबा हैं। त्रिमूर्ति में उन्हें देखकर मैं उन्हें प्रणाम किये बिना नहीं रह सकता।"

रूपक आँखों में चमक लाकर बोला, "क्या गुरुदेव का यह रूप उनके जीवन-काल में ही पत्थर में साकार नहीं किया जा सकता था?"

मूर्तिशाला की मूर्तियाँ भी हाँ-में-हाँ मिलाती प्रतीत हुईं, जैसे उनकी शान्त स्थिरता कुछ-कुछ बदल गई। मानो अपने निर्माता की प्रशंसा सुनकर उनमें निखार उभर आया। किसी के मुख पर मानो यह भाव आ गया—हाय, हमारे निर्माता की जीते-जी न हुई पहचान! किसी मूर्ति की आँखों में जैसे कोई सपना-सा तैरने लगा, मानो वह मुहूर्त सामने आ रहा हो, जब पत्थर चुना गया और फिर छेनी-हथौड़ी से उसमें साँसों का संगीत भरा गया।

दीवारों पर सीलन के दाग मूर्तिशाला की सामान्य स्थिति की घोषणा करते प्रतीत हो रहे थे। छत पर इधर-उधर मकड़ी के जाले लगे रहते, जैसे मकड़ियों को यहीं जाले बनाने की ज़िद हो। कई बार उन्हें हटाया जाता, पर लगता था ये जाले यों ही रहेंगे। मूर्तियों पर जमने वाली धूल बार-बार हटायी जाती, पर धूल फिर आ जमती, जैसे उसे भी यही जगह पसन्द हो।

नीलकण्ठ को नारी का मुख कोरते देखकर जागरी ने हँसकर कहा, "अब तो लड़ाई बन्द हो गई और अँग्रेज़ी सरकार ने बड़े-बड़े शहरों में रोशनी करके 'विक्टरी-डे' भी मना डाला। अब तो अलवीरा को लन्दन से आ जाना चाहिए। तुमने बहुत दिनों से उसे चिट्ठी नहीं लिखी।"

नीलकण्ठ ने कोई उत्तर न दिया।

"अलवीरा ने ही चिट्ठी लिखी होती!" जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "मालूम होता है, अलवीरा नाराज़ हो गई।"

"नाराज़ होती है तो हो जाए !" रूपक ने शह दी, "यहाँ उसकी दाल नहीं गल सकती । गुरुदेव की अवहेलना तो कैसे की जाएगी ?"

जागरी ने हँसकर कहा, "कल एक यात्री गा रहा था :

भाग रे भाग, फकीर के बालके !
कामिनीकाँचन बाघ लागा ।
दास पलटू कहे बचेगा सोई,
जो साधु के संग दिन-रात जागा ।

पलटूदास की इस वाणी पर वह यात्री झूम उठा था, या भुवनेश्वर में पत्थर की नारी को देखकर, यह तो कैसे कहूँ ?"

नीलकण्ठ ने चुप रहना ही उचित समझा ।

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर नाक से धुआँ छोड़ते हुए कहा, "बाबा एक कथा कहा करते थे न ?"

"कौनसी, जागरी काका ?" रूपक ने आँखें मटकाकर पूछा ।

"इसका सच-झूठ तो बाबा के सिर पर है, जिन्होंने मरने से तीन दिन पहले मुझे कोई सातवीं बार यह कथा सुनायी । अब भी मैंने यह कथा उसी उत्सुकता से सुनी, जिससे पहली बार सुनी थी । हाँ, तो बाबा बोले—ब्रह्मा ने दुनिया में पत्थर का पहला आदमी गढ़ा और उसे मूर्तिशाला के एक कोने में खड़ा कर दिया । पुरुष की मूर्ति इतनी सुन्दर बनी कि ब्रह्मा स्वयं इस पर मुग्ध हो गए । फिर बहुत सोच-समझकर उन्होंने पत्थर से नारी-मूर्ति गढ़कर उसकी आँखों में रूप का संसार लहराते देखा, तो वे चिंता में डूब गए । आँख भरकर नारी-मूर्ति का रूप निहारा, तो उनकी बाँहें अपने-आप नारी-मूर्ति की ओर उठ गईं । वे उसे अंक में भर लेना चाहते थे । नारी-मूर्ति परे हट गई । ब्रह्मा को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—मैं तो अनादिकाल से उसकी हूँ, वह जो कोने में खड़ा है !... उसने पुरुष-मूर्ति की ओर संकेत किया । ब्रह्मा ने नारी-मूर्ति से कहा—चुप रहो । या फिर बहुत धीरे बात करो । इससे पहले कि मैं पुरुष-मूर्ति में भी तुम्हारी तरह प्राण जगा दूँ, आओ, मैं तुम्हें एक बार अंक में भर

लूँ। क्यों, तुम्हारा मन क्या कहता है ? सच जानो, तुम्हारा सौन्दर्य उस समय तक नहीं निखरेगा, जब तक मैं तुम्हें अंक में नहीं भर लेता।"

"यह तो बहुत ही मजेदार कथा है, जागरी काका !" रूपक ने शह दी, "गुरुदेव मेरी अनुपस्थिति में ही ऐसी कथा कहा करते थे। आखिर उनकी कथाएँ मुझ तक कैसे नहीं पहुँचेंगी एक-एक करके ?"

"हाँ, तो सुनो, रूपक ! नारी-मूर्ति मान गई। बोली—किसी को पता न चलने पाए कि आपने मेरा आलिंगन किया। इस पर ब्रह्मा ने कहा—मैं तुम्हारे मुँह पर ताला डाल दूँगा। यह बात तुम्हारे ही मुँह से निकलने का भय हो सकता है। मुँह पर ताला लगाने से तो तुम्हारा रूप बिगड़ जाएगा। मैं तुम्हारा मन लाज से भर दूँगा। तुम यह कथा किसी से न कहना कि मैंने तुम्हें गले लगाया और तुम्हें परम सुन्दरी बनाने के लिए तुम्हारा चुम्बन ले लिया। मैं तुम्हें रोने की शक्ति दूँगा। तुम्हारे जीवन-साथी के मन में मूर्खता भर दूँगा। एक बात याद रखो। तुम्हारे साथी के अतिरिक्त जब भी कोई अन्य पुरुष तुम्हें प्रिय लगेगा, तो उसमें तुम्हें मेरी ही झलक दिखायी देगी। तुम सदा उस पुरुष में मुझे ढूँढने का यत्न करोगी। तुम्हारा यह भ्रम बना रहेगा।...ब्रह्मा ने पुरुष-मूर्ति में प्राण जगाए और प्राणवान् नारी-मूर्ति को उसके हाथों में सौंपकर कहा—अब तुम अपनी जय-यात्रा आरम्भ करो। तब से आज तक पुरुष और नारी की यात्रा चल रही है। उनकी यह यात्रा कभी शेष नहीं होगी। कल मैंने यह कथा उस यात्री को सुनाकर पूछा—अब कहो, पलटूदास क्या कहते हैं ?"

"तो वह यात्री क्या बोला ?" रूपक ने उत्सुकता से पूछा।

मूर्तिशाला की मूर्तियों को देखकर जागरी को लगा, दर्पणवती सुन्दरी की मुस्कान मुखरित हो उठी, जैसे पलटूदास की सूक्ति उसे गुदगुदा गई। आँखों में काजल आँजने की मुद्रा वाली सुन्दरी भी जैसे इधर कान दिये खड़ी हो। अलक्तक लगाने वाली नव-वधू और मुक्त वेणी के मोतियों से हंसों को लुभाने वाली अप्सरा भी मानो दर्पण में अपना रूप निहारकर

मुग्ध होने वाली रूपसी को आँखों-ही-आँखों में पूछ रही हो—पलटूदास ने हमारी रूप-लीला पर जो व्यंग्य कसा, उसका क्या उत्तर दिया जाए ?

जागरी ने नीलकण्ठ को सम्बोधित करते हुए कहा, "क्या अलवीरा को बिलकुल भुला दिया ?"

"वह जहाँ भी है प्रसन्न रहे।" नीलकण्ठ ने छेनी चलाते हुए कहा, "उसका जीवन सुख से बीते। पिताजी से पता चलने पर कि वे मेरे लिए एक कन्या ठीक कर रहे हैं, बुलके साहब ने अलवीरा को लिख दिया। बाबा ने भी अपनी ओर से गगन महान्ती के हाथ से एक पत्र अलवीरा को लिखवा दिया कि वह मेरा ख़याल छोड़ दे। फिर उसने मेरे पत्रों का उत्तर देना छोड़ दिया और मैं भी चुप हो गया।"

"अब क्या सलाह है ?"

"मैंने विवाह का विचार ही छोड़ दिया।"

"पत्थर से विवाह करोगे ?"

जागरी और नीलकण्ठ के प्रश्नोत्तर सुनकर मानो पत्थर की रूपसी मुस्कराने लगी, जिस पर इस समय नीलकण्ठ की छेनी चल रही थी।

"अब स्थायी रूप से यहीं रहोगे न ? कहीं हमें छोड़कर कलकत्ते जाने की बात तो नहीं सोचते ?"

"अभी तो धौली में ही रहने का विचार है।"

रूपक बोला, "गुरुदेव मेरी अँगुली नीलकण्ठ काका के हाथ में दे गए। काका आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे। कहीं भी जाएँ, मैं इनके संग रहूँगा।"

"संग रहोगे तो तर जाओगे!" जागरी ने शान्त भाव से कहा, "कला का रास्ता लम्बा है। बीच में गड़बड़ कर बैठे, तो उधर के रहोगे न इधर के। बाबा कहा करते थे, बहुत-कुछ पहुँच से बाहर रह जाता है, जिसकी हम थाह नहीं पा सकते। ये बातें गाँठ बाँध लो, रूपक !"

बाहर सूरज आग बरसा रहा था। गली से एक बैलगाड़ी जा रही

थी, जिसकी चूँ-चरर-मरर उभरी और खो गई।

नीलकण्ठ बोला, "जब बैलगाड़ी की धुरी में तेल नहीं दिया जाएगा, तो ऐसी ही रुदन-भरी आवाज़ निकलेगी। जीवन की धुरी भी तेल माँगती है। वह है अपने काम में साँसों का संगीत भरने का विश्वास।"

जागरी ने कहा, "बाबा कहा करते थे, पौधे के लिए चिकनी उपजाऊ मिट्टी चाहिए। अपने-आप को स्थिति के अनुकूल ढालने की क्षमता पौधे में प्रकृति से आती है। यही हाल आदमी का है। कल मैंने उस यात्री से पूछा—नारी जादू बनकर हमारी आत्मा में क्यों उतरने लगती है?"

"तो उसने क्या उत्तर दिया?" रूपक चुप न रह सका, "कभी-कभी हम खुद भी नहीं जानते कि जिसके हम सचमुच इच्छुक हैं, वह क्या है।"

"वह यात्री कह रहा था, पलटूदास मिल जाएँ, तो मैं उनसे पूछूँ—महाराज, क्या भगवान् बुद्ध ने यही सोचकर कहा था—'आनन्द ! मैंने जो धर्म चलाया था, वह पाँच सहस्र वर्ष तक चलने वाला था, किन्तु अब वह केवल पाँच सौ वर्ष चलेगा, क्योंकि मैंने नारी को भिक्षुणी बनने का अधिकार दे दिया है।' वह यात्री अवाक्-सा मेरी ओर देखता रह गया।"

"तो आपने उस पर रोब डाल लिया?" रूपक हँस पड़ा, "वाह, काका!"

नीलकण्ठ बैठा पत्थर कोरता रहा। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह पत्थर को जी-जान से चाहता है। जैसे गढ़ी जा रही नारी-मूर्ति के ओंठ उसके चुम्बन के लिए फरफरा रहे हों, और इसके उत्तर में वह कहना चाहता हो—मेरी तो जान भी हाज़िर है। चुम्बन न हुआ, जादू हुआ! जिसके ओंठ हैं, उसे चुम्बन कैसे नहीं मिलेगा? नीलकण्ठ ने मानो मूर्ति से बातें करते हुए कहा, 'क्यों सुन्दरी, तुम अपने रूप से बेसुध तो नहीं हो न! मैं वचन देता हूँ, तुम्हारे मन को ठेस नहीं पहुँचाऊँगा।'

जागरी हँसकर बोला, "तो क्या इस मूर्ति को ही अलबीरा समझ

बैठे ?"

रूपक ने मूर्ति गढ़ते हुए कहा, "गुरुदेव कहा करते थे, जब भाव जाग उठे, तो छोड़ दो। थोड़ा-सा काम रह गया। पत्थर में भाव उसी तरह जागता है, जैसे फूल खिलता है।"

दोपहर कभी का ढल चुका था। फिर भी बाहर धूप का ज़ोर कम नहीं हुआ था। लगता था, समय की गति धीमी पड़ गई है। नीलकण्ठ और रूपक बार-बार पसीना पोंछने लगते। जागरी को उतना पसीना नहीं आता था। "बतियाने में कौनसा ज़ोर लगता है, जो मुझे पसीना आएगा ?" जागरी हँस पड़ा।

नीलकण्ठ ने प्रसंग बदलकर कहा, "कोइली जब यहाँ थी, तो यहाँ लट्टू की तरह घूमती थी—कभी घर में, कभी मूर्तिशाला में। अब महा-नदी के किनारे बैठकर कविता लिखती होगी।"

"सुना है, अन्नदा बाबू ने उसकी कविताओं के अंग्रेज़ी अनुवाद किये हैं।" जागरी चुप न रहा।

"मैंने भी सुना है। पर अन्नदा बाबू के अनुवाद मेरी नज़र से नहीं गुज़रे।"

"सुना है, अन्नदा बाबू ने वे अनुवाद लन्दन भिजवाए हैं, और एक प्रकाशक को लिखा है कि शानदार पुस्तक छपनी चाहिए।"

"अब यह अन्नदा बाबू का काम है।"

"कोइली ने तुम्हें नहीं लिखा ?"

"उसने ज़रूरत नहीं समझी होगी।"

"सुना है, अन्नदा बाबू ने कोइली की वे चौदह कविताएँ खासतौर से अनुवाद के लिए चुनी हैं, जिनमें उसने हाथीदाँत वाले पीढ़े पर बैठने की लालसा दरसाई है।"

"तुम तो मुझसे ज्यादा जानते हो, जागरी !"

"तो तुम बुरा मान गए ?"

"मैं क्यों बुरा मानने लगा ?"

"कवयित्री के रूप में कोइली का सितारा दूर-दूर तक चमकेगा।" जागरी कहता चला गया, "पहली बात तो यह है कि कोइली की कविता की भाषा उसके रक्त में बहती है। दूसरे, वह मन की राजधानी में बैठकर लिखती है। इतने धक्के खाकर भी जीवित रह गया हमारा देश ! कितनी भारी क्रान्ति आज मनुष्य के भीतर हो रही है ! हम तो बाहर-ही-बाहर देखते हैं..."

"तुमने कोइली की वह कविता भी तो पढ़ी होगी," नीलकण्ठ ने जागरी की बात काटकर कहा, "जिसमें उसने शिकायत की है, हाय हमारे भीतर एक बौना आदमी छिपा बैठा है, जो आज भी हमारे मन को राहु की तरह ग्रसे हुए है।"

बाहर से डाकिए ने पुकारा, "चिट्ठी ले लो।"

नीलकण्ठ ने उठकर लिफाफा ले लिया। लिफाफा देखकर ही वह समझ गया कि अलबीरा का पत्र है।

नीलकण्ठ ने यह पत्र तीन बार पढ़ा। मूर्तिशाला से निकलकर वह त्रिमूर्ति के सामने जाकर खड़ा हो गया। त्रिमूर्ति में बाबा की मूर्ति को प्रणाम करके उसने कहा, "बाबा, विष पीछे पीना। पहले अलवीरा का पत्र सुन लो।"

बाबा क्या बोलते ? वह तो पत्थर के देवता थे।

अलवीरा ने लिखा था :

"प्रिय नील,

"इतने दिनों बाद यह पत्र लिख रही हूँ। तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि शेक्सपियर पर मेरा थीसिस लन्दन यूनिवर्सिटी में स्वीकृत हो चुका है और मुझे इसी सप्ताह डी० लिट्० मिल जाएगी। इस थीसिस की तैयारी में युद्ध के कारण वे सुविधाएँ तो न मिल सकीं, जो शान्ति के युग में सम्भव होतीं, फिर भी मैं अपने काम में लगी रही और वह सम्पूर्ण हो गया।

"लन्दन अब फिर से मुस्कराने लगा है। इंगलिश चैनल में पहले के समान ही जहाज़ आने-जाने लगे हैं। छोटे-बड़े जहाज़ों, समुद्री वायुयानों और मोटर-किश्तियों का दृश्य फिर से देखने वालों को प्रसन्न करने लगा

है। लन्दन से साउथम्पटन जाते हुए पहाड़ी खेतों की हरियाली और विशाल वृक्षों की धीर-गम्भीर मुद्रा एकान्तवास का आमन्त्रण देती है। पर युद्ध के दिनों की याद से ही तन-मन काँप उठता है।

"जब तुम्हारी याद आती है, मैं अपनी आँखों में तुम्हारा चित्र बनाती हूँ, पर मैं वह चित्र कागज़ पर नहीं उतार पाती। तुम्हारी याद घण्टी की तरह बज उठती है।

"नील, मैं एक बात पूछती हूँ। तुम सारे दिन बिना थके छेनी चलाते रहते हो, तुम्हें किसकी तलाश है ? वह कौनसी मूर्ति है, जिसे तुम साकार देखना चाहते हो ? मैं तो उस दिन की राह देख रही हूँ, जब तुम्हारे हाथों में मेरा सपना जाग उठेगा।

"मैं आधी रात के समय मेज़ पर कागज़ लेकर बैठी, तुम्हें यह पत्र लिख रही हूँ। लगता है, तुम छेनी से पत्थर गढ़ रहे हो। गरदन उठाकर तुम मुझे ही देख रहे हो।

"हमने बचपन में रेत के घर बनाए, दया नदी के किनारे। रेत के वे घर बार-बार याद आते हैं। पर अब हम बच्चे नहीं। वे बचपन के दिन तो बहुत पीछे छूट गए। पुरानी कथा की नयी टीका है आज की कथा। हम नये पात्र हैं, काँच के समान पारदर्शी।

"कौनसी छेनी है, जिसके जादू से गूंगे पत्थर बोलने लगते हैं ?

"त्रिमूर्ति पूर्ण होने की बधाइयाँ ! तुमने तो न लिखा, पर उसका फोटो लन्दन पहुँच गया। उसमें महात्मा गांधी को चन्दा माँगने के लिए हाथ फैलाए विष्णु के रूप में बाबा ने अपनी छेनी से तराशा, और स्वयं बाबा को शंख में विष-पान करते हुए महादेव के रूप में तुमने दरसाया, यह बात लन्दन के कला-आलोचकों को बहुत पसन्द आई। बाबा के पिता मूर्तिकार उपेन को बाबा के मामा मूर्तिकार केलू ने ब्रह्मा के रूप में तराशा था। 'सम्पादक के नाम पत्र' वाले कालम में मैंने मानचेस्टर गार्डियन में इस त्रिमूर्ति को क्रान्तिकारी कलाकृति बताते हुए लिखा था—धौली की त्रिमूर्ति एलिफेण्टा की त्रिमूर्ति से सौ मील आगे है।

"जिस प्रकार होमर के काव्य में तीन हज़ार वर्ष पहले की यूनानी संस्कृति का चलचित्र हमारे सम्मुख आ जाता है, वैसे ही तुम्हारी मूर्तिकला में हमें उस युग का हिन्दुस्तान नज़र आना चाहिए। इतिहास यह नहीं बताता कि होमर का जन्म कहाँ और कब हुआ। पर उसके मरने के बाद यूनान के सात नगरों ने होमर का जन्म-स्थान होने का दावा किया—वे नगर, जहाँ जीते-जी होमर भीख माँगकर पेट पालता था। लगता है, आज भी होमर रास्ते के किनारे गा रहा है। तारों की छाया में श्रोतागण कवि-वाणी के साथ-साथ दिल की धड़कनों का ताल दे रहे हैं। हर किसी के हाथ में मदिरा का प्याला बिन-पिए ही छलकता रहा। सुराहियाँ पड़ी रहीं। किसी को पास बैठी प्रेयसी से बात करने का भी समय न मिला।···

"एक बात पूछूँ। क्या तुम पत्थर छील-छीलकर ही जीवन बिता दोगे? मैं देख रही हूँ, तुम्हारा मन भी बदल रहा है। कोई छेनी कहीं से आकर तुम्हारे मन पर भी चल रही है।

"काश तुम मुझे इस वेष में देख सकते! मैंने आज साड़ी पहन रखी है। मुझे साड़ी पराई नहीं लगती। दस साल पहले मेरे सोलहवें जन्म-दिवस पर तुमने उड़ीसा की यह रेशमी साड़ी मुझे भेंट की थी। उस साल हम लन्दन में पहुँचे ही थे। पाँच साल यहाँ रहकर तुम लौट गए। तुम्हारे पीछे मैंने दूसरे महायुद्ध का सारा समय यहाँ गुज़ारा। आज मेरा छब्बीसवाँ जन्म-दिन है। जीवन के पच्चीस साल पूरे हो गए।

"महायुद्ध के दिनों की ऐसी कहानियाँ हैं मेरे पास कि तुम सुनते-सुनते ऊब नहीं सकते। काश तुमने महायुद्ध के भयानक दिन यहाँ मेरे साथ गुज़ारे होते! कभी-कभी मैं सोचती हूँ, पहले महायुद्ध के दिनों में मेरा जन्म हुआ और दो महायुद्धों के बीच मुझे अपना जीवन पत्थर के नीचे दबे हुए पौधे के समान लगता है, जिसे सूरज की किरणें हज़ार कोशिश करने पर भी छू न सकती हों। तुम्हारे पास भी तो महायुद्ध के दिनों की कहानियाँ होंगी, जिनके ताल के साथ बँधकर चला होगा तुम्हारा जीवन। या क्या तुम सिर्फ इसी बात को लेकर हँसोगे कि महायुद्ध ने

हिन्दुस्तान को छेद वाले छोटे पैसे के दर्शन कराए और किसी दूसरे सिक्के में छेद नहीं कर पाया ?

"यहाँ की हालत क्या बताऊँ ? ऊपर से देखने से लगता है, कहीं कोई गड़बड़ नहीं है, पर भीतर बहुत-कुछ खोखला हो चुका है। महायुद्ध से जो नुकसान हुआ, उसकी क्षति-पूर्ति में बहुत दिन लगेंगे। इन्सान अपने को खूब धोखा दे सकता है। लोग बात-बात पर आज भी 'लवली', 'स्वीट', 'नाइस', 'एक्सलेण्ट' और' वण्डरफुल' कह उठते हैं। लगता है हर शब्द अपना मतलब खो बैठा है। हर शब्द भीतर के दुःख को और भी कुरेदने लगता है।

"हिन्दुस्तान को राजाओं, महावतों और सपेरों का देश कहने वालों की यहाँ आज भी कमी नहीं। इन्सान इतिहास से कुछ भी नहीं सीखना चाहता। क्या यह बात आज के इन्सान को शोभा देती है कि कुछ जहाज़ी कम्पनियाँ अपने जहाज़ों में एशिया के यात्रियों को जगह नहीं देतीं, भले ही केबिन के अनेक स्थान खाली रह जाएँ ? इन्सान का यह भेद-भाव कब तक चलेगा ?

"मैं तो उस दिन की राह देख रही हूँ, जब जहाज़ में बैठकर कलकत्ते के लिए चल पड़ूँगी। कलकत्ता में मेरा जन्म हुआ। उसके साथ बचपन की यादें जुड़ी हुई हैं। चौरंगी देखे इतने दिन हो गए। कलकत्ते की न्यू मार्केट देखने को भी दिल उछल-उछल पड़ता है। ट्राम में बैठे बंगाली लोग किस तरह न्यू मार्केट जाकर 'हिल्शा' मछली खरीदने की बात करते हुए चटखारा लेते हैं! यह बात भुलाए नहीं भूलती। आज इतने दिनों बाद एक बूढ़े बंगाली का चेहरा आँखों में घूम गया, जिसने ट्राम-कण्डक्टर को क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर वाला घिसा हुआ पैसा वापस करते हुए कहा था—'यह नहीं चलेगा।' कण्डक्टर ने हँसकर कहा—'अरे कभी पैसा भी चलने से रहा है, मोशाय ?' कण्डक्टर के लाख समझाने पर भी वह बंगाली सज्जन यही कहते रहे—'क्वीन वाला पैसा नहीं चलेगा। किंग जार्ज वाला चलने सकता है। हम तो सुनता है, किंग जार्ज

वाला भी बन्द हो गया। अरे, हम तो नया वाला किंग का तस्वीर पर ही विश्वास करने सकता!'...काश तुमने उस चश्माधारी बूढ़े बंगाली की मूर्ति बनाई होती! उसकी आवाज़ में बदलते हुए इतिहास का स्वर था। आज भी टाइम-पीस के अलार्म की तरह बज रही है वह आवाज़।

"तुम तो मेरी आवाज़ सुन ही नहीं रहे, नील! तुम तो बस छेनी चलाए जा रहे हो। यह किसकी मूर्ति तराश रहे हो? लन्दन की नयी तराश सीखकर उड़ीसा की पुरानी तराश तो भला कैसे पसन्द आएगी? पर त्रिमूर्ति में बाबा की मूर्ति तराशते समय तुमने पहले की दोनों मूर्तियों का ध्यान रखा, यह अच्छा किया। उसमें लन्दन वाली तराश रखी होती तो पहले की दोनों मूर्तियों के साथ उसका मेल कैसे बैठता? फिर भी वह पुरानी उड़िया तराश की ही नक़ल नहीं है, उसमें नई तराश ने भी स्थान पाया है। पत्थर भी कोई एक ही तरह का नहीं होता। पत्थर का स्वभाव समझकर ही छेनी चलानी होती हैं।

"कभी कलकत्ते भी जाना होता है या नहीं? डैडी से तो मिलते ही होगे?

"मैं चौदह जुलाई को कलकत्ते पहुँच रही हूँ। पहली अगस्त से मैं राविन्शा कॉलिज, कटक में अँग्रेज़ी विभाग की मुख्य अध्यापिका का पद सँभाल रही हूँ। महानदी के किनारे रहना होगा। महानदी मुझे अच्छी लगती है। पर यह बात तो तुम्हारे कान में कहने की है, नील! महानदी में बाढ़ भी आती है। शब्द की नदी में भी बाढ़ ले आता है कविता का जादू। यही जादू पत्थर को मूर्ति में ढाल देता है।

तुम्हारी अपनी

अलवीरा"

यह पत्र नीलकण्ठ ने एक बार फिर पढ़ा और बाबा की मूर्ति के सामने हाथ फैलाकर कहा, "बाबा, अलवीरा का पत्र सुनोगे?" पर बाबा क्या बोलते? वह तो पत्थर के बाबा थे।

सोना ने यह पत्र सुना होता तो गाँव में ढोल बजवा देती। पर वह गुरुचरण की रासलीला-मण्डली के साथ बाहर गयी हुई थी। जागरी ने दो-चार जगह अलबीरा के पत्र की चर्चा अवश्य की। किसी ने ध्यान न दिया।

न तो अलबीरा की इस ख़बर में किसी को रस आया कि वह चौदह जुलाई को कलकत्ते पहुँच रही है, न किसी को यह बात झकझोर सकी कि वह कटक के राविन्शा कॉलिज में पहली अगस्त से नौकरी करेगी। वैद्यजी की दुकान पर जागरी ने अपनी यात्रा की बात चलाकर कहा, "मैं सिलीगुड़ी से पूर्णिया गया। सफ़र अच्छा कटा। कटिहार होकर स्टीमर से गंगा पार करने की याद तो कभी भूलने की नहीं।"

"उस यात्रा में भी हमारा अन्तराल कहीं न मिला ?" वैद्यजी ने रुँधे कण्ठ से कहा, "तुम उसका पता लगा लो, तो पूरे पाँच सौ गिनकर तुम्हारे हाथ पर रख दूँ।"

"पाँच सौ का इनाम तो कम नहीं, वैद्यजी ! पर अन्तराल को कहाँ ढूंढा जाए ? अपूर्व का भी तो पता नहीं चला। दोनों गाँव से ऐसे गायब हुए जैसे…"

वैद्यजी बोले, "दोनों लौटकर आएँगे एक दिन।"

इतने में मायाधर और गगन महान्ती आ गए। "आओ, महाराज ! धन्य भाग हमारे जो आप पधारे !" वैद्यजी ने दोनों महानुभावों को फटी हुई दरी पर बिठाते हुए कहा।

"अख़बार की क्या ख़बर है ?" मायाधर मुस्कराए, "हम और कुछ नहीं पूछते। देश का क्या बनेगा ?"

"देश का और क्या बनना है ?" गगन महान्ती बोल उठे, "जब तक हिन्दू-मुसलमान एक नहीं होंगे, देश का यही हाल रहेगा। ये एक होंगे नहीं और अँग्रेज़ को बागडोर अपने हाथ में रखनी पड़ेगी।"

मायाधर ने गम्भीर स्वर में कहा, "युद्ध के दिनों में बंगाल को अकाल और महामारी की मार सहनी पड़ी। उस हाहाकार की आवाज़ तो धौली तक आ पहुँची थी।"

"वे दिन याद न कराओ, दादा !" वैद्यजी ने दवा की पुड़िया बाँधते हुए कहा, "अख़बार में बस ऐसी-ऐसी ख़बरें भरी रहती थीं कि चटगाँव, गोहाटी और कोहिमा में युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं। कभी डिगबोई, दीमापुर, फेनी, मेदिनीपुर और प्याराडोबा की छावनियों की ख़बरें उछलकर ऊपर आतीं, तो कभी पानागढ़, वासुदेवपुर, उखरा और खड़गपुर की छावनियों की ख़बरें ही पढ़ने को मिलतीं। आज इतने अमरीकी और आ गए अँग्रेज़ों की मदद के लिए। बाप रे ! अब तो बहुत-से फौजी अड्डे अपने-आप उठ गए। ज़्यादातर असर तो बंगाल पर ही हुआ था, जापान के डर से ! अब वह हालत नहीं रही। फौजी काफ़िले अब उन सड़कों पर नज़र नहीं आते होंगे। उन दिनों तो हमारी पुरी वाली सड़क पर भी जीप, टैंक, वेपन केरियर और न जाने कैसी-कैसी विचित्र-सी मोटर-गाड़ियों वाला काफ़िला नज़र आ जाता था। धरती का यह हाल था, तो आकाश पर भी अँग्रेज़ और अमरीकी जहाज़ मँडराते रहते थे। अख़बार में यही लिखा रहता था कि वे सब-के-सब लड़ाकू हवाई-जहाज़ हैं। अब तो उनकी याद रह गई। शान्ति ही अच्छी है। भगवान् करे,

फिर कभी युद्ध न हो।

जागरी हँसकर बोला, "पर आप तो अन्तराल को याद कर रहे थे, वैद्यजी !"

"अन्तराल को कैसे भूल जाएँगे ?" गगन महान्ती ने कहा, "कौन जाने, वह किस हाल में होगा। गुस्से में आकर वैद्यजी ने उसे इतना मारा कि वह घर से निकल भागा और आज तक हाथ नहीं आया।"

"अपूर्व को तो किसी ने नहीं मारा था," वैद्यजी चुप न रह सके, "वह क्यों घर से भाग गया ? अब अन्तराल को कहाँ ढूँढें ? लौट आएगा एक-न-एक दिन।"

गगन महान्ती हँसकर बोले, "तुम अपूर्व को ढूँढो। अन्तराल अपने-आप घर आ जाएगा।"

"भगवान् की कृपा होगी तो अन्तराल और अपूर्व दोनों लौट आएँगे।" मायाधर ने विश्वासपूर्वक कहा, "दोनों में से एक के पास भी फूटी कौड़ी नहीं थी, जब घर से भागे। जाने किस-किस मुसीबत से गुज़रे होंगे ? वे जहाँ भी हैं, भगवान् उन्हें प्रसन्न रखे।"

जागरी हँसकर बोला, "वे सोचते होंगे, इतना क्या बदल गया होगा धौली ? कलकत्ते जाकर रिक्शा तो खींचने से रहे। पढ़ाई-लिखाई कुछ तो काम आई होगी।"

"तुम भी तो भाग गए थे, जागरी !" वैद्यजी ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा, "तुम तो कई बार भागे, कई बार लौटे। धौली के लिए बड़ी लज्जा की बात है कि अन्तराल और अपूर्व लौटकर नहीं आए।"

मायाधर प्रसंग बदलकर बोले, "अंग्रेज़ हमें पहले के समान ही गुलाम बनाए रखेगा या अपनी नीति बदलेगा ? युद्ध में भले ही वह जीत गया, पर भीतर से कमज़ोर हो गया। हमारी गरदन पर उसका पंजा नहीं रह सकता।"

गगन महान्ती ने कहा, "अंग्रेज़ कहीं नहीं जाएगा, और न उसे जाना चाहिए। सच्चे और ईमानदार लोगों की अपने यहाँ इतनी कमी है। हम

स्वराज्य के योग्य नहीं बन सकें। अंग्रेज़ तो चाहता है कि एक दिन हमें स्वराज्य दे डाले।"

"वाह श्रीमान् गगन महान्तीजी महाराज!" मायाधर ने व्यंग्य-पूर्वक कहा, "आपको गुलाम रहना ही पसन्द है। अंग्रेज़ के कैसे-कैसे पिट्ठू पड़े हैं इस देश में!"

वैद्यजी बोले, "इसे छोड़िए। मैं कह रहा था, अन्तराल और अपूर्व कहीं भी रहें, हमें अपनी ख़बर भेज दिया करें। उनसे तो अलवीरा ही अच्छी है, जिसने नीलकण्ठ को ख़बर भेज दी कि वह चौदह जुलाई को कलकत्ते पहुँच रही है और पहली अगस्त से कटक के राविन्शा कालिज में अंग्रेज़ी पढ़ाया करेगी।"

गगन महान्ती ने कहा, "फिर तो वह यहाँ भी आया करेगी। त्रिमूर्ति देखने तो ज़रूर आएगी।"

मायाधर बोले, "हम उसे बताएँगे कि अन्न के अभाव में कैसे हाहाकार मचा रहा, कैसे भिखारियों को भीख मिलनी कठिन हो गई थी!"

"हम यह भी बताएँगे कि फौजी लोग मोटरें इतनी तेज़ चलाते थे कि कभी गाड़ी उलट जाती और कभी किनारे के पेड़ से जा टकराती। गट-गट मदिरा के गिलास चढ़ाकर मोटर चलाने पर जाने कितनी बार उनका यह हाल हुआ।" कहते-कहते जागरी हँस पड़ा।

"ये व्यर्थ की बातें छोड़ो!" गगन महान्ती कहते चले गए, "हममें यह जो देश-प्रेम की भावना आयी, अंग्रेज़ों से ही आयी। जिसे गुलामी कहते हैं, उसमें भी हमने बहुत-कुछ सीखा है। इससे कौन इन्कार कर सकता है? हमारे महात्मा गांधी भी तो अंग्रेज़ की ही देन हैं।"

"और आप भी?" वैद्यजी चुप न रह सके, "इसे छोड़िए। आज के अख़बार में एक लेख आया है। उसमें फ्रांसीसी कवि रेनर मादिया किलके का एक अछूता विचार उद्धृत किया गया है। सुनेंगे?"

"ज़रूर सुनेंगे।" मायाधर ने थाप लगायी।

वैद्यजी अखबार खोलकर बोले, "सुनिए। कवि लिखता है—

'अचानक हमें पता चलता है, अपना रोल हम स्वयं ही नहीं जानते। तो हम आईने की तलाश करते हैं। हम अपने चेहरे का मेक-अप उतार देना चाहते हैं, और जो झूठ है उसे हटाकर अपने असली रूप में आना चाहते हैं। पर कहीं-न-कहीं बनावट का कोई-न-कोई अंश चिपका रह जाता है, जिसे हम उतारना भूल जाते हैं।'—कहिए, कैसा अछूता विचार है! कवि ने आगे लिखा है—'अतिशयोक्ति और दिखावट का हल्का-सा भाव हमारी भवों में रह ही जाता है। हमें पता ही नहीं लगता कि हमारे मुँह के कोने सिकुड़े ही रह गए हैं। और इसी रूप में हम चलते-फिरते हैं, जो उपहासास्पद ही नहीं, हमारा आधा ही रूप होता है। न हम अपने असली अस्तित्व को प्राप्त कर सकते हैं और न ही अभिनेता बन पाते हैं।' देखिए, कवि और लेखक तो यहाँ भी हैं, पर ऐसे विचार नहीं मिलते।"

जागरी बोला, "देखिए, वैद्यजी! गुरुचरण लौटकर आए तो उसे भी सुनाइए। मैं अपनी सोना को भी सुनवाना चाहूँगा।"

"ज़रूर सुनाएँगे।" वैद्यजी मुस्कराए, "और तुम भी फ़रहाद के समान पहाड़ खोदो। भुवनेश्वर में तुम इतने यात्रियों के सम्पर्क में आते हो। अन्तराल और अपूर्व के बारे में पूछते रहा करो।"

"गुरुचरण को तो लौटने दो!" जागरी ने कहा, "शायद वह उनकी तो कोई खबर लाए।"

इतने में गली से किसी की आवाज आई :

धिन्ना धिन्ना।
धिन्ना कत्तक तिन्ना तिरकिट ता।
धिनक-धिनक-धिन-धा।
धिन-धा।

मूर्तिशाला से लौटता हुआ रूपक मृदंग का बोल याद करता जा रहा था। वैद्यजी धीर-गम्भीर स्वर में बोले, "काका के चरणों पर पाँच पैसे और एक नारियल रखकर रूपक ने उन्हें गुरुदेव बनाया था। अब तो इसका हाथ अच्छा चल निकला है।"
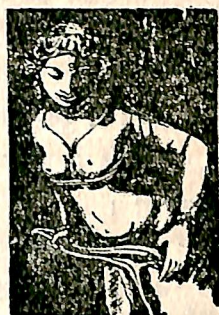
चौदह जुलाई को अलवीरा कलकत्ते पहुँची। नीलकण्ठ और जागरी ने जहाज़ पर पहुँचकर उसका स्वागत किया। सोलह जुलाई को वे उसे लेकर भुवनेश्वर पहुँचे तो मूसलाधार वर्षा हो रही थी। वर्षा में ही वे धौली आये।

कोइली की दादी ने बहुत कहा, "आज यहीं रह जाओ, अलवीरा !"

अलवीरा बोली, "मैं फिर आऊँगी तो ठहरूँगी, दादी !"

वैद्यजी ने अलवीरा से पूछा, "कहीं हमारा अन्तराल तो नहीं देखा ?"

"अपूर्व के बारे में क्यों नहीं पूछते, वैद्यजी ?" नीलकण्ठ ने हँसकर कहा, "वह भी तो गाँव से भागा हुआ है, अकेला अन्तराल ही तो नहीं।"

"वे ज़रूर लौट आएँगे।" अलवीरा ने मुस्कराकर कहा।

वे कब भागे, क्यों भागे, यह कथा नीलकण्ठ ने विस्तार से सुना डाली। वे वैद्यजी की दुकान में बैठे थे। वर्षा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। बिजली बार-बार कड़क उठती थी। और भी कई कथाएँ अलवीरा को सुनने को मिलीं। कौन रूठा, कौन मना, किस-किसकी जोड़ी बनी ? सोना कैसे पहली बार रासलीला में राधा बनकर उतरी ? धौली में धान और ईख की खेती का हाल ?

"और सब कुशल हैं ?" अलवीरा ने पूछा।

रूपक जाने क्या सोचकर बोला, "हमें तो गुरुदेव की याद बहुत सताती है।"

"वह तो युग-पुरुष थे !" अलवीरा ने रुँधे हुए स्वर में कहा।

त्रिमूर्ति पर पानी बरस रहा था, जैसे हर बूँद टकराकर पीछे हट जाती हो।

अलवीरा बाब-बार कलाई की घड़ी में समय देखने लगती।

कटे घुँघराले बाल झटककर साड़ी का पल्लू ठीक करते हुए अलवीरा मुस्करायी, "वर्षा ने राह रोकने की कसम खा ली है, पर मुझे तो आज ही जाना है।"

काली किनारी वाली सफ़ेद साड़ी के साथ अलवीरा ने काला ब्लाउज़ पहन रखा था। लगता था लन्दन में दस-ग्यारह बरस के आवास में वह ज़रा भी नहीं बदली।

गहरी साँस लेकर वह बोली, "अच्छा तो अब चलें।"

"अभी रुको।" वैद्यजी मुस्कराए, "इतनी वर्षा में हम नहीं जाने देंगे।"

"शाम की गाड़ी तो मुझे हर हालत में लेनी है। मैं फिर आऊँगी।"

"अभी बहुत समय है, अलवीरा !" नीलकण्ठ चुप न रह सका, "तुम्हें शाम की गाड़ी चाहिए या कुछ और ?"

"तुम और क्या दोगे ?" जागरी ने चुटकी ली।

अलवीरा ने गरदन ऊँची करके त्रिमूर्ति पर नज़र डाली और उसने कहा, "त्रिमूर्ति ने धौली की शान बढ़ा दी, नील ! विषपान का भाव बाबा के मुख पर देखते ही बनता है ! नीलकण्ठ, इससे अच्छा काम तुम्हारी छेनी नहीं कर सकती थी।" वह गहरी साँस लेकर बोली, "ऐसे ही थे हमारे बाबा ! गुस्सा तो उन्हें छू भी नहीं गया था।"

"तुम्हारा मतलब है, वे विष-पान न करते तो अब तक जीवित रहते ?" जागरी ने पूछ लिया।

"अब तो वे और भी जीवित हैं," अलवीरा ने रुँधी हुई आवाज़ में कहा, "जब तक त्रिमूर्ति रहेगी, बाबा जीवित रहेंगे।"

वैद्यजी ने कहा, "काका देश को स्वतन्त्र देखने का सपना लिये हुए चले गए। वह सपना जाने कब पूरा हो!"

"वह तो पूरा होकर रहेगा।" अलवीरा मुस्करायी।

वैद्यजी की आँखें चमक उठीं।

"देखिए, इतिहास के पहिये अब और भी तेज़ घूमेंगे!" अलवीरा ने विश्वासपूर्वक कहा, "बाबा का सपना अवश्य पूरा होगा।"

त्रिमूर्ति में महात्मा गांधी के मुख पर भी जैसे अलवीरा के इस बोल की प्रतिक्रिया हुई। चन्दा माँगते हुए उनका हाथ आगे को बढ़ा हुआ था, जैसे वे कह रहे हों—चन्दा दोगे तो स्वराज्य ज़रूर मिलेगा।

"ब्रह्मा के रूप में उपेन के मुख पर कितनी तन्मयता है!" वैद्यजी ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा, "ब्रह्मा का यह मूर्तिकार वाला रूप हमारे धौली के केलू काका की कला है। आदमी चला जाता है, उसकी कला रह जाती है। कला की आयु आदमी की आयु से बहुत ज़्यादा होती है।"

वर्षा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। बिजली कड़कती तो लगता, यहीं कहीं गिरेगी।

"कलकत्ता कहीं भागा जाता है?" वैद्यजी बोले, "तुम आज यहीं रहो, अलवीरा!"

"यह कैसे हो सकता है?" अलवीरा ने नीलकण्ठ की ओर गरदन घुमाई।

"रुकना ही होगा, अगर वर्षा न रुकी।" नीलकण्ठ ने कहा, "इस वर्षा में तो बैलगाड़ी वाला भी हमें स्टेशन नहीं ले जाएगा।"

बाबा जैसे इन सब बातों की अनसुनी करते हुए विष-पान कर रहे थे। उन्होंने तो सचमुच विष-पान किया था।

अलवीरा को भूलकर भी ख़याल न आया कि कटे हुए घुंघराले बालों के साथ उसकी साड़ी इन लोगों को कैसी लग रही है। कलाई की घड़ी में

समय देखकर बोली, "अच्छा तो अब चलें, नील !"

नीलकण्ठ बोला, "इस वर्षा में बैलगाड़ी वाला हमें कैसे ले जाएगा ?"

"अच्छा तो मैं चलती हूँ, नील !"

"कैसे ?"

"पैदल ही।"

"वर्षा में भीगते हुए ? गिर गईं तो हड्डी-पसली की खैर नहीं।"

"मैं जाऊँगी।"

"हम तुम्हें यह मूर्खता नहीं करने देंगे।" नील ने बलपूर्वक कहा, "आराम से तो सब हो जाएगा।"

"नील, मैं क्या जानती थी कि धौली में इतनी मुसीबत होगी !" उसने नील की तरफ देखकर घुंघराले बालों को झटका दिया।

इतने में एक बैलगाड़ी आती दिखायी दी। मूसलाधार वर्षा की परवाह न करते हुए बैलगाड़ी इधर ही आ रही थी।

नीलकण्ठ बोला, "गाड़ी वाला मान गया तो इसी में हम स्टेशन चलेंगे।"

"अभी रुको।" वैद्यजी मुस्कराए।

बैलगाड़ी आकर वैद्यजी की दुकान के सामने रुकी।

अंग्रेज़ी सूट पहने एक नौजवान नीचे उतरा, और आकर दुकान में बैंच पर आकर बैठ गया।

नीलकण्ठ ने गाड़ी वाले से वापसी चलने का मामला तय कर लिया और वह अलवीरा को लेकर गाड़ी में जा बैठा।

गाड़ी स्टेशन के लिए चल पड़ी। जागरी ने अपरिचित युवक से पूछा, "क्या अश्वत्थामा चट्टान पर अशोक का शिलालेख देखोगे ?"

"देखेंगे, जो भी दिखा सको।"

वैद्यजी ने आवाज़ पहचानकर कहा, "अरे तुम अन्तराल तो नहीं ?"

"हाँ, पिताजी !" कहते हुए अन्तराल वैद्यजी के चरणों से लिपट गया।

अन्तराल का घर से भाग जाना अच्छा था या बुरा, इस विषय पर वैद्यजी तर्क न कर सके। नागमती भी बेटे को पाकर धन्य हो गई। उसने हंसकर बेटे को डाँटा, "तुम घर से क्यों भाग गए थे ?" उत्तर में अन्तराल हँसता रहा। बड़ी लापरवाही से माँ की बात सुनता रहा।

वैद्यजी का गुस्सा-गिला क्रमशः दूर होता हुआ खो गया। अन्तराल को घर की राह याद आ गई और वह मिलने चला आया, यही क्या कम था ? खुशी से उनकी आँखें चमकने लगीं। बोले, "मुझे पूरी आशा थी, तुम लौट आओगे।"

"इतने दिन कहाँ रहा, अन्तराल ?" गाँव में हर कोई यही प्रश्न करता था।

त्रिमूर्ति पूर्ण हो गई ! जैसे गाँव की सबसे बड़ी ख़बर यही हो। पास से गुज़रते लड़के हो-हो करके हँसने लगते, जैसे त्रिमूर्ति का मज़ाक उड़ा रहे हों। सहसा आगे बढ़कर अन्तराल लड़कों को हँसने से मना करता। कोई लड़का पत्थर का छोटा-सा टुकड़ा उठाकर त्रिमूर्ति पर फेंकता, जैसे निशाना साधने के लिए त्रिमूर्ति ही रह गई हो। अन्तराल उन्हें मना करता। "त्रिमूर्ति पर किसी ने पत्थर फेंका, तो उसे पुलिस में दे दिया जाएगा !"

वैद्यजी बोले, "किस-किससे उलझोगे, बेटा ! जब तुम छोटे थे, तुम भी यही सब किया करते थे। तब त्रिमूर्ति अपूर्ण थी। बच्चे शैतानी नहीं करेंगे, तो और कौन करेगा ? पहले तो बच्चों के थप्पड़ भी लगा देते थे। अब तो कोई किसी को कुछ नहीं कह सकता। हवा बदल गई।"

नीलकण्ठ और जागरी का विचार था, अन्तराल खूब मौके से आया, जैसे कोई गड़ा खज़ाना हाथ लग गया हो। अन्तराल बार-बार चौंक उठता। कभी सोना के रासलीला में उतरने की बात उसे चकित कर देती, कभी वह यह सोचकर झूम उठता कि अलवीरा और नीलकण्ठ में हृदय का सम्बन्ध हो गया है।

ज़ाग़री कहता, "हमारी तरह कितने आये, कितने गये।"

अन्तराल प्रसंग बदलकर उत्तर देता, "जब भी मैं धौली का नाम सुनता था, मेरे कान खड़े हो जाते थे।"

नीलकण्ठ पूछता, "पर तुम रहे कहाँ इतने दिन ? कुछ भेद क्यों नहीं देते ?"

अन्तराल अपनी बात छोड़कर अपूर्व की बात ले बैठता।

अपूर्व कहाँ है, इसकी कोई खोज-खबर न थी। उसका नाम आते ही मानो स्वप्न-संगीत बीच से टूट जाता।

"कौन जाने, अपूर्व भी कब तुम्हारी तरह आ धमके !" जागरी हँसकर अन्तराल का कन्धा झंझोड़ता, "एक समय होता है, जब आदमी घर से भागता है और फिर मन-ही-मन गाँव का बुलावा पाकर लौट आता है।"

अन्तराल ने बताया, "घर से भागकर मैं कलकत्ते पहुँचा। कलकत्ते से पटने का रास्ता लिया। पढ़ाई-लिखाई में मन लगाया। बड़ा बनने का शौक कभी ठण्डा न पड़ा। पढ़ते-पढ़ते ग्रेजुएट हो गया। पढ़ने के साथ-साथ जान मारकर काम किया। तीन-तीन, चार-चार ट्यूशनें कीं। खैरात नहीं माँगी। पटना में उड़ीसा के एक राजा साहब से भेंट हो गई। उन्होंने मेरी कथा सुनी और मुझे अपने राज्य में ले आए। राजा की नौकरी

करते-करते मुझे धौली की याद आती थी, पर राजा साहब छुट्टी नहीं देते थे। राज्य में रहें चाहे बाहर जाएँ, प्राइवेट सैक्रेटरी को तो साथ ही रहना होगा। राजा साहब के साथ मैं यूरोप की सैर कर आया। अमरीका भी हो आया। इन यात्राओं में राजकुमारी कुन्तल भी साथ रही। मैं कैसे कहूँ कि राजा साहब कितने खुश हैं? कैसे समझाऊँ कि राजकुमारी कुन्तल के मन पर मेरी छाप लग चुकी है? अलवीरा परम सुन्दरी सही, पर राजकुमारी कुन्तल से उसकी क्या तुलना करेगा कोई? राजा साहब तो छुट्टी नहीं देते थे। राजकुमारी कुन्तल की सिफ़ारिश करानी पड़ी, तब काम बना। कैसे बताऊँ कि राजकुमारी कैसे हाव-भाव दिखाती है?"

जागरी और नीलकण्ठ ने सारी बात सुनी। फिर एक-दूसरे से आँखें मिलाकर मानो राजकुमारी के मन पर छाप लगने वाली बात तौलने लगे।

जागरी और नीलकण्ठ की आँखों में सन्देह देखकर अन्तराल ने कहा, "सन्देह की दवा तो कहीं नहीं मिलेगी। देखो मैंने राजकुमारी की बात तुमसे कह दी। घर में तो इतना ही बताया है कि राजा साहब की मुझ पर विशेष कृपा है।"

गाँव में यह ख़बर मशहूर हो गई कि अन्तराल राजा साहब का निजी मन्त्री है। राजा का मन्त्री होना बहुत बड़ी बात थी। लक्ष्मी को घर में बाँधने से अब कौन रोक सकता था?

अन्तराल राजा साहब की नौकरी करता था, अपने लिए। पर धौली वाले सोचते, इससे उन्हें भी बल मिला है।

आप-ही-आप अन्तराल के पैर मूर्तिशाला की ओर उठ जाते।

रूपक हँसकर कहता, "हमें भी राजा साहब की नौकरी में ले चलो, काका!"

"पहले काम सीख लो पूरी तरह!" अन्तराल मुस्कराता, "हाथ में गुण हो, तो काम मिलते देर नहीं लगती।"

रूपक के सामने राजकुमारी की बात तो नहीं की जा सकती थी। उसे तो यह नहीं बताया जा सकता था कि राजकुमारी के काले रेशमी

बाल घुटनों तक लहराते हैं। उससे कैसे कहा जाए कि राजकुमारी परम सुन्दरी है और उसकी तो डाँट भी प्रिय लगती है। उसे कैसे बताया जाए कि राजकुमारी ने उसकी आदतें ख़राब कर दी हैं ? कैसे कहे कि विधाता की विचित्र रचना है, राजकुमारी ! कितनी बार उसने मेरे सपनों में आकर कहा—मैं सब समझती हूँ ! कितनी बार उसने झुँझलाकर कहा—तुम क्या जानो !...यह सब प्रसंग रूपक के स्तर से बहुत ऊँचा था।

नीलकण्ठ को तो अन्तराल बता चुका था कि राजकुमारी कितनी सुन्दर और पढ़ी-लिखी है। राजकुमारी ने एक बार कहा था—मेरा तो दिमाग भी दिल की तरह धड़कता है !...भगवान् करे, सदा प्रसन्न रहे राजकुमारी !

राजकुमारी का फोटो भी तो था अन्तराल के पास। पहले जागरी ने देखा, फिर नीलकण्ठ ने। राजकुमारी से कैसे परिचय हुआ, यह न उन्होंने पूछा, न उसने बताया। एक सुर, एक लय में तीनों मित्रों की बात चलती रहती। धौली में अन्तराल के आगमन से एक नया रंग लहरा उठा था। राजकुमारी की कथा सुनकर जागरी हँस पड़ता, "दुनिया में कोई किसी का नहीं, तो फिर राजकुमारी कुन्तल भी तुम्हारी कैसे होगी ?"

अन्तराल मुस्कराकर चुप हो रहता।

"गलत बात है।" जागरी छेड़ता।

"राजकुमारी लजाती है तो लोक-कथा की परी प्रतीत होती है !" एक दिन अन्तराल ने कहा, "मैं उसकी पायल की आवाज़ पहचानता हूँ। वह सामने आती है तो मन-मयूर नाच उठता है।"

"अरे राजा साहब को पता चल गया तो नौकरी चली जाएगी।" जागरी ने चुटकी ली।

"राजा साहब सब जानते हैं।" अन्तराल मुस्कराया, "उन्होंने राजकुमारी को स्वयंवर का अधिकार दे रखा है।"

"राजकुमारी को तुमसे अच्छा वर नहीं मिला ?"

"तुम क्या जानो ? एक दिन वह हँसकर बोली—मैं चाहूँ तो पत्थर

में भी फूल खिला सकती हूँ।'''तुम क्या जानो, जागरी ! उसने तो मेरी ही सौगन्ध खाकर राजा साहब को बता दिया कि वह मुझसे विवाह करेगी।"

"पहले अलवीरा ब्याही जाए धौली में, फिर तुम राजकुमारी को ब्याह लाओ।" जागरी खुशी से नाच उठा।

अन्तराल बोला, "जागरी, सच जानो, राजकुमारी कुन्तल के मुख पर कुन्तलराशि घटा की तरह छा जाती है, तो वह स्वयं अपने रूप पर झूम उठती है।"

"तुम पर राजकुमारी कैसे रीझ गई ?"

"मुझमें नहीं, तो उसमें सही। हँसती है तो फूल झड़ते हैं। बात-बात में मेरी सौगन्ध खाती है।"

जागरी और नीलकण्ठ को स्वीकार करना पड़ा कि राजकुमारी कुन्तल ने अपनी अँगुलियाँ अन्तराल के दिल पर रख दी हैं।

छुट्टी पूरी होने से एक दिन पहले ही अन्तराल चला गया।

मूर्तिशाला की बगिया के पेड़-पौधे सिर ऊँचा किये खुशी से झूमते रहते। नीलकण्ठ को रह-रहकर अलबीरा का ध्यान आता, जो अब कटक में पढ़ाती थी, और महानदी के किनारे रहती थी।

मूर्ति गढ़ते समय वह सोचता, अलबीरा तो अपने-आप में मग्न है, शायद हमारी बात नहीं बनेगी। पर वैद्यजी ने गाँव-भर में यह बात उड़ा दी कि अलबीरा पूरे जोर से नीलकण्ठ पर डोरे डाल रही है।

वैद्यजी ने कोइली की दादी के पास जाकर कहा, "नीलकण्ठ को अलबीरा से बचाओ। नीलकण्ठ के मन-प्राण अपनी मुट्ठी में रखो। जिस जाति ने हमारे देश को गुलाम बना रखा है, क्या हम उसी की एक कन्या को धौली में बहू बनाकर लाएँगे? इससे बड़ा कलंक क्या होगा? नीलकण्ठ को समझाओ, इससे तो बाबा की आत्मा को बहुत कष्ट होगा। नीलकण्ठ को समझाओ।"

दादी बोली, "मेरे रहते नीलकण्ठ ऐसा नहीं करेगा।"

वैद्यजी देर तक कोइली की दादी को तरह-तरह की दलील देकर समझाते रहे, जैसे घोड़ा दौड़ रहा हो और सुमों के नीचे से चिनगारियाँ छूट रही हों। उन्होंने यहाँ तक कह डाला, "मैंने तो अन्तराल से भी कह दिया

है कि राजा साहब की नौकरी करो, पर राजकुमारी के चक्कर में न पड़ो।"

दादी ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "नीलकण्ठ को भी नौकरी मिल जाए तो मैं मना नहीं करूँगी।"

"नौकरी तो कल मिल सकती है। वह हाँ तो करे। बुलके साहब के लिए उसे नौकरी दिलाना क्या मुश्किल है?"

यह सुनकर रूपक उदास हो गया। वह नहीं चाहता था कि नीलकण्ठ उसे छोड़कर चला जाए।

जब से गुरुदेव चल बसे थे, रूपक ने जागरी काका से कलकत्ता दिखाने का अनुरोध करना छोड़ दिया था। वैद्यजी उससे कहते, "नीलकण्ठ को नौकरी की प्रेरणा दो, रूपक! पैसा आए तो घर भी सँभल जाए। याद रखो, नौकरी तुम्हें भी करनी होगी एक दिन। हमारे अन्तराल को देखो। राजा साहब की नौकरी करता है तो क्या बुरा है?"

रूपक पर वैद्यजी की बात का ज़रा असर न हुआ। उसने कहा, "नीलकण्ठ काका नौकरी करेंगे तो गुरुदेव की आत्मा को कष्ट होगा।"

वैद्यजी को अब अख़बार से यह शिकायत नहीं रह गई थी कि धौली की ख़बर नहीं छपती। दवा की पुड़िया रोगी को देते समय वे उसे यह भी बताते, "हमारे अन्तराल ने घर से भागकर इतनी मेहनत की कि ग्रेजुएट हो गया। अब वह राजा साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी है। आया तो क्या-क्या उपहार लाया? गया तो मनीआर्डर भेजने लगा।"

वैद्यजी नीलकण्ठ को समझाते, "तुम भी नौकरी कर लो, तो घर मनीआर्डर भेजने लगो। धौली में कितनी शोभा होगी! तुम्हें तो अन्तराल से भी बड़ी नौकरी मिल सकती है। राजा साहब से कहना हो, तो मैं अन्तराल को लिख दूँ। बुलके साहब को तो तुम्हारा संकेत ही काफ़ी है।"

गगन महान्ती भी वैद्यजी की हाँ-में-हाँ मिलाते, "त्रिमूर्ति पूर्ण करने की बात थी, वह कभी की हो चुकी, अब तुम्हें नौकरी करनी चाहिए।"

रूपक यह सुनता तो और भी उदास हो जाता, जैसे सबने

नीलकण्ठ को नौकरी पर भेजने की सौगन्ध खा ली हो ।

"नीलकण्ठ को नौकरी करनी चाहिए, अन्तराल की तरह ।" वैद्यजी थाप लगाते रहते ।

मूर्तिशाला की धूल से अटी मूर्तियों पर नज़र जमाकर जागरी कहता, "तीन-चार सौ मूर्तियाँ बाबा छोड़ गए । अब तुम पत्थर छीलते रहते हो, नील ! इससे क्या होगा ? पैसा तो आता नहीं ।"

रूपक शिकायत-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता, जैसे कह रहा हो—जागरी काका, आप भी नीलकण्ठ काका को नौकरी के जाल में फँसाने पर तुल गए !

टेढ़ी-मेढ़ी युक्तियों की कुंज-गलियों से होकर नौकरी की बात आगे बढ़ती रहती । जागरी गाँजे का दम लगाकर धुआँ रूपक पर छोड़ते हुए कहता, "बेटे जमूरे, तुम नीलकण्ठ को नौकरी पर जाने से नहीं रोक सकोगे ।" जैसे नौकरी सामने खड़ी हो और रूपक ही बाधा डाल रहा हो ।

वैद्यजी नौकरी के पक्ष में युक्ति देते समय आँखों और ओंठों से भी उतना ही काम लेते जितना ज़बान से । बात करते-करते वे अपना कन्धा नीलकण्ठ के कन्धे से टकराकर कहते, "सब काम लक्ष्मी को प्रसन्न करके घर में घेर लाने के लिए ही तो किये जाते हैं ।"

यह नहीं कि गाँव की मूर्तिशाला में न।लकण्ठ का काम करना लोगों को बुरा लगता था, पर अब तो हर कोई नीलकण्ठ की नौकरी के लिए ही चिन्तित प्रतीत होता था ।

"आप लोगों को ऐसी क्या मजबूरी है कि मुझे नौकरी की सलाह देते हैं ?" नीलकण्ठ उत्तर देता, और रूपक प्रसन्न हो जाता ।

"मैं नौकरी नहीं करूँगा, जागरी !" एक दिन नीलकण्ठ ने मूर्तिशाला में मूर्ति गढ़ते हुए कहा ।

"भूखे देश में नौकरी ही आज़ादी का रास्ता है ।" जागरी ने हँसकर कहा, "गाँव में रहने का मतलब है ठनठन-गोपाल । विलायत गये, वहाँ पाँच साल लगाए, फिर भी चार दिन मौज न की, दादी को सुख न

दिया। धिक्कार है इस जीवन पर !"

नीलकण्ठ ने उदास होकर कहा, "इन्सान का कोई साथी नहीं। अकेला आया, अकेला जाएगा। जिस पत्थर की मूर्ति गढ़ता हूँ, वह मानो मूक भंगिमा से पूछता है—अच्छे तो हो, मूर्तिकार ? और तब मैं सोचता हूँ, मैं अकेला नहीं हूँ, पत्थर मेरा साथी है।"

जागरी बोला, "बाबा मूर्ति आरम्भ करते समय पत्थर से पूछा करते थे—अच्छे तो हो, मित्र ?... पर बाबा का युग और था। अब तो पत्थर से पूछकर मूर्ति आरम्भ करने की बात पर हँसी आ जाती है।"

कई बार वैद्यजी मूर्तिशाला में चले आते और नौकरी के पक्ष में पूरा भाषण झाड़ देते। "पत्थर से पूछ देखो," वैद्यजी गम्भीर स्वर में कहते, "यही सलाह देगा कि पैसा कमाओ। लड़ाई बन्द होने के बाद हर चीज़ के दाम बढ़ रहे हैं।

"नौकरी नहीं करोगे, तो खाओगे कहाँ से ? हमें तो नौकरी मिलती नहीं। मिले तो झट कर लें।"

जागरी कहता, "अलवीरा को भी तो नौकरी करनी पड़ी। फिर तुम्हें किसकी शरम है, नील ?"

वैद्यजी और जागरी में इस मामले पर समझौता हो गया था कि नीलकण्ठ को नौकरी पर भिजवाकर ही दम लेंगे। दोनों एक-से-एक बढ़कर युक्ति देते। तान यहीं तोड़ते—नीलकण्ठ को नौकरी करनी ही होगी ! वैद्यजी अत्युक्ति से संकोच करते, न जागरी।

गाँजे का दम लगाकर धुआँ रूपक पर छोड़ते हुए जागरी कहता, "बच्चे जमूरे, तुम क्यों चुप हो ? नीलकण्ठ की नौकरी के लिए भगवान् से प्रार्थना करो। तुम्हारी नौकरी के लिए हम प्रार्थना करेंगे।"

एक दिन वैद्यजी को एक पत्र मिला। यह अपूर्व का पत्र था। कन्ध-प्रदेश से आया था। पत्र के नीचे अपूर्व का नाम पढ़कर वैद्यजी खुशी से उछल पड़े। सोचने लगे—आखिर पत्र लिखने के लिए अपूर्व ने मुझे ही क्यों चुना? जाने क्या लिखा हो? शायद कुछ माँग भेजा हो।

अपूर्व ने पहली सूचना तो यह दी थी कि वह कन्ध-प्रदेश के एक स्कूल में अध्यापक है। दूसरी खबर यह थी कि उसने एक कन्ध-कन्या से विवाह कर लिया है।

वैद्यजी से सुनकर जागरी ने यह बात गाँव-भर में फैला दी।

यह बात जागरी की समझ में नहीं आ रही थी कि अपूर्व ने किस तरह की कन्ध-कन्या से विवाह किया है। "उड़िया कन्याओं की ऐसी क्या कमी हो गई थी कि कन्ध-कन्या से सम्बन्ध जोड़ना पड़ा?" इस प्रश्न का उत्तर तो वैद्यजी के पास भी नहीं था।

नीलकण्ठ ने यह खबर सुनी तो कहा, "वैद्यजी, आदमी अकेला नहीं रह सकता। अपूर्व ने अच्छा किया कि विवाह कर लिया। वह कन्ध-कन्या इतनी बुरी तो नहीं होगी।"

वैद्यजी छूटते ही बोले, "दूसरी बात क्यों भूल रहे हो, नील? अपूर्व

स्कूल में पढ़ाता है। तुम्हें भी नौकरी करनी होगी।"

नीलकण्ठ मुस्कराकर बोला, "दया नदी किसकी नौकरी करती है? सदियों से मछुआरे मछलियाँ पकड़ते रहे हैं और पकड़ते रहेंगे। पर दया नदी का काम है बहते रहना और मछलियाँ पैदा करते रहना। मेरा काम है मूर्तियाँ गढ़ते रहना। नौकरी की बात कहाँ आती है?"

वैद्यजी भी कब दबने वाले थे! बोले, "यह किधर की युक्ति है? देखते नहीं? दया नदी आगे बढ़ती है। आगे बढ़ना ही जीवन है। और आगे बढ़ने के लिए नौकरी करनी पड़े तो क्या बुरा है?"

वह देखता रहा। वैद्यजी घुटनों के बीच में ठुड्डी जमाए बैठे न जाने किस सोच डूब में गए। जब भी युक्ति काम करती नज़र न आती, वह इसी तरह बैठते थे।

उन्हें अपूर्व का पत्र पाकर उतनी ही खुशी हुई, जितनी अन्तराल से मिलकर हुई थी। फिर उन्होंने बोलना आरम्भ किया, तो बोलते ही चले गए। बोले, "आज बाबा जीवित होते, तो अपने-आप नीलकण्ठ को नौकरी करने की प्रेरणा देते। अन्तराल नौकरी करता है, और अपूर्व भी।"

अपूर्व का पत्र नौकरी की दलील बनकर आएगा, इसकी तो नील-कण्ठ को आशा न थी। नौकरी की बात टालकर नीलकण्ठ बोला, "यह तो लिखा ही नहीं कि विवाह कब किया।"

मूर्तिशाला में मूर्ति गढ़ते हुए नीलकण्ठ को ऐसा प्रतीत होता कि यह पत्थर, जिस पर वह छेनी चला रहा है, उसके मुँह पर चाँटा मारकर पूछ सकता है—क्या तुम नौकरी पर जाने की सोच रहे हो?

जैसे हाथ की अधूरी मूर्ति पूछ रही हो—क्या तुम बाबा की आत्मा को धोखा देकर नौकरी कर लोगे?

हर कोई यही पूछ रहा था, "इतने दिन बाद अपूर्व ने पत्र लिखा। क्या पहले नहीं लिख सकता था?"

वैद्यजी के पास तो इसका कोई उत्तर नहीं था। वे हँसकर यही

कहते, "अपूर्व के मन का रंग बिलकुल ही बदल गया होता, तो वह यह पत्र न लिखता।"

जागरी कहता, "यह तो ठीक है, काका! उसके मन का राग-अनुराग नहीं बदला। फूल की मुस्कान बता देती है, बसन्त आ गया। अपूर्व ने अपने मन पर व्यर्थ का भार नहीं पड़ने दिया और एक कन्ध-कन्या को घर में बसा लिया। यह तो अच्छा हुआ।"

वैद्यजी मुस्कराकर कहते, "घी की आहुति देने से आग की ज्वाला ऊपर उठती है, वैसे ही यह पत्र आया है।"

नीलकण्ठ उत्तर देता, "यह तो ठीक है, काका! जानते हो, आकाश की ओर अधिक कौन देखते हैं?"

"जो आँखों पर रंगीन चश्मा लगा लेते हैं।"

"वाह, काका! बूझ लिया। मैं कह रहा था कि अपूर्व ने आँखों पर रंगीन चश्मा नहीं लगाया होगा। वह बराबर धरती की ओर देख रहा है। तभी तो उसे धौली की याद आई।"

"धरती की उपासना से ही मानवता की जय होगी। पर हम तो गुलाम हैं। खुशी की बात है, अंग्रेज़ हमारी जन्मभूमि की आशा-आकांक्षा को ऊपर उठाने में हाथ बटा रहा है।"

"आज के अख़बार की क्या ख़बर है?"

अख़बार ने बता दिया था कि क्रिप्स मिशन दिल्ली आया है और राष्ट्रीय नेताओं से बातचीत की तैयारियाँ ज़ोरों पर हैं।

"आज बाबा होते तो देश के आज़ाद होने के लक्षण देखकर कितने प्रसन्न होते!" जागरी ने त्रिमूर्ति की ओर देखकर कहा, "आप तो आज भी विष-पान कर रहे हैं, बाबा!"

क्रिप्स मिशन का प्रसंग छूट गया। त्रिमूर्ति सामने आ गई।

"त्रिमूर्ति तो युग-युग तक रहेगी, काका!" जागरी मुस्कराया, "इसके सामने यह बात तो किसे याद रहेगी कि धौली के अपूर्व ने किसी कन्ध-कन्या से विवाह किया था।"

सामने पीपल के पत्ते डोल रहे थे। त्रिमूर्ति पर बैठा कबूतर-कबूतरी का जोड़ा गुटरगूँ का स्वर साध रहा था। ठक्-ठक्-ठक् ! जैसे कबूतर-कबूतरी के गुटरगूँ के पीछे भी मूर्तिकार की छेनी चल रही हो। गली में आते-जाते लोगों की पग-ध्वनि भी जैसे ठक्-ठक् के ताल पर चल रही हो। यही जीवन का ताल था। पीपल की पूजा होती आई थी, जैसे हर पीढ़ी के बच्चे दादी-माँ से कहते आए थे—कथा कहो, दादी ! वैद्यजी बैठे सोचते रहे, अब इस कथा में क्रिप्स मिशन की कथा तो जुड़ने से रही। शायद जुड़ जाए। उस कथा में अपूर्व का प्रसंग भी जुड़ सकता है। जिस कन्ध-कन्या को लेकर उसने घर बसाया है, उसे लेकर क्या वह एक बार धौली नहीं आएगा ? वाह बेटा अपूर्व ! तुमने तो कोणार्क के महा-शिल्पी बिशु की याद ताज़ा कर दी। बिशु की उर्वशी भी तो कन्ध-कन्या थी, जिसे छोड़कर वह चला आया था। बाद में बिशु ने उस कन्ध-कन्या की छवि अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान पर दिखाने की चेष्टा की थी।

वैद्यजी बहुत प्रसन्न थे। उनके विचार तालियाँ पीटते बच्चों की तरह जैसे किसी दादी-माँ से कह रहे थे—कथा कहो, दादी !…क्रिप्स मिशन की कथा कहो। अन्तराल की कथा हो चाहे अपूर्व की। जैसे दादी-माँ टालना चाहती हों और बच्चे लिपट रहे हों, ज़िद कर रहे हों। पोपले मुँह से जैसे दादी-माँ कथा कह रही हों।

अख़बार पर नज़रें गाड़े बैठे थे वैद्यजी। कोई ख़बर यों आती है, जैसे चील के पंखों की फड़फड़ाहट पीपल की फुनगी पर जाकर शेष हो गई हो। कोई ख़बर बिल्ली की तरह दबे पैरों आती है। कोई ऐसे, जैसे रात को एक हाथ में लालटेन, दूसरे में लट्ठ लिये चलता है गाँव-मुखिया। कोई ऐसे, जैसे घोंसले में बैठी चील टिटकार उठे। कोई ऐसे, जैसे गली का कुत्ता आकाश की ओर मुँह उठाकर एक विचित्र-से स्वर में रोने की आवाज़ निकाले। कोई ऐसे, जैसे कोई पगला मुँह पर हाथ रखकर हँस पड़े। वैद्यजी यही नहीं सोच पा रहे थे, क्रिप्स मिशन की ख़बर सचमुच कैसे आई है।

"क्या क्रिप्स मिशन की खबर ऐसे आई है जैसे अपूर्व का पत्र ?" वैद्यजी ने पूछा, "तुम्हारा मन क्या कहता है, जागरी ?"

जागरी हँसकर बोला, "मुझसे पूछो तो कहूँगा, यह खबर ऐसे आई है, जैसे गुरुचरण की घरवाली की कोख हरी होने की खबर, जो आज तक पूरी नहीं हो सकी ।"

"ऐसा मत कहो, जागरी ! कौन जाने, क्रिप्स मिशन हमें स्वतन्त्रता दिला जाए !"

"अरे काका, हम क्या अंग्रेज की बात भूले हुए हैं ? न नौ मन तेल हो, न राधा नाचे ! अंग्रेज तो हमें ही दोष देगा ।"

"फिर भी आशा तो नहीं छोड़नी चाहिए ।"

"आशा तो गुरुचरण की घरवाली भी नहीं छोड़ती । बेचारी न जाने कितने वर्षों से त्रिमूर्ति वाले चौराहे पर पीपल से सटकर जाड़े की आधी रात में अपने सिर पर नये घड़े का पानी डालकर नहाती आई है । स्नान के बाद वह टोना करना भी नहीं भूलती ।"

"मिठाई, आटे का गोला और घी का दीया तो मैं भी देखता आया हूँ ।"

"और यह नहीं देखा कि बेचारी की गोद तो भरी नहीं, उल्टा उसे दौरा पड़ने लगा है ।"

"हे भगवान् ! किसी को यह दौरा न पड़े । न मुँह में झाग आए, न आँखें लाल हों । वह तो अण्डबण्ड बका करती है । मेरी तो कोई सुनता नहीं । हिस्टीरिया रोग का दौरा है, यह बात कोई मानता नहीं ।"

"हाँ काका ! सब यही कहते हैं, भूतनी लग गई । हर बार ओझा आकर उसकी अँगुली ऐंठकर, झोंटा खींचकर और नाक में लाल मिर्च की धूनी देकर भूतनी उतारता है । और फिर गुरुचरण की घरवाली होश में आकर साड़ी का आँचल सिर पर ले लेती है ।"

वैद्यजी देर तक समझाते रहे, "नारी की गोद न भरे तो उसे आशा-स्थान कहाँ नज़र आएगा ? गुरुचरण अपनी रासलीला-मण्डली लेकर एक

छोर से दूसरे छोर तक डोल सकता है। पर इससे क्या होता-हवाता है ? उसकी घरवाली तो आज तक माँ नहीं बन सकी। बेचारी कभी हँसती है, कभी गम्भीर बनने की कोशिश करती है। न जाने किस उधेड़-बुन में लगी रहती है। गुरुचरण को रासलीला से अवकाश नहीं।"

"पेट जो लगा है, काका ! पेट के लेखे चलती है गुरुचरण की रास-लीला, पेट ही के लिए अपूर्व की अध्यापकी और पेट ही तो अन्तराल को राजा साहब की जी-हुज़ूरी पर मजबूर करता है।"

वैद्यजी फिर अपनी बात पर आ गए, "हमारे शब्द-कोश में तो एक ही शब्द है नौकरी, या कोई ऐसा धन्धा जो पैसा दे। यह नहीं कि नीलकण्ठ की तरह बैठे पत्थर छीलते रहो, और कभी भूला-भटका ग्राहक आये भी तो मूर्ति बेचने से इन्कार कर दो। यह तो समझो, घर की ज़मीन है और दाल-भात चल जाता है। पर बड़े खर्च तो नहीं चल सकते। कल को विवाह करेगा, पराई बेटी को कहाँ से खिलाएगा ?"

"अलवीरा तो नौकरी करती है।"

"तो क्या अलवीरा उसे खिलाएगी ? उल्टी गंगा बहेगी ?"

त्रिमूर्ति पर बैठा कबूतर-कबूतरी का जोड़ा गुटरगूँ-गुटरगूँ कर उठा, और वैद्यजी का ध्यान त्रिमूर्ति की ओर चला गया। बोले, "रहती दुनिया तक बाबा इसी तरह विष-पान करते रहेंगे।"

जागरी बिना कुछ कहे एकटक त्रिमूर्ति की ओर देखता रहा। उसे लगा, समय भी त्रिमूर्ति को देखने के लिए रुक गया है। वह बोलता, "सूरज गवाह है कि त्रिमूर्ति कैसे पूर्ण हुई। पर धौली के पल-पल का परिचय तो भला यह त्रिमूर्ति कहाँ से देगी ?"

वैद्यजी न जाने क्या सोचकर बोले, "क्रिप्स मिशन हमें स्वतन्त्र कर दे, तो समझो हमारे सोए भाग्य जग जाएँ। बोलो, क्या कहते हो ?"

"मैं तो वही कहता हूँ, जो अलवीरा कहती है।" जागरी मुस्कराया।

"वह क्या कहती है ?"

जागरी ने बलपूर्वक कहा, "वह भी यही कहती है कि हिन्दुस्तान

स्वतन्त्र हो जाए। काका, कभी-कभी तो मुझे विश्वास नहीं होता कि यह कोई अंग्रेज़ की पुत्री बोल रही है। परसों नीलकण्ठ मुझे अपने साथ कटक ले गया। अलवीरा ने बहुत अच्छी चाय पिलायी। और चाय की चुस्की भरते हुए उसने पहली बात यही कही कि क्रिप्स मिशन से मिलकर हमारे नेताओं को अवश्य देश की स्वतन्त्रता का फैसला कर लेना चाहिए।"

"तो नीलकण्ठ क्या बोला ?"

"वह तो मूर्ति की बात ले बैठा और इसी बात पर ज़ोर देता रहा कि मूर्ति की रेखाएँ केवल संकेत होती हैं, पर दर्शक को मूर्ति की रेखाएँ एक अर्थ देकर उसकी भावना और कल्पना को उभार देती हैं और इस तरह मूर्तिकार की प्रिय वस्तु अथवा कल्पना दर्शक की चेतना में साँस लेने लगती है।"

"यह तो कोई नयी बात नहीं। चतुर्मुख भी यही बात कहा करते थे। अलवीरा ने क्या कहा ?"

"वह बोली, इसका यह मतलब हुआ कि मूर्तिकार की लय पत्थर में उतरकर दर्शक की लय बन जाती है। दर्शक उसे पत्थर की कविता कहकर सीने से लगाता है। वह देर तक बाबा की मूर्तियों की प्रशंसा करती रही। फिर इस बात को यहीं छोड़कर अलवीरा ने पूछा—आज मैं तुम्हें कैसी लगती हूँ, नील ?"

"नीलकण्ठ ने क्या जवाब दिया ?"

"वह बोला, जैसी पिछली बार लगी थी। अलवीरा भी चुप रहने वाली नहीं। बोली, मुझे तो लगता है, हम एक-दूसरे के लिए पैदा हुए हैं, नील !···मैंने हँसकर कहा—इसीलिए तो बचपन में मिलकर रेत के घर बनाये थे !···इस पर हम तीनों हँस पड़े।"

"तो मामला दूर नहीं। मैं समझ गया। दोनों एक-दूसरे की कमी पूरी करने पर तुल गए हैं।"

"बुरा भी क्या है, काका ? अपूर्व एक कन्ध-कन्या से सम्बन्ध जोड़ सकता है, तो नीलकण्ठ को अलवीरा क्यों नहीं वर सकती ?"

"पर क्रिप्स मिशन का क्या होगा ?"

"क्रिप्स मिशन को गोली मारो, काका ! अलवीरा और नीलकण्ठ की बात हो रही है। हाँ, तो नीलकण्ठ ने अलवीरा के बार-बार पूछने पर यही उत्तर दिया—शायद मैं तुम्हारे बिलकुल योग्य नहीं हूँ।"

"तो वह क्या बोली ?"

"वह नीलकण्ठ को बरामदे से उठाकर ड्राइंग रूम में ले गई, जहाँ नीलकण्ठ का बड़ा फोटो रुपहले चौखटे में लगा था। हँसकर बोली—मेरे लिए मुश्किल है कि इस फोटो से ही बातें करती रहूँ। मैं पागल हो जाऊँगी, नील !"

"फिर नील ने क्या कहा ?"

"नील ने उसकी बात हँसी में उड़ा दी। फिर सँभलकर बोला—तुम एक सौ एक बार सोच लो, अलवीरा ! पत्थर गढ़ने वाला मूर्तिकार तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता। बाद में तुम पछताओगी।"

वैद्यजी के अनुरोध पर अपूर्व ने स्कूल की छुट्टियों में पत्नीसहित धौली आने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उन्होंने नागमती को समझा दिया, "देखो, अपूर्व हमारे प्रेम का पात्र है, क्योंकि न उसकी माँ है न पिता।"

"तो तुम्हारा मतलब है, हम उन्हें अपने घर में ठहराएँ ?" कहकर नागमती हँसती चली गई।

"हँसने की तो कोई बात नहीं। वे हमारे यहाँ ठहरना चाहेंगे तो क्या हम मना कर देंगे ?"

"उस कन्ध-कन्या से मैं कैसे बात करूँगी, यही सोचकर हँसी आ गई।"

"उसे अपनी भाषा के अतिरिक्त तुम्हारी भाषा भी आती होगी।"

नागमती हँसी के मारे दुहरी हुई जा रही थी। बोली, "हँसी इसलिए आई कि कहीं मैं बातों-बातों में अपूर्व को बिशु कहकर न बुला बैठूँ।"

"तुम्हारा मतलब है उस कन्ध-कन्या को वह कहानी नहीं आती होगी कि कोणार्क के महाशिल्पी ने एक कन्ध-कन्या से गन्धर्व-विवाह किया था। उन्हें नाराज़ न करना, नहीं तो वे रूठकर कन्ध देश को लौट

जाएँगे ।"

"तुम कहते हो, मैं उन्हें छुईमुई समझकर घर में रखूं और उन्हें हाथ लगाते भी डरती रहूँ ?" हँसते-हँसते उसके पेट में बल पड़ गए ।

"उन्हें वैसे ही रखना, जैसे अन्तराल का विवाह होने पर बेटे और बहू को रखोगी ।"

एकाएक नागमती की हँसी थम गई, और उसने उदास मुँह होकर कहा, "अन्तराल को मैंने बहुत समझाया, राजकुमारी कुन्तल को भूल जाओ । उसी चीज़ पर हाथ डालना चाहिए, जो अपनी हो सके ।"

"मैंने तो उसे ऐसी कोई बात नहीं कही । मैं जानता हूँ, अगर राजकुमारी ने ही बहू बनना है, तो मैं विधाता के लेख को बदल नहीं सकता ।"

नागमती फिर हँस पड़ी, "तुम सोचते हो, राजकुमारी ही बहू बनकर आएगी ।"

"राजा-घर की बहू पाने का विचार ऐसा सपना है, जिससे मना करने का सवाल ही नहीं उठता ।" वैद्यजी ठहाका मारकर हँस पड़े, "हम इतने मूर्ख तो नहीं हैं । जैसे इतने दिनों बाद खोया बेटा मिल गया, वैसे ही राजा-घर की बहू भी मिल सकती है ।"

नागमती हँसी के मारे लोट-पोट हो गई और देर तक निरन्तर हँसती रही । वैद्यजी ने उसके मुँह पर हाथ रखकर कहा, "बात तो अपूर्व और उसकी कन्ध पत्नी की चल रही थी ।"

सामने छत पर बैठे कबूतर के जोड़े ने चोंच में चोंच डालकर गुटरगूं की, तो उसे सुनकर पति-पत्नी हँस पड़े ।

वैद्यजी जानते थे, नागमती मस्तानी है । "तुमने जो सपना देखा है, नागमती !" वे उसकी आँखों में आँखें डालकर बोले, "उसे तुम्हारा दिल नित नये-नये रूप में देखता आया है ।"

"किसी की मोहिनी छवि मेरे सामने पल-पल नाचती रहती है । उसे मैं औरों को नहीं दिखा सकती । पर मैं तो उस मोहिनी छवि के आलोक

में नहा उठती हूँ।''

''एक बार फिर हँसकर दिखाओ।''

पर नागमती अब चेष्टा करने पर भी न हँस सकी।

वैद्यजी ने आराम से बैठकर जागरी से सुना हुआ प्रसंग छेड़ दिया—एक गीत की भावभूमि, जो उसे भुवनेश्वर के मन्दिर देखने आए किसी यात्री से प्राप्त हुई—''मेरे घर के पिछवाड़े है लोगों का छोटा-सा गाछ। उसके नीचे मैं भरती हूँ पानी। मेरी उमरिया है बाली-नादानी। जल-भरा घड़ा उठता ही नहीं मुझसे। मुझे लाज आती है। मैं घबराती हूँ रह-रहकर। नीली घोड़ी का छैल सवार, मिलता है बीच डगर। एक हाथ से घड़ा उठवाता। दूजे से ठोड़ी छू-छू मुझे लजाता।''

नागमती बोली, ''नीली घोड़ी के सवार की तरह ही अपूर्व ने उस कन्ध-कन्या का घड़ा उठवाया होगा, और फिर उसकी ठोड़ी छूकर...''

''आएँ तो उनसे पूछें कि वह नाटक कैसे हुआ?''

''हम उनसे कन्ध-देश का हाल पूछेंगे।''

''वही देश अच्छा है, जहाँ मनुष्य सुख की साँस ले सके।''

बाँसुरी की लम्बी खिंची धुन की तरह पति-पत्नी की बात लम्बी होती गई।

दोपहर से पहले ही अपूर्व अपनी पत्नी को लेकर आ पहुँचा, और नागमती ने अपने ही बेटे और बहू के समान उनका स्वागत किया।

वे रेलवे स्टेशन से बैलगाड़ी में बैठकर आये थे।

अपूर्व का संकेत पाकर उसकी पत्नी ने नागमती और वैद्यजी के चरण छूकर प्रणाम किया, और दोनों ने उसे आशीर्वाद दिया।

साड़ी में लिपटी बहू के सिर पर हाथ फेरकर नागमती ने पूछा, ''बेटा, क्या नाम तुम्हारा?''

''श्यामली।'' बहू ने बारीक आवाज़ में उत्तर दिया और उसके दाँत चमक उठे।

''यह नाम शुभ हो!'' वैद्यजी ने दोबारा आशीर्वाद दिया।

नागमती चण्डीदास का पद गाने लगी :

सजनि केवा शुनाइलो श्याम नाम ?

कानेर भीतर दिया मरमे पशिलो गो

आकुल करिलो मोर प्राण !

[सखी, मुझे यह श्याम का नाम किसने सुनाया ? मेरे कानों के भीतर से होकर मेरे मर्म में पैठ गया और मेरे प्राणों को आकुल कर दिया।]

गली से होती हुई यह खबर सारे गाँव में फैल गई कि अपूर्व अपनी कन्ध पत्नी को लेकर आया है।

गाँव-भर की स्त्रियाँ और कन्याएँ बहू को देखने आयीं। सबके मुँह पर श्यामली की प्रशंसा के शब्द थे। अपूर्व को देखकर सब खुश हुईं।

अपूर्व प्रसन्न था कि त्रिमूर्ति पूर्ण हो गई। वह मूर्तिशाला में जाकर नीलकण्ठ से मिला। कोइली की दादी की चरण-रज उसने माथे पर लगायी, तो दादी बोली, "आनन्द-मंगल बना रहे, बेटा !"

दादी बहू को देख आई थी। वह देर तक बहू के रूप-गुण की प्रशंसा करती रही।

दूर कहीं बाँसुरी बज रही थी, मानो बाँसुरी की लय के अनुसार ही नीलकण्ठ की छेनी चल रही हो।

पीछे से आकर जागरी ने अपूर्व को बाँहों में कस लिया।

"इतने दिन कहाँ पाण्डवों का-सा अज्ञातवास किया ?" जागरी ने पूछा।

"मैं कन्ध-देश में रहा। तुम्हें भी ले चलूँगा।"

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर धुआँ फेंकते हुए कहा, "मुझे तो कन्ध-पत्नी नहीं चाहिए।"

"बाबा की मूर्ति कैसी लगी त्रिमूर्ति में ?" नीलकण्ठ ने पूछा।

अपूर्व ने मुस्कराकर कहा, "तुमने बाबा को अमर कर दिया।"

तीनों मित्र एक-दूसरे को देखते रहे, जैसे कोई अनबुनी याद बुनने

जा रहे हों।

फिर यह प्रसंग चल पड़ा कि अन्तराल राजकुमारी कुन्तल को ब्याह कर लाएगा, जैसे अभी से शहनाई का स्वर सुनायी देने लगा हो।

"नील की अलवीरा कब आयेगी ?" अपूर्व खिलखिलाकर हँस पड़ा।

नीलकण्ठ चुप रहा।

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "अलवीरा से तो नील का जन्म-जन्म का परिचय है। वह कटक में पढ़ाती है और महानदी के किनारे रहती है। नील न ले जाए, तो मेरे साथ चलना। उसके हाथ की चाय तो तुम्हें मैं भी पिलवा सकता हूँ।"

"अच्छा ये रंग हैं।"

"वह कहेगी, मुझे भी कन्ध-प्रदेश दिखाओ।"

"तो दिखा देंगे। उसमें कौन मुश्किल है !"

"और राजकुमारी कुन्तल मिलेगी तो अलवीरा उससे कहेगी—मुझे अपना राज्य दिखाने कब ले चलोगी ?"

फिर तो जैसे जागरी अलवीरा-पुराण खोलकर बैठ गया। हलके-फुलके स्पर्शों में एक चित्र-सा उभरता चला गया।

अपूर्व बोला, "कन्ध-देश की दूसरी बात है। वह जो कालिदास लिख गए कि शकुन्तला वृक्षों को पिलाए बिना स्वयं जल नहीं पीती थी और अलंकार का शौक रखते हुए भी नये पल्लव तोड़ने की बात नहीं सोच पाती थी, इस परम्परा का दर्शन कन्ध-देश में कहीं-न-कहीं आज भी सम्भव है। पेड़ों में पहले फूल आते थे, तो शकुन्तला के लिए उत्सव का दिन होता था न ! वह उत्सव तो आज भी होता है, कन्ध-देश की शकुन्तलाओं के लिए।"

पूँछ उठाए दौड़ती बछिया की तरह उनकी याद मानो जंगल के बीचों-बीच दूर निकल गई।

"किसी मूर्ति का दर्शक के मन पर जितना प्रभाव पड़ता है, समझ लो उससे सात गुना प्रभाव दर्शक के अपने मन पर रहा होगा।" अलवीरा ने चाय की चुस्की भरते हुए कहा।

मूर्तिशाला की मूर्तियाँ मानो प्रशंसा के इस स्वर पर झूम उठीं।

नीलकण्ठ ने मुस्कराकर कहा, "बाबा की याद मूर्तिशाला का पहरा देती रहती है।

अलवीरा ने आरामकुरसी पर बैठे-बैठे डाँट पिलाई, "रूपक, तुम मूर्तिशाला की सफाई क्यों नहीं करते? धूल की मोटी तह जमी पड़ी है हर जगह!" और फिर वह थोड़ी खामोशी के बाद बोली, "जिसने पत्थर की जितनी अधिक मूर्तियाँ देखी हैं, उसने उतनी बार पत्थर के फूल खिलते देखे हैं। वह किसी ने कहा है न, समय के साथ जो प्रकाश में आता है, वही गुणी है। जो समय के पूर्व आता है, वह प्रतिभावान् है।"

"मैं तो वह प्रतिभावान् नहीं हूँ।" नीलकण्ठ छेनी रोककर बोला, "बाबा कहा करते थे, हम बाहर बिखेरं दिये गए हैं और इसीलिए भीतर से खोखले हो गए। हम अन्तर्मुखी होना भूल गए।"

"मेरी मूर्ति इतने दिन बाद बनाने की बारी क्यों आई?"

"क्योंकि तुमने अन्तर्मुखी होकर अपने मन को पहचानने में इतनी देर लगायी।"

नीलकण्ठ चौकी पर बैठा ऊँची मूर्ति गढ़ रहा था। बड़ी मुश्किल से वह अलवीरा को मॉडल बनने के लिए तैयार कर पाया था।

चूल्हें में धुआँ छोड़ती आग की तरह उसे उन दिनों की याद आने लगी, जब वह लन्दन से चला आया था और अलवीरा पीछे रह गई थी, और फिर वह उस समय तक न आ सकी, जब तक लड़ाई बन्द नहीं हो गई।

अलवीरा ने मुस्कराकर कहा, "जानते हो, शेली ने प्रेम की क्या व्याख्या की है—'ए मिरर हूज़ सरफेस रिफ्लैक्ट्स ओनली दि फार्म्स ऑफ़ प्यूरिटी एण्ड ब्राइटनेस !'"

रूपक मुँह बाए देखता रह गया। वह कुछ न समझ सका। न जाने क्या सोचकर बोला, "जिस दिन कोई मूर्ति पूर्ण हो जाती है, उस दिन जैसे मूर्तिशाला नयी महक से भर जाती है।"

"रहने भी दे, रूपक ! नानी के आगे ननिहाल का बखान !" नीलकण्ठ हँस पड़ा।

कोइली की दादी ने भीतर से आकर मूर्ति पर नज़रें जमा दीं। बोली, "पत्थर मुँह से बोल उठा, नील बेटा !"

"मैंने वादा ले लिया है, नील ! यह मूर्ति मुझे ही दे डालनी होगी।" अलवीरा मुस्करायी।

"तुम ले लेना, बेटा !" दादी ने थाप लगाई, "यह पत्थर का टुकड़ा क्या तुमसे मँहगा है ?"

"मैं हँसती नहीं, नील ! सचमुच मूर्ति लेके छोड़ूँगी।"

"मैं कब इन्कार करता हूँ ! पहले बन तो जाने दो।"

"तुम्हारे वादे पर मुझे पूरा भरोसा है, नील !"

दादी के मुँह पर एक फीकी-सी हँसी आ गई। बोली, "अगर नील ने मूर्ति न दी, तो तुम इसे झूठा कहोगी ?"

"एक सौ एक बार भूठा कहूँगी ।"

नीलकण्ठ ने कहा, "जानती हो, तुम्हारी मूर्ति कब पूरी होगी ?—कल, परसों, तरसों, नरसों ?"

"इसका ज्ञान तो तुम्हें ही हो सकता है ।" अलवीरा मुस्करायी, "तुम मुझे पत्थर में बाँध रहे हो । मैं तो कहती हूँ, आज ही बाँध डालो पूरी तरह ।"

"तुम्हारे मन का आलोक तो आना चाहिए पत्थर में ।"

"लाओ न ! मैं क्या रोकती हूँ ?"

इतने में जागरी और अपूर्व आ पहुँचे । अलवीरा को यह पता चलते देर न लगी कि अपूर्व कन्ध-देश के एक स्कूल में पढ़ाता है और उसने एक कन्ध-कन्या से विवाह किया है ।

"मुझे भी ज़रूर दिखाना कन्ध-देश से आयी हुई बहू ।" अलवीरा ने आँखें नचाकर कहा ।

"ज़रूर दिखाएँगे ।" जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "पहले तुम पत्थर में उतर लो ।"

"तुम इस गाँजे से मुक्ति नहीं पा सकते, जागरी !" अलवीरा ने चोट की ।

"यह तो अब प्राणों के साथ जाएगा ।"

नीलकण्ठ बोला, "तुम जागरी की खोपड़ी से गाँजा छुड़ा सको, तो यह मूर्ति तुम्हारी हो गई समझो ।"

"पहले इसे पूर्ण तो करो । यह तो वैसे ही मेरी हो चुकी ।"

कॉलिज में तीन छुट्टियाँ थीं। तीन दिन निरन्तर आती रही अलवीरा। मूर्ति पूर्ण होने पर साथ ले जाने को तैयार हो गई। उसकी कल्पना में यह बात नहीं आई थी कि मूर्ति इतनी सुन्दर बनेगी। "अच्छा तो मैं इतनी सुन्दर हूँ ?" सहज ही यह प्रश्न उसके ओंठों पर आ गया।

नीलकण्ठ हँस पड़ा, "आधा सौन्दर्य तुम्हारा है, आधा मैंने अपनी ओर से जोड़ दिया, विधाता के समान !"

जागरी की देखा-देखी अपूर्व ने भी कह डाला, "कर-करा लो शादी-वादी। अब तो मौसम है ! क्यों अलवीरा दीदी ?"

बैलगाड़ी में मूर्ति रखवाते समय अलवीरा बोली, "सिर पर साड़ी का पल्लू अच्छा लगता है।"

"मूर्ति में भी और वैसे भी।" जागरी हँस पड़ा।

"तो फिर शादी कब करोगी, अलवीरा दीदी ?" अपूर्व ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा।

अलवीरा ने कहा, "यही प्रश्न कॉलिज में सभी प्रोफ़ेसर करते हैं। बस वे मुझे दीदी नहीं कहते।" वह उदास हो गई, जैसे विवाह का मुहूर्त उसकी पकड़ से निकला जा रहा हो।

मूर्तिशाला में दादी ने अलवीरा के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया।

इतने में श्यामली आ गई। अपूर्व बोला, "यह है मेरी पत्नी।"

अलवीरा ने श्यामली को बाँहों में कसते हुए कहा, "अपूर्व तुम्हें खुश तो रखता है न ?"

"क्यों नहीं ?" श्यामली मुस्करायी, "तुम अपनी कहो, दीदी ! तुम्हारा शुभ विवाह कब और किससे हो रहा है ? हमें भी बुलाओगी न ?"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं ?"

"अब तक तुमने शादी क्यों नहीं की, दीदी ?" श्यामली चुप न रह सकी, "किसका नक्शा है तुम्हारे दिमाग़ में ? कुछ हमें भी बताओ।"

दादी ने अलवीरा का पक्ष लेते हुए कहा, "अरे श्यामली, तुम तो पीछे ही पड़ गईं हाथ धोकर। चलो यही समझ लो, अभी तक अलवीरा ने कुछ सोचा ही नहीं।"

"यही तो मैं कहती हूँ, क्यों नहीं सोचा ? मौसम बीता जा रहा है।" श्यामली हँस पड़ी, "घर की रानी बनने से चूक जाना, इससे बड़ी मूर्खता क्या होगी ?"

"शाबाश, श्यामली !" अपूर्व ने अपनी पत्नी की पीठ ठोकी।

"ख़ुद कमाने-खाने वाली लड़की को घर की रानी बनने की क्या ज़रूरत है ?" नीलकण्ठ ने थाप लगाई।

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "हम तो अलवीरा को अपने जैसा करके छोड़ेंगे।"

"तो अब चलना चाहिए।" अलवीरा मुस्करायी।

"अभी बहुत समय है गाड़ी में।" नीलकण्ठ ने जिम्मा लेते हुए कहा, "गाड़ी पर पहुँचा देंगे। गाड़ी मिल जाएगी।"

"तुम विवाह को बन्धन तो नहीं मानतीं, दीदी ?" श्यामली ने पूछा, "हम दोनों पढ़ाते हैं। हममें से कोई भी विवाह को बन्धन नहीं मानता।"

जागरी ने शह दी, "मेरी सोना ने गुरुचरण की रासलीला-मण्डली

में काम शुरू किया तो मुझे बुरा ज़रूर लगा था। अब तो बुरा नहीं लगता। काम करने और पैसा कमाने में क्या बुराई है ? चार पैसे मैं भी कमा लेता हूँ, भुवनेश्वर के यात्रियों को मन्दिर दिखा-दिखाकर।"

दादी ने कहा, "कभी फिर बहस कर लेना जमकर। गाड़ी न निकल जाए।"

"अभी बहुत समय है।" नीलकण्ठ ने टंकार लगाई।

थोड़ी देर की चुप्पी के बाद अलबीरा ने कहा, "तुमने मुझे पत्थर में उतार दिया, नील ! अब चाहे मैं मर भी जाऊँ तो चिन्ता नहीं।"

"मरें तुम्हारे दुश्मन !" जागरी चुप न रह सका।

अलबीरा के ओंठों पर मुस्कान नाचने लगी।

श्यामली हँसी को दबा रही थी। बाहर से बैलगाड़ी वाले ने चिल्ला-कर कहा, "अभी चलने में कितनी देर है ?"

"अभी चलते हैं।" नीलकण्ठ ने तुरन्त उत्तर दिया।

जाने की घड़ी साँस गिन रही थी। अलबीरा चाहती थी, श्यामली कुछ कहे, चाहे फबती ही कसे।

दादी ने कहा, "याद है, नील ! तुम्हारे बाबा कहा करते थे—ब्रह्मा पत्थर की मूर्ति में भी प्राण डाल सकते हैं। मैं उनकी इस बात का विरोध करती, तो वे कह उठते थे, जब मैं नहीं रहूँगा तो मेरी मूर्तियाँ तुम से बात करेंगी। अब मैं ऐसा ही देख रही हूँ। वे नहीं रहे। उनकी मूर्तियाँ मुझसे बातें करती हैं। मैं तो सोचती हूँ, वे पत्थर में चार नहीं, चौदह अध्याय लिख गए।"

जागरी बोला, "उसका क्या बना ? अन्नदा बाबू कलकत्ते में बाबा की मूर्तियों की प्रदर्शनी करना चाहते हैं न ?"

"होने को तो वह प्रदर्शनी पिछले साल ही हो जाती।" दादी ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "पर मुझे डर है कि नारायण प्रदर्शनी के बाद बहुत सी मूर्तियाँ हथियाकर बेच न डाले।"

"तो क्या बुरा है, दादी ? पैसा आएगा। पैसा क्या बुरा है ? यहाँ

पड़ी-पड़ी कौनसा दूध दे रही हैं मूर्तियाँ ?" जागरी ने बलपूर्वक कहा।

"पर मैं जीते-जी ये मूर्तियाँ नहीं बिकने दूँगी।" दादी ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "कलकत्ते में प्रदर्शनी तभी हो सकती है, जब अन्नदा बाबू गिनकर मूर्तियाँ ले जाने और फिर यहाँ लौटा जाने का ज़िम्मा लें।"

"बाबा की मूर्तियों की प्रदर्शनी तो हर हालत में होनी चाहिए।" अलवीरा ने सुझाव दिया, "मैं अन्नदा बाबू को लिखूंगी, क्यों न बाबा-पोते की मूर्तियों की प्रदर्शनी एक साथ की जाए ?"

"मेरी मूर्तियों को अभी छोड़ो। अभी मेरी सम्भावना ने प्राप्ति का रूप नहीं लिया।" नीलकण्ठ ने मूर्तिशाला में एक ओर रखी अपनी मूर्तियों को देखा, जैसे आँखों-ही-आँखों में वह उनका मूल्य आँक रहा हो।

दादी बोली, "अब अलवीरा को छोड़ आओ, बेटा, नहीं तो गाड़ी निकल जाएगी।"

जागरी ने दादी की शह पाकर नीलकण्ठ को उठाकर खड़ा कर दिया और पास पड़ी मूर्तियों की ओर देखकर बोला, "अलवीरा, पत्थर का अपने-आपमें क्या मोल है ? उसे कीमती बनाते हैं मूर्तिकार के हाथ, जो उसे मूर्ति में ढालते हैं। अच्छा तो अब चलना चाहिए।"

"अभी बहुत समय है।" नीलकण्ठ ने घड़ी देखकर कहा।

बाहर से बैलगाड़ी वाले ने आवाज़ दी, "नहीं जाना तो गाड़ी छोड़ दो, बाबू !"

अलवीरा हिरनी का तरह कुलाँचें भरती हुई गाड़ी में जाकर बैठ गई। उसके पीछे-पीछे नीलकण्ठ और जागरी जा बैठे।

गाड़ी चली तो बातें होने लगीं।

"रथ-यात्रा देखने चलेंगी न ?" जागरी ने पूछा।

"क्यों नहीं ?" अलवीरा ने सिर हिलाकर कहा, "कलकत्ते से अन्नदा बाबू भी आएँगे। वहीं प्रदर्शनी की बात भी कर लेंगे उनसे।"

जब वे स्टेशन पहुँचे, गाड़ी छूटने ही वाली थी। नीलकण्ठ टिकट ले आया। जागरी ने मूर्ति उठाकर डिब्बे में जा रखी। अलवीरा भी वहाँ

जा बैठी और गाड़ी चल पड़ी।

डिब्बे की खिड़की से अलवीरा देर तक नीलकण्ठ और जागरी के लिए रूमाल हिलाती रही।

धौली के रास्ते में जागरी ने नीलकण्ठ से कहा, "अब तो मामला पटरी पर आ गया, प्यारे!"

नीलकण्ठ कुछ न बोला, पर उसके मुख पर मानो चाँदनी-धुली यादें उभर आईं। जागरी भी आँखों-ही-आँखों में कहता रहा—यौवन-मदिरा ऐसी ही वस्तु है, प्यारे! चकित चितवन। मतवाला हास-विलास। रूप-गर्विता कन्या की अमर मुस्कान।...

"तो फिर क्या इरादे हैं, प्यारे?"

"देखा जाएगा।"

"अलवीरा में मन रमा नहीं?"

"अभी यह कथा छोड़ो।"

"बाबा का ध्यान आ गया। बाबा तो नहीं चाहते थे कि तुम अलवीरा से विवाह करो। और वैद्यजी भी इसीलिए रोकते हैं।"

"बाबा का युग बाबा के साथ था। अब हमारा युग है। वैद्यजी यह नहीं समझते।"

"वैद्यजी को मैं मना लूँगा।"

घर की राह में फिर वे कुछ न बोले। पर युग-युग की प्यासी कथा मानो उस खामोशी में भी लम्बे डग भरती रही।

पुरी की रथ-यात्रा में सम्मिलित होने के लिए एक लाख से भी अधिक तीर्थयात्री और दर्शक पच्चीस जून की सन्ध्या तक आ पहुँचे। रात-भर बादल घिरे रहे और बिजली चमकती रही।

छब्बीस की सुबह से ही वर्षा आरम्भ हो गई। तीर्थयात्री वर्षा की परवाह न करते हुए रथ-यात्रा में शामिल हुए। राजकुमारी ने मुँह से पानी पोंछते हुए कहा, "यह उत्सव भगवान् कृष्ण की वृन्दावन से मथुरा तक उस विजय-यात्रा के उपलक्ष्य में मनाते हैं, जिसके बाद उन्होंने कंस का वध किया था।"

"इस रथ-यात्रा का अपना रंग है और अपनी परम्परा।" अन्तराल मुस्कराया, "जैसे शरीर में आत्मा छिपी रहती है, वैसे ही रथ-यात्रा में भक्तों की भावना।"

"जैसे कला में कलाकार का व्यक्तित्व।" राजकुमारी ने स्वप्निल आँखों से जैसे कुछ याद करते हुए कहा, "वह बात तो तुमने भी पढ़ी होगी। बाहर से आये एक चित्रकार का चित्र देखकर एक बादशाह कह उठा था—'इस शिल्पी को कारागार में डाल दो। वह इस देश में विदेश की ओर से खुफ़ियागिरी कर रहा है!' उत्सव में देश की आत्मा उसी

तरह रहनी चाहिए, और यह परम आवश्यक है कि हम उसे समझें।"

वर्षा से बचने के लिए वे एक दुकान में घुस गए। अपार भीड़ में रथ नज़र आ रहा था। ज़ोर का पानी पड़ रहा था। लोग मज़े से भीग रहे थे। आज पानी को जमकर बरसने से कोई नहीं रोक सकता था। वर्षा का अपना संगीत था। पर जैसे हर कोई सोच रहा हो—रथ-यात्रा में वर्षा ने इतना कष्ट न दिया होता! पानी-ही-पानी। फुहारों की झड़ी। क्या ये बादल भक्तों की परीक्षा लिये बिना नहीं रह सकते थे?

"पानी के साथ ही मेरा दिल धड़क रहा है।" राजकुमारी ने हँसकर कहा, "थोड़ा रुक क्यों नहीं जाती वर्षा?"

पास ही कुछ अधनंगे नटखट बच्चे शोर मचाते बादलों को पुकार रहे थे। उनका शोर जैसे भक्तों की भक्ति पर छाने की क्षमता रखता हो। ये बादल जैसे कोई कथा कह रहे हों।

अन्तराल ने कहा, "खूब फँसे।"

"हमारे सिर पर तो छत है।" राजकुमारी चुप न रह सकी, "उनका खयाल करो, जो पानी में भीग रहे हैं। तुम्हारा बस चले तो इस भीड़ को सम्मुख पाकर भी तुम वही रट लगाओगे—मैं अकेला!"

"निस्सन्देह मैं अकेला हूँ।"

"मेरे रहते भी?"

"तुम अपनी जगह अकेली हो।" अन्तराल चुप न रह सका।

पानी बराबर बरस रहा था। न भीड़ बच सकती थी, न रथ। राजकुमारी ने कहा, "यह बात तो उन लोगों को सोचनी चाहिए थी जिन्होंने रथ-यात्रा के लिए यह मौसम चुना। अब भीगने की शिकायत क्यों?"

पास से किसी यात्री की आवाज़ आ रही थी, "देश के चार धामों में एक है जगन्नाथपुरी। आज के दिन, आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को आरम्भ होती है यहाँ की रथ-यात्रा।" उत्तर में सामने वाला व्यक्ति बोला, "यह तिथि पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो रथ-यात्रा का महत्त्व बढ़

जाता है।"

सभी जानते थे, जगन्नाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा वैशाख शुक्ला अष्टमी, गुरुवार को पुष्य नक्षत्र में हुई थी। तभी से अजन्मे महाप्रभु का जन्म-दिवस ज्येष्ठ पूर्णिमा को मनाने की बात चल पड़ी, जब कि एक पखवारे तक पुरी का मन्दिर वन्द रखते हैं। इस अवधि में भगवान् जल-यात्रा करते हैं और आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को रथारूढ़ भगवान् भक्तों को दर्शन देते हैं। भगवान् की मूर्ति के साथ बहन सुभद्रा और भाई बलराम की मूर्तियाँ रहती हैं। तीनों मूर्तियाँ काष्ठमयी ही होनी चाहिएँ, यही प्रथा चली आई है।

राजकुमारी ने कहा, "ज्येष्ठ पूर्णिमा को मन्दिर के पट बन्द होने से पहले तीनों मूर्तियों को एक सौ आठ स्वर्ण-कलशों से स्नान कराते हैं।"

"वह तो पन्द्रह दिन पहले की बात है।" अन्तराल ने चुटकी ली, "तुम्हारा मन पन्द्रह दिन पीछे चल रहा है। अब वह कथा न कहने लग जाना कि सर्वप्रथम राजा इन्द्रद्युम्न ने मन्दिर बनवाकर उसमें मूर्ति प्रतिष्ठित करने का विचार किया।"

"वह कथा कैसे नहीं कहूँगी ? भगवान् ने सपने में राजा को आदेश दिया···"

"सो तो कौन नहीं जानता कि सपने में मिले आदेश के अनुसार राजा ने समुद्र-तट पर स्थित विशाल वृक्ष को कटवाया ताकि उससे मूर्ति बनाई जाए।"

"भगवान् ने स्वयं विप्र-रूप धारण कर वहाँ दर्शन दिये और विश्व-कर्मा को समझाया कि मूर्ति का आकार-प्रकार कैसा होना चाहिए।"

"यह भी तो कहते हैं—जब राजा ने भगवान् की मूर्ति प्रतिष्ठित की, तो उसी समय भगवान् ने राजा की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली थी कि उन्हें एक सप्ताह-पर्यन्त उपवन-विहार कराया जाए। तभी से यह रथ-यात्रा चली आ रही है।"

पानी थमने का नाम नहीं ले रहा था। भीगते भक्तों की हर्ष-ध्वनि

ऊँची उठती गई। पास खड़ा कोई यात्री कह रहा था, "यह एक आश्चर्य-जनक बात है। भगवान् की लीला! एक निश्चित अवधि के पश्चात् भगवान् की मूर्ति बदलनी होती है। तभी निश्चित समय पर उड़ीसा के समुद्र में बहती हुई लकड़ी पण्डों के हाथ लग जाती है और उसी से तीनों मूर्तियाँ बनाई जाती हैं।"

सभी जानते थे कि भगवान् के रथ प्रति वर्ष बनाए जाते हैं। इस ज़ोर की वर्षा में असाधारण आकार वाले रथ भीग रहे थे। उन्हें खींचने के लिए हज़ारों वाहक तैयार खड़े थे। वाहकों को मन्दिर की ओर से काफ़ी भूमि मिलती है, यह बात किसी से छिपी न थी। रथ खींचने में अन्य श्रद्धालु भी हाथ बटाने को तैयार खड़े थे।

ठीक समय पर जगन्नाथजी का पैंतालीस फुट ऊँचा और पैंतीस फुट लम्बा रथ चल पड़ा। उसमें सात फुट व्यास के सोलह पहिये लगे थे। साथ में बलरामजी का रथ था चवालीस फुट ऊँचा, चौदह पहियों वाला। सुभद्राजी का रथ तेंतालीस फुट ऊँचा था, बारह पहियों वाला।

राजकुमारी और अन्तराल भी भीड़ के साथ हो लिए। पुरी से तीन मील की दूरी पर जनकपुर पहुँचकर भगवान् को वहाँ तीन दिन तक विश्राम करना होता है। वहीं लक्ष्मी उनसे मिलने आतीं। चलते-चलते राजकुमारी ने कहा, "पहले रथ-यात्रा के समय लोग रथ के आगे लेटकर प्राणोत्सर्ग कर देते थे, किन्तु अब···"

"वह प्रथा कभी की बन्द की जा चुकी है।" अन्तराल ने आँखों पर बरसाती टोपी सरकाकर कहा, "हे भगवान्, क्या थोड़ी देर वर्षा बन्द नहीं कर सकते? भक्तों की परीक्षा अभी बाकी है क्या?"

"तीन दिन बाद भगवान् जनकपुर से पुरी के मन्दिर में लौट आते हैं।" राजकुमारी ने बरसाती को कसते हुए कहा, "अन्तराल, हम जनक-पुर नहीं जाएँगे। घर चलकर आराम करेंगे। वर्षा न होती तो जनकपुर हो आते।"

रथ-यात्रा जनकपुर के रास्ते पर चली जा रही थी। अन्तराल और

राजकुमारी ने घर की राह ली।

पानी अब तक थमने का नाम नहीं ले रहा था। बड़ी मुश्किल से एक रिक्शा मिली। दोनों उसमें बैठकर बोले, "गवर्नमेंट हाउस से आगे, राजा साहब का बँगला।"

समुद्र-तट पर राजा साहब का बँगला प्रसिद्ध था। रिक्शा वाला रिक्शा खींचता हुआ उधर को दौड़ लगा रहा था। उसके अधनंगे शरीर पर पानी की बौछार पड़ रही थी। राजकुमारी और अन्तराल रिक्शा की छत के नीचे दुबके बैठे थे।

बंगले पर पहुँचकर उन्होंने रिक्शा वाले को पैसे देकर चलता किया।

ऊपर पहुँचे तो राजा साहब बोले, "मैं परेशान हो रहा था। चलो तुम आ गए।"

"पापा, आपने रथ-यात्रा नहीं देखी ?" राजकुमारी ने बरसाती उतारते हुए कहा, "आप वर्षा से डर गए।"

"वर्षा से डरने की बात न थी," राजा साहब मुस्कराकर बोले, "स्वयं महाप्रभु नहीं चाहते थे, नहीं तो मुझे ज्वर क्यों हो आता ?"

वर्षा अभी तक रुकी न थी। सामने समुद्र का दृश्य वर्षा में और भी सुन्दर लग रहा था।

अन्तराल चुपचाप राजा साहब के सम्मुख खड़ा जैसे किसी हुक्म की प्रतीक्षा कर रहा हो। "बैठ जाओ, अन्तराल !" राजा साहब बोले, "तुम भी तो थक गए होगे। मेरी तबीयत अब ठीक है।"

खाने का समय कभी का गुज़र चुका था। बैरे ने बिना पूछे ही खाना लगा दिया। वे खाने के लिए जाने लगे, तो राजा साहब बोले, "तुम लोगों की शक्ल देखकर ही बैरा समझ गया कि भूख के मारे बुरा हाल है।"

"पापा, मैं तो तीन दिन उपवास कर सकती हूँ।" राजकुमारी हँस पड़ी।

"मैं तो एक दिन भी भूखा नहीं रह सकता ।" अन्तराल भी चुप न रह सका ।

खाना खाते-खाते अन्तराल ने कहा, "न अलवीरा आई, न नीलकण्ठ । आए होते तो हमें न मिलते ?"

"रथ-यात्रा में नहीं तो और कब आएँगे ?" राजकुमारी ने मुँह बनाकर कहा, "छोड़ो । वे मिलना नहीं चाहते तो हम क्या कर सकते हैं ?"
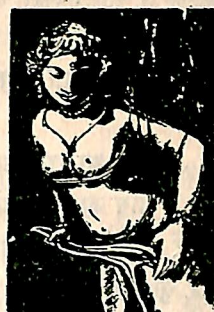
आरामकुरसी पर बैठे राजा साहब अख़बार पढ़ रहे थे। बीच-बीच में अख़बार से नज़र हटाकर सामने समुद्र का दृश्य देखने लगते। उनसे कुछ भी छिपा सकना सहज नहीं था। उनकी मुस्कान साफ़ कह देती थी कि उनकी दृष्टि में सब-कुछ पारदर्शी है। कैसी भी परिस्थिति हो, झुकना तो उन्होंने सीखा ही न था। उनके सोचने-समझने की शक्ति एक बार ज़रूर कुण्ठित हो गई थी, जब उनकी स्टेट पर उनका आधिपत्य जाते-जाते बचा। अंग्रेज़ एजेण्ट से उनकी ठन गई थी और उसने यह फैसला कर लिया था कि राजा साहब को पागल घोषित करके उनके हाथ से सब शक्ति छीन ले। उस संकट के समय अन्तराल ने ही उस गुत्थी को सुलझाया। तभी से वह उनका विश्वासपात्र बन गया था।

कोई पुत्र न होने से राजा साहब राजकुमारी कुन्तल को पुत्र से भी अधिक मानते थे। उसे साथ लेकर वे विदेश-यात्रा कर आए थे। महारानी भी उन यात्राओं में साथ रहीं। इधर महारानी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। डॉक्टर की हिदायत के अनुसार वे पुरी में ही रहती थीं। माँ की सेवा में कुन्तल भी यहीं रहती।

अख़बार पढ़ते-पढ़ते राजा साहब ने सोचा, 'सवेरे से गायब है

कुन्तल ! वैसे चिन्ता की बात नहीं, अन्तराल साथ है। अन्तराल हमारी कुल-मर्यादा का ध्यान रखता है। महारानी को कम्पलीट रेस्ट चाहिए। फिर भी सारे दिन कुन्तल का गायब रहना तो अच्छा नहीं। उसे समझाना होगा।'

बैरे ने आकर बताया, "महारानी साहिबा सो रही हैं।"

"जाग जाएँ तो हमें बताना।" कहकर उन्होंने फिर अख़बार पर नज़रें जमा दीं। वे सोचने लगे, 'महारानी कई बार अन्तराल की प्रशंसा कर चुकी हैं। अपनी जगह महारानी ठीक सोचती हैं। कहीं वे कुन्तल की बातों में आकर तो ऐसा नहीं सोचतीं ? ऐसा नहीं हो सकता। आज तक ऐसा नहीं हुआ। कुन्तल जानती है। शाही रक्त का महत्त्व कुन्तल कैसे नहीं जानेगी ? यह नहीं होगा। महारानी का सोचने का ढंग और है। यहाँ हमारा समझौता नहीं हो सकता। कुन्तल के रंग-ढंग से जान पड़ता है कि वह अन्तराल को चाहती है। अन्तराल गम्भीर और शान्त है। वह हमारा नमक खाता है। उसने संकट के समय हमारी मान-मर्यादा की रक्षा की। उसके बदले में क्या वह कुन्तल से विवाह करने की बात सोच सकता है ? माना कि महारानी की यही इच्छा है। वह बीमार हैं। बीमार का मन रखने के लिए मैं खुलकर विरोध भी नहीं कर सकता। फिर भी यह कैसे हो सकता है कि मैं शाही रक्त का ध्यान न रखूँ ?...'

अखबार की ख़बरों में मन नहीं रम रहा था। महारानी जाग गई होतीं तो वे अभी जाकर उनसे बात करते। वे सोचने लगे, 'महारानी कब तक सोती रहेंगी ? बात तो करनी होगी। अच्छा भई, तुम घर-जमाई चाहती हो न ! तो क्या घर-जमाई किसी राजवंश का व्यक्ति नहीं मिल सकता ? अन्तराल को घर-जमाई बनाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इतने दिनों से मैंने अन्तराल को जाना-परखा है। मेरी इच्छा के विरुद्ध वह कदम नहीं उठाएगा। कुन्तल के साथ घूमने से मुझे यह बात असह्य लगती है कि कुन्तल का विवाह शाही रक्त से बाहर करूँ। कुल-मर्यादा इतनी आसानी से नहीं छोड़ी जा सकती। मैं महारानी को समझाऊँगा। वह

कुन्तल को समझाएँगी। कुन्तल ज़िद नहीं करेगी। मेरी बात ही आधार बनेगी। वही अनिवार्य है। मुझे भ्रम नहीं। राजवंश की मर्यादा का उल्लंघन तो अपने को ही ठगने वाली बात होगी। नहीं-नहीं, यह नहीं होगा।'

इतने में कुन्तल हिरनी की तरह कुलाँच भरती आई और राजा साहब के पास आकर बोली, "पापा, कलकत्ते से अन्नदा बाबू आये हैं।"

"और भी कोई आया है क्या ?" राजा साहब ने पूछा।

"नीलकण्ठ और अलवीरा भी आये हैं। अपूर्व और श्यामली भी।"

"अपूर्व और श्यामली कौन हैं ?" राजा साहब ने चकित होकर कहा, "ये दो नाम तो पहली ही बार सुने।"

"पापा, अपूर्व भी नीलकण्ठ के धौली का निवासी है। श्यामली एक कन्ध-कन्या है, जिसके साथ अपूर्व ने विवाह किया है।"

"तो कहाँ हैं वे लोग ?"

"समुद्र-तट पर घूम रहे हैं। वे रहे !" उसने हाथ के संकेत से बताया। पर इतनी दूर से किसी की पहचान तो असम्भव थी।

"कब आये वे लोग ? रथ-यात्रा पर आ गए थे, तो दो रातें कहाँ गुज़ारी ?"

"होटल में ठहरे हैं, पापा ! रेलवे होटल में।"

"यहाँ क्यों नहीं चले आए ? उन्हें बोलो, यहाँ चले आएँ।"

"मैं बोल आई हूँ। समुद्र-तट पर टहलते हुए मिल गए। अन्तराल को उनके साथ भेजकर आ रही हूँ। सामान लेकर आयेंगे।"

"यह तो अच्छा किया, कुन्तल !" राजा साहब ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "अन्तराल हमारा हितैषी है। उसने हमारी स्टेट को संकट से बचाया है।"

कुन्तल बोली, "मम्मी क्या अब तक सो रही हैं ? मैं जाकर देखूँ।" वह उठकर चली गई।

वर्षा थम गई। मौसम घूमने लायक है, यह सोचकर राजा साहब

मुस्कराये। उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'अख़बार में एक ही ख़बर ऐसी है, जो मन्दिर के घण्टे की तरह देर तक गूंजती रहे—रथ-यात्रा की ख़बर। एक लाख से ऊपर लोग रथ-यात्रा में सम्मिलित हुए। यह तो कल की भीड़ का मोटा हिसाब हुआ।'

दूर से आती हुई समुद्री हवा नारियल के पेड़ों से खेल रही थी। बड़े-बड़े पत्ते माँदर की तरह ताल देते जा रहे थे।

बँगले के एक ओर नारियल-कुंज भला लग रहा था, जैसे नारियल के पेड़ों में कहीं अन्तर्विरोध न हो। लम्बे कटावदार पत्ते जैसे कोई कथा कह रहे हों।

राजा साहब को उस घटना की याद आने लगी जब अन्तराल ने उन्हें उस संकट से बचाया था।

कुन्तल ने आकर कहा, "पापा, मम्मी सो रही हैं।"

"तुमने उन्हें जगाया नहीं, यह अच्छा किया।" राजा साहब मुस्कराये।

कुन्तल पास वाली कुरसी पर बैठ गई।

हवा नारियल के पत्तों को झंझोड़ रही थी। राजा साहब चुप बैठे रहे। उन्होंने देखा, कुन्तल बहुत उदास है, जैसे अभी-अभी रोकर आई हो। वे सोचने लगे—अन्तराल इतना बुरा भी नहीं है। इतना परिचय है दोनों में। एक-दूसरे को भली प्रकार जान गए हैं। कुन्तल की खुशी के लिए मैं क्या नहीं कर सकता ? राज्य-मर्यादा के लिए क्या मैं कुन्तल की खुशी में बाधा डालूँ ?···

"कुन्तल !" राजा साहब मुस्कराये, जैसे मुस्कराना उनकी आदत बन गई हो।

"क्या है, पापा ?"

"अपना तो केवल स्वप्न-भर ही है। अभी-अभी जैसे एक सपना मुझे छू गया।"

"कौनसा सपना, पापा ?"

"तुम्हारे बचपन का सपना। अब तो तुम बहुत दूर निकल आई हो बचपन से। मैं क्या समझाऊँ? तुम खुद समझदार हो। तुम मेरी बात मानो ही, यह क्या ज़रूरी है?"

"क्यों, ज़रूरी क्यों नहीं, पापा?"

"जो तुम्हें समझाना है, पहले तुम्हारी मम्मी को ही समझाना होगा। तुम क्या समझती नहीं हो?"

"पहेलियों में क्या रखा है, पापा?" कुन्तल हँस पड़ी, "मैं अपना ही चित्र देखकर खुश होने वाली लड़की नहीं हूँ। जिस बचपन में खिलौने अच्छे लगते हैं, वह तो पीछे छूट गया। पर अब क्या खिलौना बिलकुल नहीं चाहिए, पापा?"

राजा साहब मुँह फेरकर बैठे रहे।

"पापा, कल शाम इसी समय अन्तराल ने रवीन्द्रनाथ की कहानी 'हंगरी स्टोन्स' पढ़कर सुनाई।" कुन्तल कहती चली गई, "वह कहानी मैंने तीसरी बार सुनी। आपने भी पढ़ी होगी, पापा! उस महल में नूपुर अब भी बजते होंगे—सोती नर्तकियों के नुपूर। कौन जाने किस-किस मुद्रा में उन नर्तकियों की छायाएँ सिसकियाँ ले रही होंगी! मैं तो उस कल्पना में खो गई।"

राजा साहब बोले, "वे लोग अभी तक नहीं आये।"

"आते ही होंगे।" कुन्तल मुस्करायी, "आप वह कहानी ज़रूर पढ़ें, पापा! सारी कथा मानो सपने में साँस लेती है। खैर छोड़ो वह बात। नीलकण्ठ की बहन कोइली और अपूर्व का प्रेम था। पर बाबा के अनुरोध से कोइली कटक के एक वकील से ब्याही गई। अपूर्व को इस दुःख ने पागल बना दिया। वह धौली छोड़कर कन्ध-देश चला गया, जहाँ उसे श्यामली मिल गई।"

राजा साहब बोले, "बहुत सी कथाएँ सपने और यथार्थ के बीच लटकती हैं, कुन्तल! वे लोग अब तक नहीं आये। श्यामली से विवाह करने पर भी अपूर्व को कोइली की याद भुलाए नहीं भूलती होगी।"

"यही तो सपना है, पापा !" कुन्तल मुस्करायी।

"मेरी तबीयत तो आज ठीक नहीं। कुन्तल, तुमने कुछ खाया भी या नहीं ?"

"मेरी चिन्ता न किया करो, पापा ! मैंने पेट-पूजा कर ली है।"

पिता-पुत्री में फिर ख़ामोशी छा गई। थोड़ी ख़ामोशी के बाद कुन्तल बोली, "ख़ामोशी की सड़क पर कथा का कारवाँ चुपचाप गुज़रता रहता है। कथा के साथ न जाने कितने प्रसंग सही अर्थ ढूँढ़ रहे हैं। मस्तिष्क तटस्थ रहने की चेष्टा करता है। किसी कथा में तारे मुस्कराते हैं, किसी में चाँद-रूपसी कन्या के जूड़े का फूल बन जाता है।"

"कथा अपने को दोहराती रहती है, कुन्तल ! मूर्तिकार चतुर्मुख कहा करते थे—'जब हम नहीं होंगे, तब हमारी कथा होगी।' यह विचार मुझे झकझोर जाता है।"

"कथा ऐसी ही वस्तु है, पापा !"

"वे लोग अब तक नहीं आये। अन्नदा बाबू से कलकत्ते का हाल पूछते। अलवीरा कटक की बातें बताती। नीलकण्ठ धौली की कथा उछालता और वह कन्ध-कन्या कन्ध-देश की कहे बिना न रहती।"

"और मैं अपनी कथा कहूँगी।" कुन्तल हँस पड़ी।

"हम अपूर्व से पूछेंगे, श्यामली उसे कैसे मिली ?"

"हवा की तरह मिली होगी। क्यों, पापा !" कुन्तल ने आँखें नचा-कर कहा।

"एक दिन तुम भी हवा की तरह किसी को मिलोगी।" राजा साहब मानो बेटी की विदा की कल्पना में खो गए।

"मैं इतनी शीघ्र नहीं जाऊँगी, पापा !"

"जाना तो होगा एक दिन।"

दूसरे दिन सवेरे-सवेरे अलवीरा और अन्नदा बाबू राजा साहब से मिलने पहुँचे, तो पता चला कि अभी तो राजा साहब सैर करके नहीं लौटे।

कुन्तल ने उन्हें ऊपर बुलवा लिया, जहाँ बरामदे से समुद्र का दृश्य देखकर अलवीरा की आँखें खुशी से नाच उठीं। वह देर तक पुरी के सागर-तट की प्रशंसा करती रही, जिसकी उपमा वह बार-बार नारी-कथा से देती रही।

राजा साहब आये तो अलवीरा और अन्नदा बाबू ने झुककर अभिवादन किया।

"कल क्यों नहीं आये ?" राजा साहब ने पूछा, "नीलकण्ठ कहाँ रह गया ? दो आदमी और भी तो थे ? अन्तराल क्या कल से छुट्टी मना रहा है ?"

"वे होटल में होंगे, पापा !" कुन्तल बोल उठी।

"भई पहले इन्हें कुछ खिलाओ-पिलाओ।" राजा साहब ने आराम-कुरसी पर बैठते हुए कहा।

"हम कोई मेहमान नहीं," अलवीरा मुस्करायी, "हम ब्रेकफास्ट लेकर चले थे होटल से।"

"चाय आ रही है।" कुन्तल ने हँसकर कहा, "चाय की जगह तो निकालनी ही पड़ेगी। क्यों, अन्नदा बाबू ?"

"चाय भी लेंगे और चन्दा भी।" अन्नदा बाबू ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "आज हम बे-मतलब नहीं आये, राजा साहब !"

"कैसा चन्दा ?" राजा साहब चुप न रह सके, "अच्छे काम के लिए चन्दा मिलेगा। कितना चन्दा चाहिए ?"

"पाँच हज़ार।"

"दस हज़ार नहीं ?" राजा साहब हँस पड़े, "पाँच हज़ार वाला कौनसा चन्दा है ?"

"धौली के मूर्तिकार स्वर्गीय चतुर्मुख की मूर्तियों की प्रदर्शनी होने जा रही है, कलकत्ते में।" अलवीरा ने मुस्कराकर कहा, "देखिए, राजा साहब ! यह काम तो मूर्तिकार के जीवन-काल में ही हो जाना चाहिए था। मूर्तिकार की मृत्यु के बाद ही सही। यह बड़े राष्ट्रीय महत्त्व का काम है।"

"हम कब कहते हैं कि न हो ! पर पाँच हज़ार चन्दा ?" राजा साहब हँस पड़े।

"पाँच हज़ार से कम तो क्या खर्च होगा ?" अन्नदा बाबू मुस्कराए।

"तो सारी रक़म एक ही आदमी से चाहिए ?"

चतुर्मुख का गुण-गान होने लगा। लगता था, गुण-गान के लिए मृत्यु परम वरदान है।

अन्नदा बाबू बोले, "मूर्तियाँ धौली से कलकत्ते ले जानी होंगी। वहाँ ले जाने और वापस धौली पहुँचाने की बात है। जिस हॉल में प्रदर्शनी होगी, वहाँ का किराया देना होगा। कैटालाग छपेगा, उसका खर्च अलग। पब्लिसिटी पर भी खर्च करना होगा।"

राजा साहब हँसकर बोले, "पाँच हज़ार से क्या होगा ?"

"तो फिर ?"

"बजट बढ़ाकर दस हज़ार कर दें। प्रदर्शनी के साथ एक विचार-

गोष्ठी भी रखिए। उसमें भाग लेने को योग्य विद्वान बुलाइए। उन्हें फर्स्ट क्लास का आने-जाने का किराया दीजिए और कुछ पत्रम् पुष्पम् भी।"

"पर दस हज़ार कहाँ से मिलेगा ?" अलवीरा मुस्करायी।

"जहाँ से पाँच हज़ार मिलेगा।" राजा साहब जैसे पहले से उन्हें खुश करने के मूड में हों।

अलवीरा ने पूछा, "महारानीजी की तबीयत कैसी है ?"

"मम्मी को डॉक्टर ने कम्पलीट रेस्ट की हिदायत दी है।" कुन्तल ने चाय बनाते हुए कहा।

राजा साहब बोले, "पाँच हज़ार महारानी की ओर से, पाँच हज़ार मेरी ओर से। अब तो आप लोग खुश हैं ?"

अन्नदा बाबू बोले, "प्रदर्शनी पर तो पाँच हज़ार से अधिक नहीं लग सकता। उसी में विचार-गोष्ठी कर लेंगे।"

राजा साहब ने चाय की चुस्की भरते हुए कहा, "तो महारानी वाले पाँच हज़ार चतुर्मुख की विधवा पत्नी को दीजिए। प्रदर्शनी से उस बेचारी को क्या मिलेगा ?"

"हम आभारी हैं। आपकी कृपा-दृष्टि बनी रहे।" अलवीरा और अन्नदा बाबू एक स्वर होकर बोले।

"मैं सोच रहा था, चतुर्मुख की कीर्ति को स्थायी रूप दिया जाए।"

"जैसी आज्ञा।" अन्नदा बाबू चुप न रह सके।

"कटक में एक म्यूज़ियम नहीं बना सकते ?"

"क्यों नहीं ?"

"प्रदर्शनी के बाद म्यूज़ियम का काम हाथ में लें।"

"जैसी आज्ञा। प्रदर्शनी के अवसर पर आप कलकत्ते पधारेंगे ही ?"

"अवश्य।"

फिर राजा साहब विलायत-यात्रा की बात ले बैठे, जब कि अलवीरा से उनकी प्रथम भेंट हुई थी। यह जानकर वे खुश हुए कि विलायत से लौट-कर अलवीरा कटक के राबिन्शा कॉलेज में पढ़ाती है। वे बोले, "यूरोप

और अमेरिका की यात्रा में सब दूरी शेष हो गई थी। तुम्हारा गम्भीर मुख कई बार याद में तैरने लगता है, अलवीरा !"

"आपका स्नेह भुलाने की चीज़ नहीं, राजा साहब !" अलवीरा मुस्करायी, "कुन्तल ने आपका स्वभाव पाया है और माँ का रूप।"

राजा साहब बोले, "महारानी अच्छी हो जाएँ, उनके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना कीजिए।"

"महारानी अच्छी हो जाएँगी।" अलवीरा ने बलपूर्वक कहा।

राजा साहब के अन्तर में मानो एक करुण निस्तब्धता छा गई और इसकी झलक उनके मुख पर भी आ गई। वे सागर की ओर देखते हुए बोले, "हमें भी जाना होगा, एक दिन। बुलावा आकर ही रहेगा। यह यात्रा एक दिन शेष होकर रहेगी। पुरातन जाएगा नहीं, तो नूतन का अभिषेक कैसे होगा ? जीवन सुन्दर है, पर मृत्यु-रागिनी भी बज उठती है। यह कथा एक दिन शेष होकर रहेगी।"

समुद्र की ओर से नमकीन हवा आ रही थी। राजा साहब ने हज़ार-हज़ार के पाँच नोट अन्नदा बाबू को दिये और पाँच नोट अलवीरा को। फिर वे मुस्कराकर बोले, "अलवीरा को मम्मी से मिला लाओ, कुन्तल !"

अलवीरा ने अपने वाले पाँच नोट भी अन्नदा बाबू को थमा दिए और वह उठकर कुन्तल के साथ भीतर चली गई।

राजा साहब गम्भीर मुद्रा में समुद्र की ओर देखते रहे।

अन्नदा बाबू हज़ार-हज़ार के दस नोट हाथ में लिये बैठे थे। राजा साहब की उदारता ने उन्हें मोह लिया था। चतुर्मुख के निमित्त दस हज़ार निकालकर दे देंगे राजा साहब, यह तो वे सपने में भी नहीं सोच पाए थे। "ये पाँच हज़ार पाकर नीलकण्ठ की दादी फूली नहीं समाएगी, राजा साहब !" उन्होंने मधुर स्वर में कहा।

"धौली में वह त्रिमूर्ति तो पूर्ण हो गई ?"

"हाँ राजा साहब ! नीलकण्ठ ने महादेव की मूर्ति बनाकर त्रिमूर्ति

पूर्ण कर डाली बहुत दिन पहले। चतुर्मुख को शंख में विष-पान करते दिखाया गया है, उस मूर्ति में।"

"तो क्या यही प्रेरणा देने के लिए चतुर्मुख ने आत्म-हत्या की थी? काश, वे आज भी जीवित होते! उनके हाथ में जादू था। पत्थर में प्राण-प्रतिष्ठा करना उनके बाएँ हाथ का खेल था।"

अन्नदा बाबू गम्भीर होकर बोले, "उनकी साधना यह थी। पत्थर का संस्कार पहचानकर मूर्ति गढ़ने वाले मूर्तिकार अब कहाँ रह गए?"

"बुलके साहब मेरे परम मित्रों में हैं।" राजा साहब ने बात-से-बात निकाली। "पहले-पहल मैंने उन्हीं के मुख से चतुर्मुख की प्रशंसा सुनी, उन्हीं के पास चतुर्मुख की कुछ मूर्तियाँ देखीं। वे तो कहते हैं, चतुर्मुख के साथ उड़ीसा के मूर्तिकारों की एक महान् पीढ़ी शेष हो गई। मैं खुश हूँ कि आप लोग उनकी कीर्ति को स्थायी बनाने जा रहे हैं।"

"बुलके साहब की प्रेरणा हमारे साथ है। राजा साहब एक बार कलकत्ते में चतुर्मुख की मूर्तियों की प्रदर्शनी देख लें। फिर तो देश के कोने-कोने में चतुर्मुख की कीर्ति गूँज उठेगी।"

"ख्याति तो मूर्तिकार को जीवन-काल में ही मिलनी चाहिए थी।"

"जो नहीं हो सका, उसका तो पछतावा क्या? यह तो आप भी मानते हैं न, कि कलाकार अपनी कला में जीवित रहता है।"

राजा साहब बोले, "संयोग की बात थी। विदेश-यात्रा में अलवीरा और कुन्तल सहेलियाँ बन गईं। एक दिन एकाएक पता चला, अलवीरा बुलके साहब की लड़की है। मेरे मन-प्राण नाच उठे। फिर उसकी ज़बानी पता चला, चतुर्मुख का पोता नीलकण्ठ पाँच साल का मूर्ति-कला का कोर्स पूरा करके महायुद्ध शुरू होने से कुछ ही दिन पहले हिन्दुस्तान लौट गया। अलवीरा बात-बात में शेक्सपीयर का नाम लेती थी, और हिन्दुस्तान में उसकी दिलचस्पी उसके शेक्सपीयर-सम्बन्धी ज्ञान से किसी तरह कम नहीं थी। यात्रा में ऐसे साथी का मिल जाना बड़ी बात होती है।"

अन्नदा बाबू बोले, "असल बात तो आदमी के व्यक्तित्व की है, राजा साहब ! कटक में, जहाँ अलवीरा आजकल पढ़ाती है, किसी भी पढ़े-लिखे आदमी से पूछ देखिए, वह उसकी प्रशंसा करेगा। जब से यह बात उड़ गई है कि वह नीलकण्ठ से विवाह करेगी, उसका नाम हर किसी की ज़बान पर है।"

"बुलके साहब का क्या रुख है इस मामले में ?"

"उनकी ओर से अलवीरा को पूरी स्वतन्त्रता है।"

"तो अब अलवीरा के साथ नीलकण्ठ का विवाह पक्का है ?"

"यह तो अलवीरा से पूछिए कि वह शुभ-मुहूर्त कब आने वाला है ?"

राजा साहब अलवीरा की प्रशंसा करते हुए बोले, "बड़ी विचारवान् है अलवीरा। उसकी अटकल धोखा नहीं दे सकती। दोनों एक-दूसरे को जानते हैं, बचपन से। पाँच साल इकट्ठे रहे, इंगलैंड में। हम सोचते हैं, यह ठीक रहेगा।"

कुन्तल हँसती-हँसती आई। पीछे-पीछे अलवीरा थी।

"पापा, मम्मी ने एक साथ अलवीरा को आशीर्वाद और बधाई दे डाली।"

"किस बात पर ?" राजा साहब मुस्कराए।

"आप नहीं जानते, पापा ! अलवीरा शीघ्र ही नीलकण्ठ से विवाह कर रही है। उसने खुद मम्मी को बताया।"

"क्यों अलवीरा ? यह सच है ?"

अलवीरा चुप रही।

राजा साहब थोड़ी खामोशी के बाद बोले, "जीवन-साथी तो कुन्तल को भी चाहिए। पर हमारी एक मजबूरी है कि हम शाही रक्त से बाहर नहीं जा सकते। हम ठहरे सूर्यवंशी। हमारी कुल-मर्यादा बहुत कड़ी है।"

"क्या उसमें थोड़ी भी छूट नहीं हो सकती ?" अन्नदा बाबू ने पूछ लिया।

"यही तो कठिनाई है।" राजा साहब गम्भीर स्वर में बोले, "कुन्तल

भी समझती है। नहीं समझती तो समझना चाहिए। हम मजबूर हैं। राज्य-मर्यादा का मामला है।"

कुन्तल ने मुँह लटका लिया।

"क्या बेटी की खुशी राज्य-मर्यादा से भी ज़्यादा कीमती नहीं है, राजा साहब ?" अलवीरा ने पूछा, "यात्रा में क्या आप यह नहीं कहा करते थे कि विवाह में कुन्तल की भी आवाज़ रहेगी ?"

"कहने को तो अब भी कहता हूँ," राजा साहब ने स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा, "कुन्तल का कोई भाई होता तो और बात थी। सिंहासन सूना नहीं रह सकता। कुन्तल को ही बैठना होगा। उस दशा में जो घर-जमाई बनकर आए, वह शाही रक्त से ही होना चाहिए। हमारी प्रजा भी यही चाहेगी।"

कुन्तल और भी उदास हो गई। अलवीरा बोली, "मैं कुन्तल से सारी बात समझ लूँ, राजा साहब ! फिर मैं आपको अपना सुझाव दूँगी।" कहते-कहते अलवीरा उठकर खड़ी हो गई, "अब तो आज्ञा दीजिए।"

अन्नदा बाबू को परम शान्ति का अनुभव हो रहा था। काम जितना महत्त्वपूर्ण था, उतनी ही ज़िम्मेवारी से किया गया। मूर्तिकार चतुर्मुख का गौरव कला-मर्मज्ञों और दर्शकों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया। समाचारपत्रों ने विशेष परिशिष्ट प्रकाशित किए, जिनमें मूर्तिकार की महान् देन को सराहा गया।

महारानी की बीमारी के कारण राजा साहब नहीं आ सके थे। अलवीरा के ज़ोर देने पर राजकुमारी कुन्तल ने 'चतुर्मुख मूर्ति-प्रदर्शनी' का उद्घाटन किया। समाचारपत्रों ने राजकुमारी के उद्घाटन-भाषण के ये उद्गार प्रमुख स्थान पर प्रकाशित किए—

"मुझे खुशी है कि कलकत्ते के कला-प्रेमियों के सम्मुख आज चतुर्मुख मूर्ति-प्रदर्शनी आरम्भ हो रही है, जिसकी प्रतीक्षा बहुत दिनों से की जा रही थी। चतुर्मुख अस्सी वर्ष की आयु भोग चुके थे, जब कि विष-पान द्वारा वे स्वयं शून्य-यात्रा पर चल पड़े। तीन सौ से ऊपर मूर्तियाँ, जो यहाँ दिखायी जाने वाली हैं, मूर्तिकार की लम्बी साधना का प्रतिनिधित्व करती हैं। आप इन मूर्तियों को देखें, इनसे बातें करें, इनसे उन हाथों की कहानी सुनें, जिन्होंने छेनी-हथौड़ी की मदद से यह कला-सृष्टि रच दिखाई। रेखाओं

की कोमलता और गीतात्मकता तथा गोलाइयों की सृजनात्मक प्रेरणा यथार्थ और सपने के बीच का मार्ग अपनाती हैं। बहुत सी मूर्तियों में चतुर्मुख ने प्राचीन गाथाओं के चरित्र बड़ी बारीकी से हमारे सम्मुख प्रस्तुत किए हैं, जैसे वे हमारे साथ साँस ले रहे हों। मूर्तिकार की कल्पना कहीं भी सत्य की अँगुली नहीं छोड़ती।"

कुन्तल के साथ अन्तराल आया था, अलवीरा के साथ नीलकण्ठ। कुन्तल का आग्रह शिरोधार्य करते हुए अपूर्व भी श्यामलीसहित कन्ध-देश से कलकत्ते पहुँच गया था। अन्नदा बाबू ने उन्हें अपनी कोठी पर ठहराया।

प्रदर्शनी के तीसरे दिन कटक से कोइली और हरिपद भी आ गए। प्रदर्शनी में दर्शकों के अदम्य कुतूहल ने उन्हें बहुत प्रभावित किया।

कोइली को छोड़कर हरिपद ने दूसरे दिन कटक लौटते हुए कहा, "वकालत का धन्धा ही ऐसा है, नहीं तो मैं कुछ दिन और ठहर जाता।"

प्रदर्शनी सात दिन तक खूब जमी। लोगों के आग्रह से तीन दिन और बढ़ा दी गई।

कोइली और श्यामली को जैसे कन्ध-देश की कथा से ही अवकाश न मिलता, और अन्नदा बाबू उन्हें किसी-न-किसी कल्पना-लोक से खींचकर पत्थर की मूर्ति के समीप ले आते।

कुन्तल नीलकण्ठ को यात्रा-वृत्तान्त सुनाने बैठ जाती। उधर अलवीरा अन्तराल के मन की खोज लगाती कि वह कुन्तल को कितना चाहता है।

कुन्तल के केशों से मीठी ख़ुशबू उड़ती रहती। वह यात्रा की कथा कहती तो उसकी मुख-भंगिमा अन्तराल को बहुत प्रिय लगती। वह एकाग्र दृष्टि से उसकी ओर निहारता। जाने किस लोक की रूप-कथा किस गीत की झंकार बनकर बज उठती। और फिर वह कहती, "विवाह करूँगी तो तुमसे, नहीं तो कुँआरी ही रहूँगी।"

अपनी बात छोड़कर कुन्तल इस बात पर नाच उठती कि दिल्ली में इण्टरिम गवर्नमेंण्ट की स्थापना हो गई। उसके हाथ में समाचारपत्र था,

जिसमें इण्टरिम गवर्नमेण्ट के उप-प्रधान जवाहरलाल नेहरू का रेडियो-भाषण प्रकाशित हुआ था :

"वहनो और भाइयो,

"जयहिन्द। छः दिन हुए मैं और मेरे साथी हिन्दुस्तान की हुकूमत की कुरसियों पर बैठे। इस पुराने मुल्क में एक नई हुकूमत शुरू हुई, जिसका नाम हमने इण्टरिम गवर्नमेण्ट रखा और उसको हमने एक ऐसी मंज़िल समझा, जहाँ से पूरी आज़ादी हमको क़रीब दिखायी दे रही है। हमारे पास दुनिया के हर हिस्से से और हिन्दुस्तान के हर कोने से हज़ारों पैग़ाम और सन्देश मुबारकबाद के आये। लेकिन हमने लोगों के जोश को रोकने की कोशिश की और उनसे कहा कि कोई धूमधाम करने की ज़रूरत नहीं है। हम चाहते थे कि जनता समझे कि हम अभी सफ़र ही में हैं और मंज़िल तक नहीं पहुँचे। रास्ते में कई मुश्किलें और रुकावटें हैं और मक़सद को हासिल करना इतना क़रीब नहीं है जितना लोग समझते हैं। ऐसे मौके पर ज़रा-सी कमज़ोरी या ग़फ़लत भी हमारे काम को बहुत नुकसान पहुँचा सकती है।

"कलकत्ते के भयानक हालात के बाद, जहाँ पागलों और वहशियों की तरह भाई से भाई लड़े और एक-दूसरे को मारे, हमारे दिल भी रंज से भरे थे। जिस आज़ादी का ख्वाब हमने देखा था और जिसके लिए कई बरस से हमने मुसीबतें झेली थीं, वह सारे हिन्दुस्तान के रहने वालों के लिए थी, किसी एक गिरोह या फिरके या एक मजहब के लोगों के लिए नहीं थी। हम चाहते थे कि हिन्दुस्तान को ऐसा स्वराज्य मिले, जिसमें सभी बराबर के हिस्सेदार हों और सबको मौका मिले कि वे तरक्की कर सकें और ज़िन्दगी का पूरा फ़ायदा उठाएँ। तो फिर यह डर, यह एक-दूसरे पर शक और यह आपस का झगड़ा आख़िर क्यों ?..."

कुन्तल पूर्ण परिचित थी कि देश में क्या हो रहा है। नई इण्टरिम गवर्नमेण्ट की ख़बर से उसके शरीर में सिहरन दौड़ गई। अन्तराल का ध्यान खींचते हुए बोली, "अभी तो हमें बहुत से तूफ़ानों का सामना

करना है, अन्तराल !"

अन्तराल ने कहा, "हुकूमत की नाव इतनी पुरानी और टूटी-फूटी है कि यह आज के बदलते युग के अनुरूप नहीं रही।"

"यह बात तो हमारे आज के कर्णधार भी मानते हैं कि नाव को बदलना ही होगा।"

"अब तक हम जकड़े हुए थे और हमारी आँखों पर पट्टी बँधी थी।"

"अब तो वह पट्टी उतर गई। हमें समझ लेना चाहिए कि स्वतन्त्रता का सुन्दर प्रासाद आपस में लड़-झगड़कर नहीं बनाया जा सकता। सुना नहीं ? रेडियो-भाषण में यह भी तो कहा गया था कि हमने साथ मिलकर के काम करने का दरवाज़ा खुला रख छोड़ा है और जो लोग हमारे साथ सहमत नहीं, उनको भी दावत देते हैं कि वे बराबर के साथी होकर शामिल हो जाएँ।"

"ऐसा तो होना ही चाहिए, कुन्तल !"

"हमारे हाथ में है कि हमारा भविष्य कैसा हो।"

"बड़ी बात यह है कि आगे बढ़ने का रास्ता खुल गया।"

"रेडियो-भाषण के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—जीतेंगे तो सब जीतेंगे और हारेंगे तो सब हारेंगे। रास्ता तो एक है, अन्तराल ! एक ही रास्ता है, जिसमें सबको सुख का जीवन मिले।"

प्रदर्शनी में बुलके साहब भी आये और मिसिज़ बुलके भी, जो वापस इंगलैण्ड जा रहे थे, क्योंकि इसी सप्ताह बुलके साहब पुरातत्व-विभाग से रिटायर हो गए थे।

नारायण को बुलाकर बुलके साहब बोले, "हमारे रहते-रहते अलवीरा और नीलकण्ठ का विवाह हो जाए तो ठीक है।"

कुन्तल हँसकर बोली, "मुझे इस विवाह पर उतनी ही खुशी होगी, जितनी इण्टरिम गवर्नमेण्ट की स्थापना पर हुई।"

"यह तो कविता हो गई।" मिसिज़ बुलके ने ज़ोर से कुन्तल का हाथ दबाते हुए कहा।

कोइली बोली, "विवाह का शुभ-मुहूर्त निकलवाइए। कविता मैं लिखूँगी।"

नीलकण्ठ और अलवीरा चुपचाप विवाह की चर्चा सुनते रहे।

श्यामली हँसकर बोली, "मैं विवाह का कन्ध-गीत गाऊँगी। भले ही उसकी भाषा आप न समझें, उसकी धुन आपको मस्त कर लेगी।"

प्रदर्शनी के एक कोने में खड़े-खड़े ये बातें हो रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि बाबा कहीं-न-कहीं इन मूर्तियों में मौजूद हैं और उन्हें भी नीलकण्ठ के विवाह का समाचार मिल गया। जैसे बाबा हर कला-कृति के माध्यम से आशीर्वाद दे रहे हों।

अलवीरा और नीलकण्ठ विवाह-सूत्र में बँध गए। मजिस्ट्रेट के सम्मुख वर-वधू के माता-पिता उपस्थित थे, जब वर-वधू ने सिविल मैरेज के रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये।

बुलके साहब ने वर-वधूसहित अनेक मित्रों को डिनर दिया।

अपूर्व और श्यामली का आग्रह था कि गाँव चलकर सप्तपदी वाला विवाह भी अवश्य होना चाहिए। पर नीलकण्ठ यही कहता रहा, "उसमें तो कोई तुक नहीं।"

बुलके साहब अपनी पत्नीसहित इंगलैण्ड के लिए जाने लगे तो अलवीरा बोली, "मम्मी, मुझे चिट्ठी ज़रूर लिखते रहना।"

श्रीमती बुलके गम्भीर मुँह बनाकर बोलीं, "मैं क्या जानती थी कि अलवीरा का मन यहीं रम जाएगा?"

इस विवाह के पीछे कुन्तल का आग्रह काम कर रहा था। यूरोप और अमेरिका की यात्रा में कुन्तल के सामने अलवीरा ने अक्सर यह सौगन्ध खाई थी कि नीलकण्ठ की ही जीवन-संगिनी बनेगी।

"माखा की मूर्ति पर फूल चढ़ाते हुए भी तो तुमने यही कसम खाई थी, अलवीरा!" कुन्तल ने उसके गले में बाँहें डालकर कहा।

"माखा कौन ?" अन्नदा बाबू ने पूछा।

कुन्तल ने झूमकर कहा, "माखा चैकोस्लोवाकिया के प्राचीन कवि हो गुज़रे हैं। हमने प्राग में माखा की मूर्ति के दर्शन किये थे।"

अन्तराल हँसकर बोला, "उस दिन रविवार था। माखा की मूर्ति फूलों से लदी हुई थी। लड़कियाँ बढ़-चढ़कर लड़कों से होड़ लेती हैं, मूर्ति पर फूल चढ़ाते समय।"

"पर तुमने तो मुझसे भी पहले फूल चढ़ाए थे, अन्तराल! इसके पीछे जो विश्वास काम करता है, वह भी तो बताओ न, अन्नदा बाबू को!"

"हम ज़रूर सुनेंगे।" अन्नदा बाबू की आँखें चमक उठीं।

अलवीरा बोली, "माखा की मूर्ति पर फूल चढ़ाने से प्रेमी-प्रेमिका का विवाह हो जाता है।"

"हमें तो माखा ने अभी तक फल नहीं दिया। मैंने और कुन्तल ने एक साथ फूल चढ़ाए थे उस मूर्ति पर।"

"अपना-अपना भाग्य है, अन्तराल!" अन्नदा बाबू हँस पड़े।

"शारका की कथा भी तो कहो, अन्तराल!" कुन्तल मुस्करायी, "तुम्हारे मुख से सुनने में ही मज़ा आता है।"

"शारका कौन ?" अन्नदा बाबू चुप न रह सके।

अन्तराल ने कहा, "वह कथा तो तुम ही कहो, कुन्तल!"

"अच्छा तो सुनो।" कुन्तल कहती चली गई, "चैकोस्लोवाकिया में हमने शारका की मूर्ति प्राग के म्यूज़ियम में देखी। वहीं हमें शारका की कथा सुनने को मिली। लोगों ने कहा कि हम प्राग में शारका का टीला अवश्य देखें, जहाँ से वह चैक युवती नीचे खड्ड में कूद गई थी।"

"कोई प्रेम-कथा होगी उसके पीछे।" अन्नदा बाबू मुस्कराये।

"अब बीच में कोई न टोके," कुन्तल कहती चली गई, "उस समय एक रानी राज करती थी। दो भाई झगड़ पड़े। न्याय के लिए रानी के पास आये। रानी ने ज़ायदाद-सम्बन्धी सारा मामला समझकर फैसला सुना दिया। जिस भाई के विरुद्ध यह फैसला जाता था, उसने जल-भुनकर कहा

—एक स्त्री क्या खाक पुरुषों का न्याय करेगी ?"

इस पर सब हँस पड़े ।

"होते-होते दो टोलियाँ हो गईं—एक ओर स्त्रियाँ, दूसरी ओर पुरुष। पुरुषों की टोली पर विजय पाना स्त्रियों के लिए बहुत कठिन था, क्योंकि पुरुषों के नेता को न लोहे के बाण हरा सके न काम-बाण। स्त्री-दल ने परम सुन्दरी शारका की शरण ली, जो पुरुषों से घृणा करती थी। शारका ने यह सलाह दी कि उसे पुरुष-दल के नेता के आने-जाने के रास्ते में एक पेड़ से बाँध दिया जाए।"

"और ऐसा ही हुआ होगा ?" श्यामली हँस पड़ी।

"पुरुष-दल के नेता ने पूछा—हे नारी ! हे सुन्दरी ! तुम पर यह अत्याचार किसने किया ? इस पर शारका ने लज्जा से आँखें झुकाकर कहा—मैं यहाँ बैठकर तुम्हारी राह देखने को लालायित थी। उसी का दण्ड देने को स्त्रियों ने मुझे पेड़ से बाँध दिया। पुरुष-दल के नेता ने उसकी रस्सियाँ खोलकर उसे अपनी बाँहों में कस लिया। शारका बोली—तुम मुझे प्यार करते हो ? पुरुष-दल के नेता ने उत्तर दिया—विश्वास करो, मैं तुम्हारा प्रेमी हूँ। शारका बोली—तुम्हारी ख़ातिर उन्होंने मुझे पेड़ से बाँधा। तुम भी मेरे हाथों से इसी पेड़ से बँधना स्वीकार कर लो, और उस अवस्था में भी तुम यही कहो कि मुझे प्रेम करते हो तो मैं मान जाऊँ। वह बेचारा तैयार हो गया। अब उन्हीं रस्सियों से शारका ने उसे उसी पेड़ से बाँध दिया।"

"फिर क्या हुआ ?" श्यामली ने चकित होकर कहा।

"स्त्रियों का छिपा हुआ दल उस युवक पर टूट पड़ा और उसे मार डाला।"

"शारका कुछ न बोल सकी ?" श्यामली चुप न रह सकी।

"उस समय तो शारका चुप रही। बाद में उसे पता लगा कि वह तो सचमुच उस पुरुष को दिल दे बैठी थी। कहते हैं, वह उसकी याद में जंगल-जंगल घूमती थी और रो-रोकर बेहाल हो जाती थी। दिन एक

यह सोचकर कि प्रेमी के विना जीवन का कोई अर्थ नहीं, वह उस टीले पर चढ़ गई, और नीचे खड्ड में कूदकर मर गई।"

अन्नदा बाबू जैसे इसी कथा की भूमिका में अत्यन्त वेदनायुक्त स्वर में बंगला गान गाने लगे :

मोर मरणे तोमार हबे जय।
मोर जीवने तोमार परिचय।

अन्तराल बोला, "आज तो रवीन्द्रनाथ की वह कविता सुनाओ—राजपथ दिए आसियोना तुमि !"

अन्नदा बाबू जैसे उसके लिए पहले से तैयार बैठे थे। धीर-गम्भीर स्वर में कविता-पाठ करने लगे :

राजपथ दिए आसियोना तुमि
पथ भरियाछे आलोके, प्रखर आलोके।
तोमारे न जेन देखेप्र तिवेशी
हे मोर स्वप्न विहारी
तोमारे चिनिव प्राणेर पुलके
चिनिव विरले नेहारि परम पुलके।
एसो प्रदोषेर छायातल दिये,
एसो ना पथेर आलोके, प्रखर आलोके।

फिर सबका ध्यान अलवीरा पर जम गया—नीलाक्षी अलवीरा, जो चैक कवि माखा और चैक सुन्दरी शारका के आशीर्वाद से कुन्तल से पहले ही दुलहन बन गई थी।

अन्नदा बाबू बोले, "एक काम तो हो गया, पर एक रह गया।"

"कौनसा ?" नीलकण्ठ ने पूछ लिया।

"अरे भई एक दिन कुन्तल की मनोकामना भी पूरी करेंगे कविवर माखा और परम सुन्दरी शारका।"

सब हँस पड़े।

नीलकण्ठ बोला, "कल प्रदर्शनी का अन्तिम दिन है। काश आज की

सप्तपदी बाबा अपनी आँखों से देखते ! वे परिश्रम पर नहीं, साधना पर ज़ोर देते थे। वे स्वयं मूर्ति की सलाह लेते थे कि उसकी भंगिमा सचमुच कैसी होनी चाहिए। पत्थर से पूछते थे कि बोलो…"

"कभी तो पत्थर को भूल जाया करो, मूर्तिकार महाराज !" कुन्तल ने हँसकर कहा, "अलवीरा पत्थर नहीं, यह ध्यान रहे। इसे नाराज़ न करना। मन में, विचार में, चरित्र में इसे जीवन-संगिनी मानकर चलोगे तो सुख पाओगे। पत्थर वाला मौन मत धारण करना। कहीं घूमने जाओ तो इसे साथ लेकर जाना। किसी से कोई सौदा करो तो इसकी सलाह लेना। जो कमाकर लाओ, इसके हाथ पर रखना। धूप तेज़ हो तो इससे पूछकर छाता खोलना। यही तुम्हारी कल्पना है, यही तुम्हारी रचना; यही सम्भावना है, यही प्राप्ति !…"

"सारे उपदेश मेरे लिए ही हैं या कुछ अलवीरा के लिए भी ?" नीलकण्ठ चुप न रह सका।

बात-बात में कुन्तल के स्वभाव का परिचय मिलता था। पेरिस की प्रशंसा करते हुए इस कहावत पर तान तोड़ती, 'मरने से पहले पेरिस अवश्य देखो।' कभी होनोलूलू की हवाई सुन्दरियों का बखान करके कहती, "हाऊ थ्रिलिंग !" न जाने कितनी बार वह बता चुकी थी, "हवाई के सागर-तट के पीछे अमरीकन पागल है !" कभी वह शेक्सपीयर की जन्म-भूमि 'स्ट्रेट फोर्ड आन एवन' का किस्सा ले बैठती, जहाँ उसने अलवीरा और अन्तराल के बीच में बैठकर 'हैमलेट' देखा था, पुराने ढंग के लकड़ी के रंगमंच पर, पुरानी वेष-भूषा में ! "हम तीनों के मन-प्राण एक साथ नाच उठे थे 'हैमलेट' देखकर !" वह बड़े गर्व से बताती। वह बार-बार कहती, "यूरोप आज भी लाजवाब है, जब कि दूसरे महायुद्ध का विनाशकारी प्रभाव शेष है।" फिर बात को घेर-घारकर पेरिस की चित्र-प्रदर्शनियों पर ले आती।

अलवीरा कहती, "कला का आनन्द तभी है, जब मन की आँखें खुल जाएँ।"

कुन्तल की बातों में सबसे अधिक रस अन्तराल को आ रहा था। नीलकण्ठ आँखों-ही-आँखों में उसे समझाता, एक दिन कुन्तल तुम्हारी हो जाएगी। पर बीच-बीच में अन्तराल, उदास मुँह बना लेता, जैसे उसे डर हो कि कहीं कुन्तल हाथ से न निकल जाए। कहाँ राजा की बेटी कुन्तल और कहाँ मैं धौली के वैद्यजी का बेटा! दोनों परिवारों का कोई मुकाबला नहीं।

"किस सोच में खो गए, अन्तराल ?" कुन्तल खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली, "भाग्य पर भरोसा रखो! बचपन में, जब तुम्हारी सूरत सपने में भी नज़र नहीं आई थी, त्रिकालदर्शी राजज्योतिषी ने बताया था कि राजकुमारी के हाथ की रेखा उसे किसी राजकुमार की नहीं, एक साधारण प्राणी की जीवन-संगिनी बनाने पर तुली हुई है। वह बात इतने दिन बाद सत्य सिद्ध होने जा रही है।"

अन्तराल बोला, "क्या यही बात मेरी हस्त-रेखा भी कहती है कि मेरे भाग्य में राजकुमारी लिखी है ?"

कुन्तल और अन्तराल को हँसते देखकर अन्नदा बाबू कहते, "हे अलबीरा, हे नीलकण्ठ! सुनो, मैं कहता हूँ। तबले पर ठेका लगाओ। भविष्य वर्तमान बनने जा रहा है।"

कुन्तल मुस्कराती, जैसे एक ही साँस में माखा और शारका की कथा कह रही हो, और कभी वह इण्टरिम गवर्नमेण्ट की बात ले बैठती। एक दिन वह अखबार की बड़ी ख़बर खोलकर बैठ गई—

'छब्बीस अक्तूबर को मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के सम्मिलित हो जाने से अब केन्द्र में सर्वदलीय सरकार की स्थापना हो गई। लगभग दो मास पूर्व राष्ट्रीय स्थापना के बाद से मुस्लिम लीग का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा निरन्तर जारी रही। नरेन्द्र मण्डल के अध्यक्ष भूपाल के नवाब और वाइसराय लार्ड वेवल ने जो परिश्रम किया, उसमें वे सफल रहे।'

अन्तराल ने अन्नदा बाबू के कान में कहा, "लार्ड वेवल कांग्रेस और

मुस्लिम लीग की मिली-जुली इण्टरिम गवर्नमेण्ट बनाने को तैयार हो सकते हैं, तो राजा साहब कुन्तल के साथ मेरा विवाह करने को भी राजी हो सकते हैं।"

अन्नदा बाबू बोले, "संसार में कुछ भी असम्भव नहीं। पर तुम्हारे मामले में तो कुन्तल जो चाहे कर सकती है। उसे प्रसन्न रखो।"

कोइली की बात भी सुन चुका था अन्तराल। उसका विवाह अपूर्व से हुआ होता, तो उसकी कविता में इतनी गहराई न आ पाती। अब वह एक वकील की पत्नी थी, पर कविता में उसका लक्ष्य रहता था अपूर्व, जो अपनी वेदना को भूलने के लिए कन्ध-युवती श्यामली के अंचल से बँध गया था। श्यामली भी जानती थी कि उसके हृदयेश के मन पर कोइली की अमिट छाप लग चुकी है।

श्यामली को अपूर्व वापस धौली छोड़ आया था। कोइली यहीं थी। एक ओर अपूर्व इस अवसर का लाभ उठाकर कोइली के पुराने सम्पर्क को ताज़ा करने का यत्न करता, दूसरी ओर अन्नदा बाबू कोइली के साथ उसकी कविता के अनुवाद में जुटे रहते।

अन्तराल से यह बात छिपी न रही कि कोइली की कविता तो एक माध्यम है। अनुवाद करते समय अन्नदा बाबू यही सोचकर ठीक-ठीक शब्द बिठाते कि इसमें सर्वत्र जिसे सम्बोधित किया गया है, वह कोई अपूर्व न होकर स्वयं अन्नदा बाबू भी हो सकते हैं।

एक दिन राजा साहब का तार मिला—'अन्तराल और कुन्तल फ़ौरन पुरी पहुँच जाएँ!'

उन्हें जाते देखकर दूसरे अतिथि भी जाने को तैयार हो गए।

अलवीरा और नीलकण्ठ धौली पहुँचे तो वैद्यजी और गगन महान्ती सप्तपदी वाले विवाह का मुहूर्त निकाल बैठे। उस मुहूर्त से पहले ही पुरी से अन्तराल को भी बुलवा लिया गया।

सोना ने अलवीरा का शृंगार किया, जैसे वह हू-ब-हू उड़िया दुलहन हो। वह यही कहती रही, "सच्चा प्रेम हो तो यह दिन आकर ही रहता है! कौन जाने मन के सात पाताल में कौनसा स्वर बज उठता है!"

"धौली में सौ ख़बरों की एक ख़बर थी, अलवीरा और नीलकण्ठ के विवाह की ख़बर।" वैद्यजी बोले, "महाप्रभु ने रंग दिखाया। नहीं तो सिविल मैरेज के बाद सप्तपदी वाले विवाह के लिए कहाँ तैयार होती एक अंग्रेज़ कन्या?"

धौली में यह ख़बर भी घर-घर का चक्कर लगाने लगी कि नीलकण्ठ से उपहार में वसूल की हुई कला-सम्बन्धी पुस्तक सोना ने अलवीरा को भेंट कर दी।

अन्तराल बोला, "वह पुस्तक अलवीरा को भेंट करने की बात सोना को तुमने सुझाई होगी, जागरी!"

जागरी ने हँसकर कहा, "यह किस अख़बार की ख़बर है? और

किस मयूरपंखी नाव में बैठकर ग्राई है ?" फिर मानो धौली के इस विवाह की खबर दब गई, और हिन्दुस्तान की ग्राज़ादी की खबर उभर ग्राई। "देश के बटवारे की बात सामने ग्रा रही है !" वैद्यजी ग्रपनी दुकान पर बैठे-बैठे राह-चलतों को पुकारकर कहते, "जाने भगवान् की क्या इच्छा है देश की स्वतन्त्रता के पीछे ?" कभी वैद्यजी ग्रन्तराल से पूछते, "तुम्हारे राजा साहब क्या कहते हैं ?"

"राजा साहब क्या कह सकते हैं !" ग्रन्तराल हँस पड़ा।

"ग्रंग्रेज़ जाने वाला है, जो ग्रपने को चक्रवर्ती समझता था।" वैद्यजी गगन महान्ती को सम्बोधित करते हुए कहते, "मास्टरजी, ग्रंग्रेज़ पर भी सनीचर ग्राकर रहा। भाग्य का लिखा टाले नहीं टलता।"

गगन महान्ती उत्तर देते, "ग्राप भी कितनी भोली बातें करते हैं, वैद्यजी ! ग्रंग्रेज़ भी यहीं रहेंगे प्रेम से, जब वे खुशी से हमें ग्राज़ाद करेंगे। उन्हें यहाँ से निकालने का तो प्रश्न ही नहीं।"

"ग्रंग्रेज़ की कन्या को देखो, मास्टरजी ! धौली की बहू बन गई। सप्तपदी वाला विवाह कराने से भी संकोच नहीं किया।"

"हर नारी के मुख पर ग्रलवीरा का नाम है, वैद्यजी ! इतनी सुन्दर दुलहन धौली में न पहले ग्रायी, न ग्रागे ग्रायेगी।"

"हाँ, मास्टरजी ! पहले कौन मान सकता था कि उड़िया दूल्हे को ग्रंग्रेज़ दुलहन मिलेगी ? ग्रौर सुनो, मास्टरजी ! ग्राज़ादी मिलने पर फिर एक बार महात्मा गांधी धौली ग्रायेंगे ग्रौर त्रिमूर्ति में ग्रपनी मूर्ति पहचान-कर बहुत खुश होंगे। खड़ी होगी दिल्ली, इतिहास के सिंहद्वार पर। हमारा धौली भी कम नहीं।"

"जो चटाई पर बैठते थे, उन्हें कुरसी मिलने वाली है, वैद्यजी ! देखें, वे हमारे साथ कैसा व्यवहार करते हैं !"

गुरुचरण बात केकि सी-न-किसी मोड़ पर मानो चतुर्मुख को लाकर खड़ा कर देता। वह वैद्यजी की दुकान पर बैठकर कहता, "बाबा ग्रंग्रेज़ को ग्रच्छा नहीं समझते थे। ग्रंग्रेज़ को मूर्ति बेचते उन्हें दुःख होता था।"

जागरी शह देता, "बाबा ने तो एक बार यह भी कहा था। बम काली कलकत्ते वाली, गुम जाए अंग्रेज़ की ताली !"

गुरुचरण ऐसे बात करता जैसे रासलीला समाप्त होने पर आरती की थाली उठाते हैं। इसी थाली में वह मानो अलवीरा और नीलकण्ठ के विवाह की बात रख देता।

दादी खुश थी। बार-बार बखान करती, "दौड़ा आया नारायण। दौड़ी आई बहू, कलकत्ते से। दौड़ी आई कोइली। कैसे न आते? नीलकण्ठ के विवाह की ख़बर घूम गई, जैसे इत्र की सुगन्ध ! अलवीरा-जैसी बहू भगवान् सबको दे !"

सोना खुशी से बाँहें लहराकर कहती, "अलवीरा-जैसी बहू सबको मिले !"

हर कोई कह रहा था—बम काली कलकत्ते वाली ! हर तरफ़ खबर दौड़ती है, इतिहास की बुलाहट पर। खबर चुप नहीं रहती, जैसे छेनी की मार सहते-सहते मूर्ति बोल उठती है। देख ली, अँग्रेज कन्या धौली की बहू बनते देख ली। जैसे कोई किवाड़ के पल्ले हटाकर कहे—आओ, बन्धु ! द्वार-द्वार पर विवाह की ख़बर का स्वागत होने लगता है। जादू करती है विवाह की खबर। त्रिमूर्ति के चरण छूकर वह धन्य हो उठती है। धौली के मज़े हैं। जो भी सुनता है, अवाक् रह जाता है। आस-पास के गाँवों में चर्चा हो रही है—ऐसी बहू देखी है किसी और गाँव में ?

"आज बाबा होते तो क्या कहते ?" जागरी हँसकर पूछता, "क्यों गुरुचरण भाई ! क्यों वैद्यजी ! अन्तराल का विवाह कब करोगे ? क्या उसके लिए भी अँग्रेज़ की बेटी आयेगी दुलहन बनकर ?"

"ऐसा मत बोलो, जागरी ! अन्तराल के लिए तो उड़िया दुलहन आयेगी।" वैद्यजी मुस्कराते।

"राजा की बेटी !" गुरुचरण छेड़ता, "क्यों वैद्यजी !"

"राजा की बेटी बहू बनकर आ गई, तो वारे-न्यारे हो जाएँगे।"

वैद्यजी हँसकर कहते, "तुम क्यों चुप हो, गुरुचरण ? तुम्हारा क्या ख़याल है ?"

"मेरा ख़याल क्या दूसरा होगा ? राजा की बेटी ही आनी चाहिए।" गुरुचरण हँसकर रँग भरता।

"अगर अपूर्व की तरह अन्तराल भी कोई कन्ध-कन्या ब्याह लाया ?" जागरी चुटकी लेता।

एक दिन राजा साहब की चिट्ठी आई, अन्तराल के नाम लिखा था—

"कटक में राविन्शा कॉलेज के पास हमारी जो कोठी है, उसे हम 'चतुर्मुख म्यूज़ियम' के लिए भेंट कर रहे हैं। कोठी खाली कराई जा चुकी है। अन्नदा बाबू को लिख दिया है, चतुर्मुख की सब मूर्तियाँ वहीं सजाकर रखो। शुरू के तीन साल तक एक क्लर्क और एक चपरासी का वेतन हम देंगे। आगे के लिए भी कुछ प्रबन्ध हो ही जाएगा। तुम चतुर्मुख की विधवा पत्नी से पूछकर लिखो कि उन्हें वे सब मूर्तियाँ म्यूज़ियम को देने में कोई संकोच तो नहीं होगा ?"

दादी को राजा साहब की चिट्ठी पढ़कर सुनायी गई, तो उसने जहाँ पाँच हज़ार की रकम के लिए राजा साहब का दोबारा धन्यवाद किया, वहाँ उनके म्यूज़ियम-सम्बन्धी सुझाव और उदारता के लिए उन्हें बधाई देते हुए लिखवाया, "वे सब मूर्तियाँ बड़े शौक से म्यूज़ियम में रखी जाएँ, क्योंकि मूर्तिकार की कीर्ति बनाए रखने के लिए इससे बड़ा कोई साधन नहीं हो सकता।"

गाँव-गाँव, गली-गली राजा साहब की उदारता की ख़बर चल पड़ी।

कोई कहता, "हुज़ूर राजा साहब बड़े आदमी हैं। एक कोठी दे डालना उनके लिए कौन कठिन काम है !" कोई कहता, "चतुर्मुख के जीवन-काल में कहाँ चले गएं थे राजा साहब ! उनका यश-गान तो जीते-जी होना चाहिए था !"

मूर्तिशाला में मूर्ति गढ़ते हुए रूपक राजा साहब की उदारता पर खुश

होने के साथ-साथ आलोचना करने लगता, "मैं नहीं जानता था कि गुरुदेव की वे सब मूर्तियाँ अब इस मूर्तिशाला में लौटकर नहीं आएँगी। यह तो राजा साहब का अत्याचार ही कहा जाएगा।"

खबर चलती है, कभी विलम्बित लय से, कभी द्रुत। मंगल करो, महाप्रभु जगन्नाथ! बम काली कलकत्ते वाली! नमामि सर्वसिद्धिदाता विनायकम्!

छुट्टियाँ खत्म हो गईं। अलवीरा कटक चली गई। अब वह महानदी के किनारे उसी कोठी में रहती थी, जहाँ विवाह से पहले रहती थी।

"क्या विवाह के बाद भी अलवीरा कॉलेज में पढ़ाएगी?" जागरी पूछता, "तुम यहाँ रहोगे और तुम्हारी दुलहन कटक में? क्यों, नील?"

अन्तराल की छुट्टी खत्म हो गई। वह भी राजा साहब के पास पुरी चला गया।

रूपक मूर्तिशाला में मूर्ति गढ़ते हुए कहता, "गुरुदेव कहा करते थे—जो पत्थर तुम्हें गढ़ना है, उसे गढ़ते रहो।"

नीलकण्ठ कहता, "अपना-अपना काम है। कोई मूर्ति गढ़ता है। कोई कॉलेज में पढ़ाता है। कोई राजा साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी है। अपना-अपना काम ही ध्रुव सत्य है।"

जागरी गाँजे का दम लगाकर मज़े से कहता, "मैं बातों की कमाई खाता हूँ। यात्री भुवनेश्वर देखने आते रहें और हमारा दाल-भात चलता रहे।"

कभी-कभी सोना मूर्तिशाला में आकर नीलकण्ठ की हँसी उड़ाने लगती, तो दादी यही सलाह देती, "बहू की नौकरी छुड़वा दो, बेटा!"

सोना हँसकर कहती, "यह कहेगा, नौकरी छोड़ दो। वह कहेगी, तुम धौली छोड़कर कटक में रहो मेरे पास।"

जागरी कहता, "मुझे तो डर है, अलवीरा लन्दन जाकर रहेगी, नील को साथ ले जाएगी। क्यों, नील?"

"नील पर ऐसा सनीचर सवार नहीं हो सकता।" दादी थाप लगात

सोना अनसुने व्यंग्य छोड़ती, तीखे बाणों की तरह।

नीलकण्ठ कहता, "दिल खोलकर हँसो, भौजी! मैं बुरा नहीं मानता।"

सोना कहती, "एक बात बता दूँ, नील! तुम्हारे और अलवीरा के बीच धौली और कटक का नहीं, सात समन्दर तेरह नदियों का अन्तर है। तुम उड़िया, वह अंग्रेज़!" वह खिलखिलाकर हँस पड़ती।

कटक से अलवीरा की चार-पाँच चिट्ठियाँ आ चुकी थीं। वह उसके बिना उदास थी। उसमें इतना साहस नहीं था कि लिख दे, नौकरी छोड़-कर चली आओ।

"पति-पत्नी का सम्बन्ध ही क्या हुआ, अगर वे इकट्ठे न रहें?" सोना बलपूर्वक कहती।

"तुम भी तो रासलीला के लिए बाहर जाती हो गुरुचरण के साथ। क्यों भौजी?" नीलकण्ठ पूछ बैठता। पर वह जानता था, अलवीरा का मामला दूसरी तरह का है।

"तुम अलवीरा की नौकरी छुड़ाना चाहो तो छुड़ा सकते हो क्या?"

"क्यों नहीं?"

"तो छुड़वा क्यों नहीं देते?"

"कभी-कभी सोचता हूँ, मैं ही कटक चला जाऊँ उसके पास।"

"उसकी कमाई पर जिओगे?"

"अपनी और पराई का भेद कहाँ रह गया, भौजी!"

"तो वह क्यों नहीं आ जाती?"

"दुनिया रुपये के बिना नहीं चलती, भौजी!"

"तो तुम कमाओ। मैं क्या रोकती हूँ?"

"मेरी बात तुम समझोगी नहीं।"

"अलवीरा भी कहाँ समझती है तुम्हारी बात? तुम्हें ही उसकी बात समझनी होगी, देवरजी!" सोना हँस पड़ी।

उस समय मूर्तिशाला में रूपक नहीं था। बाबा की मूर्तियाँ चली

जाने से मूर्तिशाला खाली लग रही थी ।

"बाबा-जितनी मूर्तियाँ बनाते तुम भी अस्सी पार कर जाओगे, नील ! तुम भी कटक में नौकरी कर लो ।"

"थौली छोड़ दूँ ? यह नहीं होगा, भौजी ! मैं खानदानी पाथुरिया हूँ । एक हमारा ही घर तो बचा रह गया है, पाथुरिया गली का नाम सार्थक करने के लिए । पहले बहुत से पाथुरिया रहते होंगे । अब मैं भी चला जाऊँ तो पाथुरिया गली का नाम बहुत बड़ा मज़ाक बन जाएगा ।"

"पाथुरिया गली का नाम सार्थक करने के लिए तो अधूरी नारी-मूर्ति और त्रिमूर्ति वाली चट्टानें ही गली के उत्तर और दक्षिण छोर पर काफ़ी हैं ।"

"तो तुम चाहती हो, मैं चला जाऊँ, भौजी ?"

"तुम जाओ या अलवीरा को बुलाओ । पति-पत्नी को इकट्ठे रहना चाहिए ।"

सोना जमकर बैठ गई । उसने आँखें चमकाकर कहा, "तुम अलवीरा के पास जाकर क्यों नहीं रहते कुछ दिन ? पत्थर की नारी बना रहे हो बैठे-बैठे । हाथ थका रहे हो । वहाँ वह सचमुच की नारी उदास है तुम्हारे बिना । बार-बार लिखती है चार दिन के लिए चले आओ । वहाँ रह आओ चार दिन ।"

"पत्थर की नारी क्या सचमुच की नारी से कम है, भौजी ?"

"कम नहीं है, तो विवाह क्यों कराया था ? बाबा ने दादी को इतना प्यार न किया होता, तो क्या उनकी मूर्तियों में प्राण पड़ सकते थे ?"

"मैंने कब कहा, मैं अलवीरा को प्यार नहीं करता ?"

"प्यार करते होते, तो यहाँ बैठे पत्थर से सिर मार रहे होते ? अलवीरा के पास हो आओ ।"

पत्थर पर छेनी चलती रही । सोना को चुप हो जाना पड़ा । नीलकण्ठ बोला, "मैंने अलवीरा को लिख दिया है, भौजी !—हाड़-मांस की नारी को जाने बिना पत्थर की नारी में प्राण नहीं पड़ते । खाली कल्पना से काम

नहीं चलेगा। मूर्तिकार बिशु के पीछे कन्ध सुन्दरी का प्रेम काम कर रहा था। उसी ताल पर चलती थी उनकी छेनी। कन्ध सुन्दरी की मूर्ति गढ़ते-गढ़ते बिशु के प्राण-पखेरू उड़ गए। मूर्ति अधूरी ही खड़ी है। मैं कटक आने की सोच रहा हूँ। पर हाथ वाली मूर्ति पूरी हो जाए..."

भीतर से दादी ने आकर कहा, "मैं तुम लोगों की बातें सुन रही थी।"

सोना ने हँसकर कहा, "तुम द्वार के साथ लगी खड़ी थीं, दादी ?"

दादी बोली, "नीलकण्ठ तुम्हारी ही बात मानता है, सोना! मैं तो कह चुकी हूँ, चार दिन कटक हो आओ, और यह भी देख आओ कि तुम्हारे बाबा की मूर्तियाँ ठीक-ठीक रख दी गईं म्यूज़ियम में। मैं डरती हूँ कि इसमें राजा साहब का कोई दूसरा मतलब न हो।"

नीलकण्ठ ने कुछ जवाब न दिया।

दादी बोली, "तुम बहू के पास जाओ, बेटा! जाना ही होगा। चार दिन, सात दिन, दस दिन, महीना—जितने दिन वह कहे।"

नीलकण्ठ पत्थर गढ़ते-गढ़ते चौंक उठा।

सोना हँस पड़ी, "जाएगा। कैसे नहीं जाएगा! क्यों, नील ?"

हाथ की मूर्ति जैसे शिकायत कर रही हो—क्या मुझे बीच में छोड़कर ही चले जाओगे ? मैं अधूरी ही रह जाऊँगी ?

"अधूरी मूर्ति छोड़कर तो कैसे जाऊँ, भौजी ?"

"जाना ही होगा। मूर्ति भी कभी पूर्ण हुई है, पगले!"

"पाथुरिया पत्थर की परवाह नहीं करेगा, तो पत्थर भी पाथुरिया को क्या देगा, भौजी ?"

"पत्थर की नारी छोड़कर सचमुच की नारी के पास जाओ। वह उदास है।"

जैसे हाथ की मूर्ति कानाफूसी करके पूछने लगी—तो मुझे बीच में छोड़कर ही चले जाओगे ?

"हाथ की मूर्ति तो पूरी हो ले, भौजी!"

"नहीं, आज ही जाना होगा। जो हुक्म दादी नहीं चला सकती, वह

मैं चला रही हूँ। क्यों, दादी ?"

दादी ने कहा, "ठीक हुक्म दे रही हो।"

"तो तुम्हारा भी यही हुक्म है, दादी ?"

दादी ने झुँझलाकर कहा, "तुम हाड़-माँस के मनुष्य की बात नहीं समझते, तो पत्थर की बात कैसे समझ लेते हो ?"

"एक मन कहता है, अलवीरा की नौकरी छुड़वाकर उसे यहाँ ले आऊँ, दादी ?"

"पहले उसके पास जाओ तो।" दादी ने कहा, "बहू उदास है तेरे बिना। बहू ने झूठ तो नहीं लिखा होगा। जो मुट्ठी के स्वर्ग को नहीं देखता, उससे बड़ा मूर्ख दूसरा नहीं।"

सोना ने हँसकर कहा, "नील तो मुट्ठी के पत्थर को ही देख सकता है।"

दादी ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "नील को कैसे बताऊँ, शुरू-शुरू में इसके बाबा भी इतने ही लापरवाह थे। बाद में उन्हें समझ आई।"

"नील को समझ आते उतनी देर नहीं लगेगी, दादी !" सोना हँस पड़ी।

"गाड़ी का समय हो रहा है, नील !" दादी ने कहा, "जल्दी करो। गाड़ी निकल न जाए।"

हाथ की मूर्ति छोड़कर नीलकण्ठ खड़ा हो गया।

सोना ने कहा, "वहाँ जाकर यह न कहना, सोना भौजी के हुक्म से आया हूँ। यही कहना, तुम्हारे ही हुक्म से आया हूँ।"

नीलकण्ठ ने उचटती-सी नज़र से मूर्ति की ओर देखा, जैसे मूर्ति कह रही हो—जल्दी लौटकर आओगे न ?

बचपन से ही उन्होंने एक-दूसरे को जाना-पहचाना था। आपस की पहचान ने प्रेम का रूप ले लिया और प्रेम ही विवाह में बदल गया। दोनों का यही मत था कि पैसा हाथ का मैल है। धन चाहिए आवश्यकता-पूर्ति के लिए। आनन्द की चरम सीमा है प्रेम, जो समर्पण की भावना में फलीभूत होता है।

नीलकण्ठ को भी नौकरी के लिए मजबूर करे, यह अलवीरा का आग्रह नहीं था। काम तो करना है—अपना-अपना काम। इस पर दोनों सहमत थे। शादी के बाद गृहस्थी चलानी होती है। उसके लिए पैसा चाहिए।

"नौकरी न छोड़ने की बात को लेकर तुमने मुझे ग़लत नहीं समझा, यह मेरा सौभाग्य है।" अलवीरा ने मुस्कराकर कहा, "मैं नौकरी करती रहूँ, यह भी ठीक है। तुम नौकरी नहीं करते, वह भी ठीक है।"

"तुम हुक्म दोगी तो मैं भी नौकरी करूँगा।" नीलकण्ठ चुप न रह सका।

"हुक्म चलाने की भूल मैं नहीं करूँगी। पर जिस नज़र से तुम पत्थर की मूर्ति को देखते हो, उसी नज़र से मुझे क्यों देखते हो? मैं तो मूर्ति से अलग साँस लेती हूँ, सोचती-समझती हूँ।" अलवीरा की आँखें

अपनी मूर्ति की ओर जम गईं, जो नीलकण्ठ की कला का उत्कृष्ट नमूना थी।

नीलकण्ठ ने कहा, "तुमने यह कैसे समझ लिया कि मूर्ति का मूल्य होता है, और मॉडल का बिलकुल नहीं ?"

"तो मूर्ति का नहीं, मेरा भी मूल्य है तुम्हारी नज़र में ?" अलवीरा फिर हँस पड़ी। और वह नील का हाथ थामे बरामदे में आ गई।

चार कमरों वाले इस बँगले के साथ अलवीरा का पूरा मेल प्रतीत होता था। हर चीज़ अपनी जगह सजाकर रखी थी।

बरामदे में कुरसियों पर बैठे-बैठे उन्हें महानदी की विशाल जलधारा के दर्शन हुए। नीलकण्ठ बोला, "जाने किस नशे में बह रही थी महानदी ! इसका इतिहास तो बहुत पीछे से आ रहा था। अशोक का युग पार करती हुई महानदी वर्तमान युग में बह रही है, जब केन्द्र में इण्टरिम गवर्नमेण्ट बन चुकी है।"

"पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग की मिली-जुली सरकार की कोशिशें तो देश को एक रखने के बजाय दो भागों में बाँटने जा रही हैं।" अलवीरा ने ठण्डी साँस लेकर कहा, "देखते नहीं। आज का अख़बार तो यही बता रहा है।"

अलवीरा नहाने के लिए बाथ-रूम में चली गई थी। नीलकण्ठ के हाथ में अख़बार था।

नौकर अभी तक ब्रेकफास्ट की तैयारी में जुटा था।

कॉलेज में आज छुट्टी थी।

स्नान के बाद अलवीरा आदमक़द आईने के सामने खड़ी बालों में कंघी करने लगी। नीलकण्ठ पीछे जाकर खड़ा हो गया। आईने में अलवीरा की नीली आँखें और भी नीली प्रतीत हो रही थीं।

"बहुत अच्छी लग रही हो आज !"

"तुम्हारी मूर्ति से भी अच्छी ?"

अलवीरा के लम्बे घुंघराले बालों में कंघी चल रही थी। जैसे सब-

कुछ नया हो। उसे लगा, जाने कितने युगों से नारी इस तरह केश-प्रसाधन में लगी है ! यह शृंगार किसलिए था ! किसी-न-किसी नीलकण्ठ के लिए।

वह बड़े प्यार से अलवीरा के केशों में उँगलियाँ घुमाने लगा। अलवीरा ने मना नहीं किया। उसके ओंठों पर मुस्कान खिल उठी। महानदी की ओर से हवा का एक झोंका आया, जिससे अलवीरा के केश झूम उठे।

मद-भरी आँखों से वह अलवीरा का रूप निहारता रहा। पास कोई नहीं। आईना गवाह है। वे दिन याद हो आए, जब उन्होंने पाँच वर्ष लन्दन में बिताए। रहते तो अलग-अलग थे, पर मन की डोर तो एक ही थी।

"मेरी नई मूर्ति बनाने की सोच रहे हो ?"

"तुम सोचती हो, मैं मूर्ति के सिवा कुछ सोच ही नहीं सकता ?"

बरामदे में कोई चिड़िया जाने किस बोली में कुछ बोल उठी, जैसे वह कह रही हो—सोचो, खूब सोचो !

चौड़ी किनारी की साड़ी का छोर अलवीरा ने कमर में कसकर लपेट रखा था। पीली किनारी की सफ़ेद साड़ी के साथ पीला ब्लाउज़ मानो मुँह से बोल उठा।

बाहर से नौकर की आवाज़ आई, "ब्रेकफास्ट तैयार है, मेम साहब !"

नीलकण्ठ मुस्कराया। अलवीरा हँस पड़ी, जैसे आँखों-ही-आँखों में कह रही हो—देखा तुमने, साड़ी-ब्लाउज़ पहनने पर भी गोरी चमड़ी ही रहती है।

जूड़े को बहुत फैलाकर ढिलकवाँ रूप दिया गया था, जैसे अलवीरा इस कला में सिद्ध-हस्त हो चुकी हो।

बाहर से पीला फूल लाकर नीलकण्ठ ने अलवीरा के जूड़े में लगा दिया।

"जूड़े में फूल लगाने का काम तुम अपने ज़िम्मे ले लो।" अलवीरा मुस्करायी।

नीलकण्ठ ने शीशी से सेण्ट निकालकर अलवीरा के केश महका दिए। बोला, "मैं तो बहुत से काम अपने ज़िम्मे ले सकता हूँ।"

आमने-सामने बैठकर वे ब्रेकफास्ट लेने लगे।

महानदी की ओर दोनों की नज़रें एक साथ उठ जातीं। चिर-समर्पिता महानदी से मानो उनका युग-युग से परिचय हो। अलवीरा चेहरा घुमाती तो जूड़े का पीला फूल अपनी कथा कह जाता—किसी मधु-कुंज की गोपन कथा, जो पत्थर में भी लिखने की क्षमता रखती थी।

"क्या सोच रहे हो, नील ?"

"हाथ की मूर्ति अधूरी छोड़कर आया हूँ। बाबा ने भी एक अधूरी मूर्ति छोड़कर उस रात विष-पान कर लिया था और एक वह धौली की पाथुरिया गली की अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान है। क्या मूर्ति अधूरी ही रहती है ? क्या उर्वशी की कथा भी अधूरी ही रहती है ?"

अलवीरा जैसे किसी चिन्तन में डूब गई। थोड़ी खामोशी के बाद बोली, "मैं कभी-कभी सोचती हूँ, मूर्तिकार बिशु की आत्मा प्यासी चाह की डगर पर चलते-चलते धौली की पाथुरिया गली के चक्कर काट रही है।"

"उस कथा से वह संकेत तो अवश्य मिलता है। पर इस समय किसी बिशु या उसकी उर्वशी की कथा कहने का कहाँ अवकाश है ?"

अलवीरा ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, "फिर तो एक दिन हमारी कथा की भी अवहेलना की जाएगी, छोड़ो। काम की बात सुनो। राजा साहब ने सरकार को बीस लाख की डोनेशन दी है।"

"किस लिए ?"

"कटक में आर्ट स्कूल खोलने के लिए, और प्रिन्सिपल के लिए तुम्हारा नाम सुझाया है। करोगे नौकरी ?"

"पर वह नौकरी मुझे ही मिलेगी, इसका क्या ठीक ?"

"कोशिश करना अपना काम है। पाँच सौ मेरे, सात सौ तुम्हारे। पैसा हाथ का मैल सही, पर इसके बिना काम नहीं चलता।"

● ● ●

नीलकण्ठ का काम बन गया। सात दिन बाद ही उसे नौकरी की ऑफ़र आ गई।

लगता था, अलवीरा के जूड़े का फूल अपनी कथा कह गया, जैसे मूर्तिकार को वह नारी मिल गई, जिसे वह पत्थर में खोजता आया था, जिसके स्पर्श से उसका भाग्य जाग उठा। सपने में भी न सोचा था कि कटक में आर्ट स्कूल खुलेगा और उसका प्रिन्सिपल बनने का सौभाग्य उसी को प्राप्त होगा।

अलवीरा बोली, "कहो तो आज म्यूज़ियम में बाबा की मूर्तियाँ देखने चलें? कल तुम्हें नौकरी पर जाना है। बाबा का आशीर्वाद तो तुम्हें लेना ही चाहिए।"

"पर बाबा तो नहीं चाहते थे कि मैं नौकरी करूँ।"

"तो अभी तक दुविधा में पड़े हो?"

चतुर्मुख म्यूज़ियम पहुँचते देर न लगी, जैसे एक-एक मूर्ति पूछ रही हो—क्या पैसा ही नई साधना को जन्म देगा?

संस्कार

जीवन बदलता है। सब-कुछ बदलता है। एक रूप इसीलिए जन्म लेता है कि मुरझा जाएगा। परन्तु उस परिवर्तन का क्या रूप था जो कि धुँधली उषा और भारत के प्रथम आक्रमण के बीच घटित हुआ था? या कि उससे अन्तः-वस्तु भी बदली, अन्तर्जीवन भी? और क्या ऋग्वेद के गड़रिये सदा के लिए अपना गान गा गए—वह गान जो गान-मात्र का निष्कर्ष था? और क्या पीछे के सहस्रों वर्ष व्यर्थ, कृतित्वहीन बीत गए?

यदि मनुष्य का मन उस बहुमूल्य पट के समान है, जिसमें प्रत्येक पीढ़ी की पृष्ठ-भूमि पर व्यक्ति का अनुभव-सन्चय एक नये रंग का ओप चढ़ाता हो, बुद्धि नयी आकृतियाँ आँकती हो, मानवी सङ्कल्प नयी झलक देता हो और अवचेतन की सृजनशीलता के क्षण में नया आलोक भर देता हो—तब मनुष्य का विकास सम्भाव्य है, तब वह 'प्रांत' से केन्द्र की ओर बढ़ सकता है, वह अपने 'स्व' को एक व्यक्त्युपरि प्रयत्न में विलसित कर सकता है, एक नया मनुष्य बन सकता है, जिसका अन्तरालोक अँधेरे में स्वयं उसे तथा औरों को मार्ग दिखा सके...।

...कदाचित् परिवर्तन का तर्क बहुत सूक्ष्म है। सतह पर इतना कम परिवर्तन होता है कि भीतरी परिवर्तन का अनुमान ही नहीं हो पाता...।

...हमारी छोटी-छोटी नदियों में विराट् विद्युत्शक्ति भरी पड़ी है, जैसे कि हमारे कथासरित्सागरों में मानवी ज्ञान के उज्ज्वल रत्न छिपे हुए हैं।

—मुल्कराज आनन्द

धौली की अधूरी नारी-मूर्ति वहीं-की-वहीं रही। लाज-लजी-सी नारी अनबुने सपने बुनती रही, बीती बातें गुनती रही। मेघ आये और गये बेपहचाने यात्री अश्वत्थामा को अपनी पहचान दे गए। धूप के रंग फैले और सिमटे। ऋतु-वधूटियाँ आयीं और यहीं की हो रहीं। दुध-मुँहे मुहूर्त्त मुड़-मुड़ जागे। सात वर्ष बीत गए।

दादी उदास रहती है। पाथुरिया गली के बच्चे उसे लाठी के सहारे चलते देखकर पीछे से 'पगली दादी' कहकर छेड़ते हैं। दादी बुरा नहीं मानती। सोचती है, बच्चे तो बाल-गोपाल हैं।

दुनिया बदल गई।

उड़ीसा की राजधानी कटक से भुवनेश्वर आ गई। रेल की पटरी के उस पार नूतन भुवनेश्वर बसाया गया है। नये दफ़्तर बनाये गए, ऊँचे और पक्के। स्वतन्त्रता का नव-जातक है नूतन भुवनेश्वर। नयी इमारतों के शिखर पर भुवनेश्वर के पुराने मन्दिर-स्थापत्य की पुट दी गई है। इसका सुझाव अलवीरा ने दिया था। सरकार ने वह योजना शिरोधार्य करते हुए तो उसमें नीलकण्ठ का योगदान लिया। बाहर से आने वाले लोग नूतन भुवनेश्वर के भवनों में पुरातन भुवनेश्वर का यह कला-स्पर्श देखकर

पुलकित हो उठते हैं । यह समाचार जागरी द्वारा दादी को मिलता रहता है ।

गुरुचरण की रासलीला-मण्डली ने 'उत्कल नृत्य नाटक संस्थान' का रूप ले लिया । सोना इस संस्थान की जान है । साज-सज्जा में यह संस्थान भले ही थोड़ा पीछे हो, पर नर्तकी के रूप में सोना का जवाब नहीं ।

पिछले साल पेरिस में' थिएटर द नेशन्स' द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय समारोह में सोना को सर्वोच्च नर्तकी की पदवी दी गई ।

जागरी कई बार दादी के पास बैठकर कहता है, "सोना को पेरिस की हवा लग गई। हम रह गए धौली के पंछी ।"

"अपना-अपना भाग्य है, बेटा !" दादी मुस्कराती है ।

वैद्यजी रोगी के हाथ में पुड़िया थमाते समय उसे रोककर बताते हैं, "हमारे गुरुचरण की उत्कल नाटक मण्डली पिछले साल छः महीने सात सागर की यात्रा करती रही ।" और इसके उत्तर में वैद्यजी को यही सुनने को मिलता, "पैसे बनाए गुरुचरण ने । सोना को क्या खाक मिला !"

सोना बहुत बदल गई, ऐसा जागरी का ख़याल है । पर वह तो उसी तरह हँसती है, उसी तरह जागरी और दादी से बोलती है ।

सोना का बेटा है सागर, जिसे वह विदेश-यात्रा पर जाते समय दादी के पास छोड़ गई थी । वह दादी से इतना हिल गया कि अब सोना के पास जाता ही नहीं ।

रूपक अब भी मूर्तिशाला में बैठकर मूर्ति गढ़ता है । गगन महान्ती स्कूल की नौकरी से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं । वे रूपक से कहते हैं, "कहो तो तुम्हें भी कटक के आर्ट स्कूल में लगवा दें ?"

"मैं नौकरी नहीं करूँगा ।" रूपक यही उत्तर देता है, "गुरुदेव मना कर गए थे ।"

"उनके पोते ने नौकरी कर ली, तो तुम क्यों नहीं कर सकते ?"

"नहीं मास्टरजी, मैं नौकरी नहीं करूँगा ।"

वैद्यजी प्रसन्न हैं कि आखिर उनके सुपुत्र अन्तराल का ब्याह गगन

महान्ती की कन्या मीनाक्षी से हो गया। उस बात को पाँच वर्ष हो गए।

राजकुमारी कुन्तल का विवाह राजा साहब की इच्छा से एक सूर्य-वंशी राजकुमार से कर दिया गया था, जिसे वह घर-जमाई बनाने में सफल हो गए थे। महारानी पहले ही चल बसी थीं। फिर जब देश में देसी रियासतें विलीनीकरण की राह पर चल पड़ीं तो राजा साहब ने सरकार का घोर विरोध किया। सरकार के सामने एक न चली। राजा साहब ने एक दिन पुरी में सागर-तट पर आत्महत्या कर ली। अन्तराल को नौकरी से जवाब मिल गया। राजकुमारी तो नहीं चाहती थी, पर उसका पति न माना। यह कथा वैद्यजी अपनी दुकान पर आने वाले रोगियों से अवश्य कहते हैं।

रोगी के हाथ में दवा की पुड़िया देते हुए वैद्यजी कहते हैं, "मास्टरजी की कितनी प्रशंसा की जाए! अन्तराल की नौकरी चली जाने पर भी उन्होंने मीनाक्षी को उससे ब्याह दिया। चलो तीन साल की बेकारी के बाद सरकारी नौकरी मिल गई हमारे अन्तराल को।"

"अपना-अपना भाग्य है।" सामने से यही उत्तर मिलता है।

"गाँव-मुखिया पाँचू अब नहीं रहा। उसकी जगह उसका बेटा बंशी गाँव-मुखिया बन गया। पाँचू अंग्रेज़ी सरकार की जय बुलाता था, बंशी कांग्रेसी सरकार की।

मायाधर निरबंसिया ही चले गए, केलू काका की तरह। काँसे-पीतल के बरतनों की दुकान भी उनके साथ ही उठ गई। अब तो मायाधर की याद ही रह गई, लोकनाथ मिस्त्री की तरह। बहुत गये, बहुत आये। धौली की पहचान वही है। जैसे पाथुरिया गली में कुछ भी फेर-बदल न हुआ हो। जो चले गए, उनकी याद आती है।

जागरी को नूतन भुवनेश्वर सभ्य, भव्य और सुरुचिपूर्ण लगता है, पुरातन भुवनेश्वर मलिन-मुख खण्डहर-सा। फिर भी वह कहता है, "अपने को तो पुरातन भुवनेश्वर ही अच्छा है, जो दाल-भात देता है। युग-युग जिएँ यात्री, जो पुरातन मन्दिर देखने चले आते हैं।"

साइकल पर भुवनेश्वर आते-जाते हैं वैद्यजी । अन्तराल के पास नूतन भुवनेश्वर भी हो आते हैं, साइकल पर।

वैद्यजी की देखा-देखी जागरी ने भी साइकल ले ली ।

सोना हँसकर कहती है, "गुरुचरण भाई साहब की मण्डली में क्यों नहीं आ जाते ? अगली बार तुम्हें भी सात सागर तेरह नदियाँ पार ले चलेंगे ।"

"यही तो बड़ी मुश्किल है ।" जागरी तुर्की-बतुर्की जवाब देता है, "मुझे मक्खन लगाना नहीं आता । मैं गुरुचरण को गुरुचरण भाई साहब कैसे कहूँ ?"

गगन महान्ती वैद्यजी की दुकान पर बैठकर हमेशा कांग्रेसी सरकार की आलोचना किया करते हैं । "राजनीति ऐसी ही चीज़ है । वह मूर्ति तो देखने को नहीं मिलती, जिसके नाम पर वोट माँगते हैं ।"

वैद्यजी सरकार का पक्ष लेते हैं, "एक पार्टी को दूसरी पार्टी हमेशा बदनाम करने की कोशिश करेगी । आप ही बताइए, टैक्स लगाए बिना सरकार का काम कैसे चले ? सावित्री ने प्रेम से मौत को जीत लिया था । यही काम हमारी सरकार करने जा रही है । आप क्या ख़बर-कागज़ नहीं पढ़ते ?"

"ख़बर-कागज़ तो वही कथा कहता है, जो सरकार चाहती है । वैद्यजी, यह कुछ झूठ नहीं ।"

"देश की दशा कितनी सुधर गई है, यह आप नहीं देखते, मास्टरजी ?"

"मुझे तो आज़ादी का कूल-किनारा नहीं मिला अभी । क्या अन्तर्यामी से पूछकर ढूँढना होगा आज़ादी का रंग सात पाताल में ?"

"मुझे तो खबर-कागज़ पढ़ते हुए लगता है मास्टरजी, कि आज़ाद भारत में सरकार का प्रेम झर रहा है, जैसे मूर्ति की मुद्रा में मूर्तिकार का प्रेम झरता है ।"

पिछले युग की बातें पाथुरिया गली में तैरने लगती हैं, जैसे त्रिमूर्ति

राह-चलते लोगों को पुकारकर पूछ रही हो—तुम्हें आज़ादी का मेवा कितना मीठा लगा ?

चतुर्मुख की याद में गगन महान्ती और वैद्यजी की आँखें डबडबा आती हैं। वे एकटक त्रिमूर्ति की ओर देखने लगते हैं। पास खड़े पीपल के पत्ते डोलते रहते हैं, जैसे त्रिमूर्ति के मूर्तिकारों का अभिनन्दन मुखर हो उठा हो।

पाथुरिया गली को उर्वशी गली का नाम देना चाहा था जागरी ने, पर नया नाम न जम सका।

"क्या आज़ादी की यही कल्पना है ?" गगन महान्ती चुप न रहते, "जो अंग्रेज़ सरकार के चापलूस थे, रात-की-रात नई सरकार के अनुगामी बन गए ! तब भी उनके मज़े थे, अब भी उनके मज़े हैं।"

हर शनिवार को नीलकण्ठ, अलबीरा और नन्हा रूपम् धौली में आ जाते हैं, तो मानो दादी के लिए चाँद चढ़ जाता है। पर यह चाँद दो रातें गुज़ारकर ही उसकी आँखों से ओझल हो जाता है।

नीलकण्ठ को नौकरी करते आठ वर्ष हो गए। इस बीच बहुत-कुछ पाया, बहुत-कुछ खोया। नौकरी स्थायी रखने के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ा! जिन राजा साहब की सिफ़ारिश पर उसे कटक के आर्ट स्कूल का प्रिन्सिपल बनाया गया था, वे कभी के चल बसे थे। उन्होंने आत्म-हत्या कर ली थी। ख़बर मिलते ही वह पुरी जा पहुँचा था। आज भी उन दिनों की याद हो आती है।

एक साँस में बहुत से प्रश्न पूछ लेती है अलवीरा। वह नहीं चाहती, कोई अनर्थ होने पाए। उसकी अपनी नौकरी को हिलाने वाला तो कोई पैदा नहीं हुआ। नीलकण्ठ की नौकरी संकट में है। सात सौ पर आरम्भ हुई थी, चालीस रुपये वार्षिक वृद्धि। एक वर्ष के बाद यह पोस्ट दोबारा विज्ञापित की गई और पब्लिक सर्विस कमीशन ने अनेक उम्मीदवारों का इण्टरव्यू लिया। उस इण्टरव्यू में भी नीलकण्ठ ही चुना गया। अब आठवाँ बरस चल रहा है। वेतन हज़ार से ऊपर पहुँच गया। सब्र का प्याला भी मुँह तक आ गया। जिस विभाग के मातहत है आर्ट स्कूल, उसके नये मन्त्री को नीलकण्ठ के विरुद्ध कर दिया गया है। इसी से उसकी नौकरी जाने का भय है। अभी-अभी ख़बर मिली है, मन्त्री ने आर्ट स्कूल के

लिए एक स्क्रीनिंग कमेटी बना दी। नीलकण्ठ काम से मतलब रखता है। आर्ट स्कूल ने जितनी उन्नति की, उसकी सब प्रशंसा करते हैं। यह देखते हुए कह सकते हैं कि स्क्रीनिंग कमेटी नीलकण्ठ के विरुद्ध क़दम न उठा सकेगी।

"हार-जीत का नाम है दुनिया। घबराने की तो बात नहीं, अलवीरा!" सारी बात को नाप-जोखकर नीलकण्ठ कहता है, "मुझे न्याय की आशा है।"

अलवीरा दोनों हथेलियाँ फैलाकर कहती है, "हिंसक वृत्ति बढ़ रही है। किसी के पेट पर लात मारने से बड़ी हिंसा क्या होगी?"

मन्त्री महोदय दिल के बुरे नहीं। पर वे नीलकण्ठ के विरोधियों की बातों में आ गए। उनसे कोई निवेदन करना व्यर्थ है। नीलकण्ठ का काम सबके सामने है। विद्यार्थियों में लड़के भी हैं और लड़कियाँ भी। उनमें कोई गड़बड़ नहीं होने पाई। कन्ध-देश की यात्रा पर नीलकण्ठ विद्यार्थियों के साथ जाता रहा है।

आदिवासियों की कला से हम बहुत-कुछ सीख सकते हैं, नीलकण्ठ का यह दृष्टिकोण आर्ट स्कूल की उन्नति में सहायक सिद्ध हुआ है।

अपूर्व और श्यामली ने मिलकर कन्ध-देश की कला के अध्ययन में आर्ट स्कूल के साथ सदा सहयोग दिया। फिर तो श्यामली भी आर्ट स्कूल में भरती हो गई। पाँच वर्ष का कोर्स पूरा करके अब वह आर्ट स्कूल में ही नौकरी करती है। पहले दो वर्ष पति-पत्नी को अलग रहना पड़ा। फिर अलवीरा की कोशिश से अपूर्व को भी कटक के एक स्कूल में जगह मिल गई।

नीलकण्ठ कहता है, "श्यामली के रूप में समूची कन्ध संस्कृति कटक में आकर विराजमान हो गई है।"

"इसमें तो सन्देह की गुंजाइश नहीं।" अलवीरा अनुमोदन करती है।

श्यामली कहती है, "प्रिन्सिपल के पद से नीलकण्ठ को हिलाने का किसी में दम नहीं हो सकता। स्क्रीनिंग कमेटी लिख देगी, नीलकण्ठ

निर्दोष है। मन्त्री महोदय की ऐसी क्या ज़िद हो सकती है कि नीलकण्ठ की जगह दूसरे आदमी को प्रिन्सिपल बनाकर छोड़ें !"

नीलकण्ठ दूसरी बात कहता है, "हम नदी की तरह दोनों किनारों से जाने किस-किस नाले का जल ग्रहण करते हुए आगे बढ़ते हैं। सागर को समूचा जल सौंपने के संस्कार का पालन करते हुए सब हिसाब चुकाना होता है। यह तो मैं सदा कहूँगा, श्यामली ! तुम्हें देखकर मेरी आँखों में सम्पूर्ण कन्ध-देश तैरने लगता है।"

"सभ्यता की दौड़ में आदिवासी लोग कितने पिछड़ गए !"

"क्या आदिवासियों को साथ लिये बिना हमारा आगे बढ़ना कुछ अर्थ रखता है ?"

यही नीलकण्ठ की चिन्तन-धारा की दिशा है। बीचों-बीच तिरता आता है किसी कन्ध गीत का बोल या किसी नृत्य का ताल। उस समय नीलकण्ठ श्यामली को बुलवाकर कहता है, "अपने देश का कोई गीत सुनाओ, श्यामली ! सच कहता हूँ, कभी-कभी जी में आता है, सब छोड़-छाड़कर कन्ध-देश में जा बसूँ !"

"वहाँ भी मन को शान्ति नहीं मिलेगी, प्रिन्सिपल साहब ! मिलती तो मैं यहाँ क्यों आती ?" श्यामली असम्मति प्रकट किये बिना नहीं रहती।

कुछ लोग प्रिन्सिपल से जलते हैं कि वेतन में हज़ार से ऊपर मार लेते हैं, और पत्थर गढ़-गढ़कर और भी जाने कितना वसूल कर लेते हैं।

"चिन्ता व्यर्थ है। जलने वालों को जलने दीजिए।" श्यामली समझाती है।

अविश्वास के वातावरण में नीलकण्ठ बुरी तरह सोचता है—ईर्ष्या की दीवार ऊँची उठ रही है, चीन की दीवार की तरह।

वेतन में मिलने वाले एक हज़ार छोड़कर भी क्या मैं अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह सकता ? हजार के बिना क्या हमारी गृहस्थी का दम घुट

जाएगा ? इतने रुपये के बिना क्या मैं निस्तेज हो जाऊँगा ? ये प्रश्न नीलकण्ठ को अन्तर्मुखी बनाए रखते हैं।

एकान्त में बैठे-बैठे उसे लगता, धौली की पाथुरिया गली में बाबा की आत्मा घूम रही है। जैसे बाबा शिकायत कर रहे हों, "अधूरी मूर्ति छोड़कर तुम क्यों चले गए, नील ?"

कोइली आकर समझाती है, "भैया, इतने उदास क्यों रहते हो ?"

"तुम्हारी कविता का क्या हाल है ?" नीलकण्ठ बात टालने के लिए पूछता है।

"अन्नदा बाबू आ गए। मेरी तीन सौ कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद वे कर बैठे हैं। अलवीरा भौजी से अंग्रेज़ी ठीक कराएँगे। फिर पुस्तक छपने के लिए लन्दन के प्रकाशक को भेजी जाएगी।"

अपूर्व कोइली की मूल कविता का प्रशंसक है। अनुवाद की बारीकियाँ वह नहीं जानता। अनुवाद में अन्नदा बाबू काफ़ी स्वतन्त्रता बरतते हैं।

अलवीरा कहती है, "अनुवाद में जो काट-छाँट करनी पड़ती है, उससे तो कविता की भाव-भूमि कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचती है !"

कोइली कुछ नहीं बोल सकती। वह उल्टे अन्नदा बाबू का आभार मानती है, जो उसकी ख्याति को चार चाँद लगाने पर तुले हुए हैं।

नीलकण्ठ हँसकर कहता है, "अनुवाद की काट-छाँट भी तुम ऐसे कर रही हो अलवीरा, जैसे छेनी से पत्थर गढ़ते हैं।"

अन्नदा बाबू मुस्कराकर कहते हैं, "हर भाषा की अपनी सीमाएँ हैं और फिर अनुवादक की मजबूरियाँ। यह तो आप भी मानेंगे कि जिस भाषा में अनुवाद किया जाए, उसकी मूल कविता के सम्मुख वह अछूत तो नहीं लगनी चाहिए। यह मेरा सौभाग्य है कि अनुवाद को माँजते समय अलवीरा अंग्रेज़ी मुहावरा ठीक से बिठा देती है।"

किसी-न-किसी बात पर अपूर्व और अन्नदा बाबू में झड़प हो जाती है। कोइली दोनों के साथ बनाए रखना चाहती है।

कोइली के प्रति अपूर्व की कमज़ोरी खूब समझती है श्यामली।

अन्नदा बाबू के मन का अनुराग भी उससे छिपा नहीं रहता। उसकी अपनी श्रद्धा भी नीलकण्ठ की ओर झुक जाती है। यह बात नीलकण्ठ से भी छिपी नहीं रहती।

एकान्त में बैठकर नीलकण्ठ सोचता—श्यामली के लिए मेरे मन में यह कैसा अनुराग है? श्यामली हँसती है तो मानो कन्ध-संस्कृति हँस उठती है। कोई कथा कहती है तो जैसे चिर-काल की मूक कन्ध-संस्कृति को भाषा मिल गई है। अन्नदा बाबू कोइली की कविता का अनुवाद कर सकते हैं, तो मैं भी श्यामली की कथा अन्तर्मन में उतार सकता हूँ।

आर्ट स्कूल का वातावरण जाने कैसे अविश्वास से भर उठा। मन्त्री महोदय प्रिन्सिपल को बदलने पर तुल गए। घर पर खाली समय में नीलकण्ठ पहले के समान ही मूर्ति गढ़ता रहता, जैसे अधूरी मूर्ति को पूर्ण करने की कथा चैन न लेने देती हो।

नीलकण्ठ मूर्ति गढ़ते-गढ़ते सोचता—'कल्पना के हज़ार हाथ हैं, हज़ार आँखें। काम तो काम है, काम से छुटकारा नहीं। पत्थर को चीन्ह लिया तो मूर्ति कैसे कथा नहीं कहेगी? कुछ भी अच्छा नहीं लगता। फिर भी अधूरी मूर्ति तो पूर्ण करनी होगी। इसमें तो श्यामली भी सहमत है। जब देखो मेरी प्रशंसा के पुल बाँधने लगती है। पगली! कहती है, प्रिन्सिपल को बदला गया, तो मैं इस्तीफ़ा दे दूंगी।'

छुट्टी का दिन हो तो यह नहीं हो सकता कि श्यामली मिलने न आए। नीलकण्ठ उसकी बाट जोहता है, यह कथा अलबीरा से भी छिपी न रहती।

"दामी चीज़ पत्थर है या मूर्ति? क्यों प्रिन्सिपल साहब?" श्यामली आकर पूछती है।

"दामी तो हाथ की मेहनत है, श्यामली!" नीलकण्ठ बरामदे में मूर्ति गढ़ते हुए महानदी की ओर देखकर कहता है, "हाथ चलता है तो दिमाग़ भी चलता है, जैसे महानदी बहती है। व्यस्त रहना ही सुख का साधन है। कौन जाने, मेरी साधना धौली की ओर मुड़ जाएगी।"

"मन्त्री महोदय इतनी भूल नहीं करेंगे।"

"करेंगे तो हरि-इच्छा। तुम कन्ध-देश की कथा कहो।"

"सब तो कह चुकी हूँ।" श्यामली मुस्कराती है, "कुछ भी तो शेष नहीं।"

"कन्ध-देश की आत्मा न जाने कब से सो रही है। उसे कैसे चिर-निद्रा से छुटकारा मिलेगा? वह अहिल्या न जाने कब शाप-मुक्त होगी। श्यामली, तुम्हारा मन क्या कहता है?"

"मन की कथा सुनने का किसे अवकाश है! आपकी वह कथा मेरे मन लगती है कि धौली का बूढ़ा मूर्तिकार कन्ध-देश में गाँव-गाँव घूमकर कह रहा है—अधूरी मूर्ति पूर्ण करनी होगी।"

"बाबा की आत्मा तो यहाँ मेरे पास भी घूम रही है। अलवीरा यह नहीं समझती। कोइली ने अपनी एक कविता में यह कथा कहने की चेष्टा की है। अन्नदा बाबू ने उसका अनुवाद अलवीरा को दिखा लिया, पर मेरी अन्तर्वेदना न अन्नदा बाबू समझे, न अलवीरा।"

"हर कथा हर आदमी नहीं समझ सकता। पत्थर सत्य है तो मूर्ति की कथा भी सत्य है। लोग कान न दें, तो मूर्ति का क्या दोष? अब कोई कहे, मैं नूतन भुवनेश्वर को देखता ही नहीं, तो उसमें नूतन भुवनेश्वर का क्या दोष?"

"नूतन भुवनेश्वर में रहते हैं हमारे मन्त्री महोदय। वे मुझे बदलने पर तुल गए। मुझसे मिलने का तो उन्हें अवकाश नहीं। फाइल पर जैसा चाहेंगे लिखेंगे।"

"फाइल भी तो कथा कहती है। उसका रवैया क्या होगा, भगवान् जाने। किसी को आशीर्वाद देती है फाइल, किसी को अभिशाप।"

"नूतन भुवनेश्वर की कथा छोड़ो, श्यामली!"

मूर्ति गढ़ते समय नीलकण्ठ की आँखों में श्यामली की छवि तैरती रहती है। यह बात श्यामली से छिपी है न अलवीरा से। अलवीरा बुरा नहीं मानती। वह कभी भूलकर भी नहीं सोचती कि कलाकार और

उसकी प्रेरणा का सम्बन्ध-विच्छेद कर दे।

अन्नदा बाबू कटक में हैं। अलवीरा अनुवाद की काँट-छाँट में जुटी रहती है। यह काम आशा से अधिक लम्बा होता जा रहा है। अन्नदा बाबू अलवीरा की प्रशंसा करते हैं, तो अलवीरा यह नहीं समझ पाती कि एकाएक कोइली से हटकर अन्नदा बाबू के मन-प्राण उसकी ओर कैसे खिंचे आ रहे हैं। अन्नदा बाबू ने अनुवाद पर जितनी मेहनत की है, उसे देखकर अलवीरा अन्नदा बाबू की प्रशंसा किये बिना नहीं रहती। अन्नदा बाबू कहते हैं, "अच्छे अनुवाद में नूतन मूर्ति गढ़ने में इतनी मेहनत कैसे नहीं करनी होगी? तुम्हारे बिना इसके प्राण कैसे जगते, अलवीरा?"

नीलकण्ठ सब देखता है, सब समझता है। एक मूर्ति उधर गढ़ी जा रही है, एक इधर। पास बैठकर श्यामली भी मूर्ति गढ़ती है—कन्ध-देश के किसी देवता की मूर्ति। पर नीलकण्ठ को लगता है, वह उसी की मूर्ति गढ़ रही है।

"पत्थर का मंगल इसी में है कि अधूरी मूर्ति पूर्ण हो जाए। उसी में मूर्तिकार की गति है। यह तो तुम समझती हो न! अरे आज तो तुम एकदम नई लग रही हो, श्यामली!"

"पहले की जानी-पहचानी कन्ध-लड़की नहीं?"

"बिलकुल नहीं। इसीलिए आज यह कहने को जी होता है—कथा कहो, श्यामली!"

श्यामली हँस पड़ती है, "दूसरों को बनाना कोई आपसे सीखे। मैं क्या कथा कहूँगी? मैं तो अनगढ़ शिला हूँ। अब यह कहकर उपहास कीजिए कि मैं किसके अभिशाप से शिला बन गई।"

श्यामली और नीलकण्ठ की बातें सुनकर अलवीरा भी मज़ाक करने लगती है। इसके उत्तर में श्यामली अन्नदा बाबू की प्रशंसा किये बिना नहीं रहती।

"बाबा की आत्मा तुम दोनों को अपनी-अपनी मूर्ति गढ़ते देख रही है।" अलवीरा छेड़ती है। और इसके उत्तर में श्यामली कह उठती है,

"बाबा की आत्मा तुम्हें भी तो देखती है। अन्नदा बाबू कितने महान् हैं! जितनी मेहनत से उन्होंने कोइली की कविता का अनुवाद किया, उससे आधी मेहनत से तो वह अपनी कविता लिख लेते। पर मुझे अनुवाद को छोटा काम नहीं कहना चाहिए। और किसी के अनुवाद की नोक-पलक सँवारना तो और भी पुण्य का काम है।"

नीलकण्ठ कहता है, "सारी कथा प्रेरणा की है। प्रेरणा ही पत्थर की भाषा है। मूर्ति ही मूर्तिकार की कथा कह सकती है। जैसे माँग का सिन्दूर सुहाग की प्रेरणा है। प्रेरणा की अवहेलना से कला का अमंगल होता है, अलवीरा!"

"मैं कब कहती हूँ, अवहेलना करो। पर मेरी भी तो कोई प्रेरणा हो सकती है।"

श्यामली हँसकर कहती है, "मैं तो मूर्ति गढ़ने को समय काटने का बहाना समझती हूँ। प्रिन्सिपल साहब की मूर्ति के साथ तो मेरी मूर्ति का कोई मेल नहीं हो सकता।"

"कला की महायात्रा में हम साथ-साथ चल रहे हैं। कथा कहो श्यामली!"

"मेरी कथा तो कन्ध-देश की कथा है।"

"कन्ध और उड़िया का कहीं कोई समन्वय भी तो हो सकता है।"

"कन्ध के संस्कार और, उड़िया के और। यह कथा पीछे भी कह सकते हैं। नूतन भुवनेश्वर जाकर मन्त्री महोदय से मिल आइए।"

"किस लिए? उन्हें मेरा काम नहीं चाहिए, तो ठीक है। फाइल जो कहेगी, मैं उसे हरि-इच्छा मानकर शिरोधार्य करूँगा।"

श्यामली उदास हो जाती है। लगता है उसके अपने मन-प्राण नीलकण्ठ से इतने घुल-मिल गए हैं।

अलवीरा सब देखती है, सब समझती है। श्यामली उसी रंग की साड़ी पहनती है, जो उसे सजती है। पर वही रंग तो नीलकण्ठ को भी पसन्द आता है। श्यामली पास हो तो वह घण्टों पत्थर गढ़ता रह सकता

है। फिर और कुछ नहीं चाहिए।

"क्या कन्ध-देश की कल्पना चलचित्र-सी तुम्हारी आँखों में घूम जाती है, श्यामली ?"

"क्यों नहीं ?"

"कन्ध-देश की कथा याद आती है ? समय से बहुत पिछड़ गई वह तो ?"

"कैसे नहीं पिछड़ेगी ? हम जो आगे निकल आए। पर कन्ध-देश की कथा कभी शेष नहीं होगी। उसमें नये-नये पात्र जुड़ते जाएँगे।"

"पर बीसवीं सदी के द्रुत ताल के सम्मुख बहुत ही विलम्बित लगता है कन्ध-देश का ताल। मेरा मन इस चिन्ता में घुलने लगता है।"

"यह चिन्ता छोड़िए। अपनी चिन्ता कीजिए। हो सके तो नूतन भुवनेश्वर जाकर मन्त्री महोदय की चरण-रज लीजिए, नहीं तो नौकरी का संकट टलना कठिन है।"

"जाती है तो जाने दो। नौकरी के पीछे आत्मा बेच दूँ ! अपनी छेनी-हथौड़ी तो कहीं नहीं जाएगी। जब मैं जन्मा तो क्या यह नौकरी लिखाकर लाया था ? कुछ दिन बीत गए, कुछ दिन और बीत जाएँगे।"

"आपकी नौकरी गई तो मुझे भी इस्तीफ़ा देना होगा। मैं कह चुकी हूँ।"

"हँसी में तो बहुत सी बातें कह दी जाती हैं।"

"मैंने वह कथा गम्भीर होकर कही थी।"

नीलकण्ठ ने पत्थर पर छेनी चलाते हुए श्यामली को देखा। वह भी मूर्ति गढ़ रही थी। नीलकण्ठ छेनी चलाते हुए सोचने लगा, 'मैंने श्यामली को इतना समीप क्यों आने दिया ? मेरी नौकरी चली गई और उसने इस्तीफ़ा दे डाला तो लोग बातें बनाएँगे। अलवीरा के रहते क्या मैं अपने मन-प्राण श्यामली की भेंट कर सकता हूँ ?'

उसे लगा, श्यामली ने उसके चेहरे के भाव पढ़ लिए।

"हे मूर्ति, मेरा प्रणाम लो।"

"मूर्ति को प्रणाम कर रहे हैं ?" श्यामली ने मुस्कराकर पूछा।

बाबा की आत्मा घूमती है और चेतावनी देती है—अधूरी मूर्ति पूर्ण करो। सोचता हूँ, धौली की अधूरी नारी मूर्ति-वाली चट्टान पर आधी रात के बाद न जाने कब से बिशु की आत्मा हाथ में छेनी लेकर ठक-ठक करती आ रही है। पर अधूरी मूर्ति के पूर्ण होने की अब कोई आशा नहीं।"

"आप ही क्यों नहीं उसे पूर्ण कर डालते ?"

"वह तो अपूर्ण ही रहेगी। हाँ, मन्त्री महोदय अपनी कथा अपूर्ण नहीं छोड़ेंगे।"

"मैं भी इस्तीफ़ा देने को तैयार बैठी हूँ।"

अलवीरा ने यह सब सुना और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

रूपम् को बच्चा-गाड़ी पर बिठाकर अलवीरा ज़ोर से नौकरानी को आवाज़ देती है :

"रूपम् को बाहर घुमा लाओ, आया !"

रूपम् जाना नहीं चाहता था। उसका मन था कि नीलकण्ठ के पास खड़े होकर उसे मूर्ति गढ़ते देखता रहे।

अलवीरा को रूपम् पर गुस्सा आ गया। उसका ध्यान अपनी ओर खींचते हुए अन्नदा बाबू, अपूर्व और कोइली मिलकर पुरी का एक चक्कर लगा आने की कथा ले बैठे।

रोते हुए रूपम् को आया बच्चा-गाड़ी पर लेकर घुमाने चली गई।

उधर कमरे में अनुवाद की काट-छाँट फिर चलती रहती। इधर बरामदे में नीलकण्ठ और श्यामली अपनी-अपनी मूर्ति गढ़ते रहते। नीलकण्ठ सोचता, 'कीर्तिहीन पत्थर कीर्ति पाना चाहता है। अनेक युग पार करती आई है मूर्ति की कथा, फिर भी वह अपूर्ण ही रह जाती है। इतिहास में इस कथा को स्थान नहीं मिलता, पर कथा की अनुभूति क्या इतिहास से कुछ कम सत्य है ?'

दूसरे दिन नीलकण्ठ आर्ट स्कूल में जाकर अपने कमरे में बैठा, तो

थोड़ी देर बाद श्यामली ने आकर पूछा, "कुछ सुना आपने ? नूतन भुवनेश्वर से ख़बर आई है।"

"मेरे लिए घबराने का प्रश्न नहीं। मैं तैयार बैठा हूँ।"

"मन्त्री महोदय ने आॅर्डर लिख दिया कि मुझे प्रिन्सिपल बना रहे हैं, आप होंगे वाइस प्रिन्सिपल। मैं तो यह मानने से रही।"

"चिन्ता की बात नहीं। यह हमारी परीक्षा है, श्यामली ! तुम्हें मूर्ति-कला की सौगन्ध, तुम प्रिन्सिपल बनोगी।"

"यह भी कोई सौगन्ध हुई भला ?"

"तुम्हें मेरी सौगन्ध, यह कथा यहीं शेष हो जाएगी। मैं धौली जाऊँगा। तुम्हारी क्लास का समय हो रहा है। तुम चलो।"

दोपहर को नूतन भुवनेश्वर से आॅर्डर आ गया, और श्यामली का मन उदासी में डूब गया।

नीलकण्ठ का दोष यही था कि उसने मन्त्री महोदय की मूर्ति बनाने से इन्कार कर दिया था।

अलवीरा ने यही सलाह दी कि नीलकण्ठ इस्तीफ़ा न दे। वह उसे समझाती रही, "तुम्हारा वेतन तो वही रहेगा जो तुम ले रहे हो। फिर इसमें स्वाभिमान की क्या बात है ? तुमने स्वयं ही इस्तीफ़ा दे दिया तो मेरी इतने दिन की दौड़-धूप व्यर्थ चली जाएगी। बड़ी कठिनाई से तो मैं कई मित्रों से कह-सुनकर मन्त्री महोदय को यह आॅर्डर लिखने पर बाध्य कर सकी, जिससे तुम्हारी आर्थिक क्षति तो बिलकुल न होने पाए।"

पर नीलकण्ठ का यही उत्तर था, "भले ही नई प्रिन्सिपल मेरी पुरानी छात्रा श्यामली ही होने जा रही हैं, पर मेरी आत्मा यह अपमान सहन नहीं कर सकती।"

और नीलकण्ठ ने इस्तीफा दे दिया।

वैद्यजी ने अख़बार में नीलकण्ठ के इस्तीफ़े की ख़बर पढ़ी, तो वे उसी समय साइकल पर सवार होकर नूतन भुवनेश्वर जा पहुँचे ।

"बेटा अन्तराल, तुम्हारी क्या सलाह है ? नीलकण्ठ की सहायता का कोई रास्ता तो निकालना चाहिए ।" वैद्यजी बहुत उदास स्वर में अपनी बात कहते रहे ।

अन्तराल ने कहा, "मन्त्री महोदय बड़े निरंकुश हैं । अगर नीलकण्ठ ने इस्तीफ़ा न दिया होता तो कुछ हो सकता था ।"

धौली में यह ख़बर सुनकर घर-घर उदासी छा गई ।

जागरी का दम-सा घुटने लगा । सोना को लगा, दिल पर ग़म की चट्टान आ गिरी । और दादी को तो जैसे काठ मार गया ।

लगता था, त्रिमूर्ति पर भी दुःख की छाया पड़ गई ।

रूपक सोचने लगा, 'गुरुदेव की आत्मा तो प्रसन्न होगी । वे तो नीलकण्ठ को सरकार की नौकरी करने से सदा मना करते थे ।'

वैद्यजी बोले, "मन्त्री महोदय ने क्या सोचकर यह ऑर्डर निकाला, जागरी ? कहाँ नीलकण्ठ, कहाँ श्यामली ! कोई बात हुई भला !"

अगले दिन अख़बार में कुन्तल का बयान छपकर आया । उसने

सरकार के इस अन्याय पर कसकर व्यंग्य किया था और मन्त्री महोदय की तानाशाही की खुलकर निन्दा करने से संकोच नहीं किया था। खुले शब्दों में उसने यह प्रश्न किया था कि क्या प्रिन्सिपल नीलकण्ठ द्वारा मन्त्री महोदय की मूर्ति बनाने से इन्कार करने की इतनी बड़ी सज़ा हो सकती है ?

"कुन्तल की हिम्मत की तो दाद देनी होगी, जागरी !" वैद्यजी ने गोलियाँ बनाते हुए कहा।

"उसने मन्त्री महोदय को अपना ऑर्डर वापस लेने की भी तो सलाह दी है, वैद्यजी !"

"शायद नीलकण्ठ से कहा जाए कि वह अपना इस्तीफ़ा वापस ले ले।"

"देखें, ऊँट किस करवट बैठता है।" जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "धौली के इतिहास में यह सबसे बड़ी दुर्घटना है।"

वैद्यजी बोले, "न्याय कम हो गया। यह कैसा राजधर्म है ? मन्त्री महोदय ने गुलाब के मधु में अफ़ीम के फूल का विष मिलाने की भूल की है।"

"तब तो नीलकण्ठ ने इस्तीफ़ा देकर अच्छा किया।"

"अच्छा किया या बुरा, यह तो मैं नहीं जानता। पर बात तो है तब कि वह धौली आकर बाबा के अड्डे पर बैठे, जिससे बाबा की भटकती हुई आत्मा को शान्ति-लाभ हो।"

"बाबा की आत्मा अभी तक भटक रही है ?"

"मैं तो यही मानता हूँ।"

जिस कुरसी पर जागरी बैठा था, उसका एक पाया टूटा हुआ था। वह झुका तो कुरसी लुढ़क गई। उसे गिरते देखकर वैद्यजी मुश्किल से हँसी रोक पाए।

जागरी की चिलम टूट गई। फिर से कुरसी पर बैठकर थोड़ी ख़ामोशी के बाद बोला, "अब मैं समझा, नीलकण्ठ से भी ऐसे ही भूल हुई। मन्त्री की मूर्ति बनाने से इन्कार करके उसने मानो तीन टाँगों वाली कुरसी

पर आगे को झुकने की भूल की।"

वैद्यजी सँभलकर बोले, "वह भी फिर से उस तीन टाँगों वाली कुरसी पर बैठ जाएगा।"

"इस्तीफ़ा वापस ले लेगा ?"

"मेरा मन तो यही कहता है।"

जागरी अवाक् होकर टूटी हुई चिलम की तरफ़ देखता रह गया।

अलवीरा को पूरी आशा थी कि कुन्तल के बयान से प्रभावित होकर मन्त्री महोदय अपना हुक्म वापस ले लेंगे। उसे वह दिन याद आया जब एक बार लन्दन में ताश खेलने का प्रस्ताव रखते हुए कहा था, "कैसा रहे अगर हम चुम्बनों की शर्त लगाकर खेलें।" बात करते-करते अलवीरा ने आवेश में आकर नीलकण्ठ को चूम लिया और कहा, "सरकार को वह ऑर्डर वापस लेना होगा, डार्लिंग !"

"वह ख़बर ऐसी होगी जैसे पका हुआ आम टपक पड़े।" नीलकण्ठ मुस्कराया।

"मैं जीवन में इससे अधिक और क्या चाहूँगी ? तुम फिर प्रिन्सिपल बन जाओ। मैंने तो तुम्हें कहा था, मन्त्री की मूर्ति बना दो। तुम न माने।"

"वे तो हुक्म दे रहे थे। मैं कैसे सिर झुकाकर कहता—हुज़ूर, माई-बाप !"

चाँदनी रात बड़ी भली प्रतीत हो रही थी। नीलकण्ठ ने अलवीरा को पहलू में समेटते हुए कहा, "डार्लिंग !"

अलवीरा की नीली आँखें चमक उठीं। नीलकण्ठ को यह अनुभव

होते देर न लगी कि संकट की घड़ी में पत्नी और भी आत्मीय हो उठती है। सेण्ट से महकते लम्बे केश, नीली आँखें। खिड़की से चाँद झाँक रहा था।

"चाँदनी में कल्पना इतनी मुखर क्यों हो उठती है, अलवीरा ?"

अलवीरा खिड़की के बाहर चाँद की ओर देखने लगी, जैसे संगीत धीरे-धीरे उभर रहा हो।

"हम बचपन में दया नदी के किनारे खेला करते थे, यह बात क्या भुलाए भूलने की है, नील ?"

नील ने अलवीरा के केशों का स्पर्श किया, जैसे कोई मूर्ति सजीव हो उठी हो; जैसे उनका विवाह हुए तीन दिन भी न हुए हों। उसने कहा, "लगता है, इतने दिन काम की इतनी भीड़ रही कि गोपन-वार्ता के लिए समय ही नहीं मिला।"

"कैसी गोपन-वार्ता ? मेरा स्नेह तो तुम्हारी मुट्ठी में है, डार्लिंग !" उसने आवेश में आकर नील के अधरों पर लम्बे चुम्बन की छाप लगा दी।

"लगता है, मेरी किसी मूर्ति ने मुझे चूम लिया।"

"मैं पत्थर की मूर्ति नहीं हूँ, नील !" उसके शब्द यों फैल गए, जैसे केले के चौड़े पत्तों पर वर्षा की बूँदें फैल जाती हैं।

"प्रेम का उत्तराधिकार तो भाषा से भी पहले का है।" नील मुस्कराया, "तुम यही कहना चाहती हो न ! पर पत्थर तो मानव से भी पहले की वस्तु है।"

अलवीरा ने हँसकर कहा, "सपना तो पत्थर का भार नहीं सह सकता।"

"मूर्तिकार के हाथों में आकर तो पत्थर भी जान लेता है अलवीरा, कि वह क्या चीज़ है जो सम्पूर्ण अन्तर को मथ डालती है।"

"वैसे तो मुझे कोई कमी नहीं खटकती, नील ! जैसा घर बनाना चाहा था, वह कभी का बन गया।" उसके पतले ओंठ मानो काँपने लगे।

उसने खिड़की के बाहर नज़र दौड़ाई, जैसे चाँद से पूछना चाहा—तुम क्या संकेत कर रहे हो ? जाने क्या सोचकर वह बोली, "मेरा सपना था, मैं नये इतिहास की रचना करूँ। खैर छोड़ो। कुन्तल कल ग्रा रही है। उसने लिखा है, वह मन्त्री महोदय से मिलकर आएगी। शायद बात बन जाए।"

"मैं कहे देता हूँ, कुछ नहीं होगा।"

"कुन्तल कुछ कर सके तो क्या बुरा है ?"

"वह अकेली आ रही है या महाराजकुमार भी साथ होंगे ?"

"यह तो उसने नहीं लिखा।"

फिर अन्तराल की बातें चल पड़ीं। नीलकण्ठ ने कहा, "वे दिन चलचित्र की तरह आँखों में घूम जाते हैं। महारानी तो चाहती थीं, कुन्तल का विवाह अन्तराल से हो। राजा साहब न माने। पर कुन्तल स्वयं अन्तराल को चाहती थी। फिर उसने कैसे दूसरी जगह विवाह कर लिया ?"

"महाराजकुमार सूर्यदेव सूर्यवंशी हैं।" अलबीरा मुस्करायी, "चंद्रवंशी होते तो नाम होता चन्द्रदेव ! राजा साहब को सूर्यदेव पसन्द आया। कुन्तल भी मान गई।"

"क्या कुन्तल को कभी उन दिनों की भी याद आती होगी, जब वह अन्तराल को दिल दे बैठी थी ?" नीलकण्ठ ने पूछ लिया।

"कितने लोग हैं, जिनका सपना पूरा होता है ?"

"कुन्तल वह राजा साहब की बात न मानती, तो राजा साहब को उसकी बात माननी पड़ती। कुन्तल ने समझौता क्यों किया ?"

"वह कल आ रही है। उसके मुँह पर ही उसे दोषी मत कह डालना। वह तुम्हारे लिए इतनी दौड़-धूप कर रही है।"

"नूतन भुवनेश्वर में सरकार के मन्त्रियों का स्वर्ग बसता है।" मीनाक्षी ने हँसकर कहा, "वह देखो, मन्त्रीजी की कार जा रही है। उसे प्रणाम करो। चूक हुई, तो नौकरी से हाथ धो बैठोगे। मन्त्री के सम्मुख सिर झुकाओ। वही इस युग का भगवान् है। उसकी कोठी पर प्रार्थियों का ताँता बँधा रहता है।"

"ऐसी बातें नहीं किया करते।" अन्तराल मुस्कराया, और फिर वह एकाएक उदास हो गया। थोड़ी ख़ामोशी के बाद बोला, "नीलकण्ठ पर क्या बीती? कुन्तल भी ज़ोर लगाकर हार गई। परसों की बात है। मैं कटक गया था। सोचा, नीलकण्ठ से मिल आऊँ। वहाँ कुन्तल ने आकर बताया कि मन्त्री महोदय टस-से-मस नहीं हुए।"

"श्यामली को कैसे प्रिन्सिपल बना दिया गया? यह तो नीलकण्ठ की ही पुरानी छात्रा है। माना कि कुछ प्रदर्शनियों में उसका काम सराहा गया और उसे राष्ट्रपति पदक भी मिल चुका है। फिर भी वह नीलकण्ठ से आगे कैसे निकल गई?"

"असल बात तो वही है। नीलकण्ठ ने मन्त्री की मूर्ति बनाने में संकोच किया। फाइल पर मन्त्री महोदय ने लिखा—आर्ट स्कूल का डिसिप्लिन

कायम रखने में प्रिन्सिपल नीलकण्ठ बहुत सफल नहीं हुए। प्रिन्सिपल के पद पर श्यामली की नियुक्ति की जा रही है। नीलकण्ठ के वेतन में कमी नहीं की जाएगी, परन्तु उनको अब वाइस प्रिन्सिपल के रूप में रहना होगा।"

"यह तानाशाही कब तक चलेगी?"

"चुप ही अच्छी है, श्यामली! दीवारों के भी कान होते हैं।"

"मैं तो कहूँगी, इस्तीफ़ा देकर नीलकण्ठ ने अच्छा किया। आखिर वह अपनी ही पुरानी छात्रा के नीचे वाइस प्रिन्सिपल बनना कैसे स्वीकार कर लेता?"

"बुरा भी क्या था? वेतन तो वही रहता। मैं समझता हूँ, नीलकण्ठ इस अपमान को सहकर विष-पान का आदर्श स्थापित कर सकता था।"

"आत्म-सम्मान भी तो एक चीज़ है।"

अन्तराल ने बात टालते हुए कहा, "एक और बात सुनो। पिछले साल गणतन्त्र-दिवस पर उड़ीसा की जो सांस्कृतिक मण्डली दिल्ली गयी थी, उसके साथ धौली का गाँव-मुखिया बंशी भी गया था। वह वहाँ एक नया चाँद चढ़ा आया।"

"वह क्या?"

"वह अपने हस्ताक्षर से यह चिट्ठी दे आया कि धौली की त्रिमूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय के लिए दी जा सकती है।"

"त्रिमूर्ति को कौन जाने देगा? और इसमें बंशी को क्या लाभ होगा?"

"यह तो वही सोच सकता है।"

"तो त्रिमूर्ति चली जाएगी?"

"देखो।"

"मैं जाकर पिताजी को समझाऊँगी। वैद्यजी भी कभी नहीं चाहेंगे कि त्रिमूर्ति चली जाए।"

"मन्त्री तो जो चाहें कर सकते हैं।"

"त्रिमूर्ति नहीं जाएगी, अन्तराल!" मीनाक्षी ने बलपूर्वक कहा,

"मन्त्री तो आएँगे और जाएँगे। त्रिमूर्ति की महिमा बनी रहेगी। धौली उससे निरन्तर संस्कार ग्रहण करता रहेगा।"

कहने को तो यह कह गई मीनाक्षी, पर उसके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ बनी रहीं !

• • •

जागरी त्रिमूर्ति को बचाने के लिए सबसे अधिक चिन्तित था। बंशी कहता फिरता था, "त्रिमूर्ति जाके रहेगी। किसी की मजाल नहीं, सरकार के सामने ज़बान खोल सके !"

वैद्यजी का खयाल था, भगवान् सहायक हों तो त्रिमूर्ति कहीं नहीं जा सकती। गाँव में दो दल हो गए।

जागरी के दल ने गाँव-गाँव जाकर ढोल बजवा दिया कि धौली की त्रिमूर्ति जा रही है, उसे बचाने के लिए पंचायत होनी चाहिए।

जागरी दो-तीन बार कटक हो आया था। नीलकण्ठ और अलवीरा ने यही कहा, "तुम पंचायत करो। उसमें हम भी आएँगे।"

घोड़ों के पैर ठोंकने की आवाज़ की तरह गाँव-गाँव त्रिमूर्ति की बात चल पड़ी। वैद्यजी के मुँह में एक ही बात थी, "पाँच सौ साल बाद भी त्रिमूर्ति यहीं रहेगी। सरकार तो आनी-जानी है। त्रिमूर्ति स्थायी रहेगी।"

दादी डरती थी कि कहीं त्रिमूर्ति चली न जाए। सोना कहती, "त्रिमूर्ति यहीं रहेगी।"

"गाँव के पूजा-पाठ उत्सव पर त्रिमूर्ति का वरदहस्त रहना ही चाहिए !" गुरुचरण थाप लगाता।

बहुत से लोग त्रिमूर्ति पर फूल चढ़ाने लगे थे, जैसे उनका विचार हो कि त्रिमूर्ति स्वयं अपनी मदद कर सकती है।

जागरी त्रिमूर्ति की प्रशंसा के पुल बाँध देता। वह त्रिमूर्ति की बात यों करता जैसे केले के पत्ते पर गरम-गरम भात परोसा जाता है।

वंशी कहता, "सरकार के सामने चूं करना अपराध है।"

"अरे, देख लेंगे सरकार का हाथ !" जागरी चिढ़कर उत्तर देता।

"सरकार का हाथ तुमने देखा नहीं।" वंशी हँस पड़ता, "सरकार के पास पुलिस है, फौज है।"

बहस बढ़ने लगती। वैद्यजी बीच-बचाव करते। ऐसा प्रतीत होता था कि जागरी और वंशी में हाथापाई की नौबत आ सकती है।

"सरकार तुम्हें इस अपराध में जेल भेजेगी कि तुमने गाँव-गाँव ढोल बजवाकर त्रिमूर्ति के बारे में लोगों को भड़काया है। क्यों, जागरी !"

"सरकार की कठपुतली से हम बात नहीं करते।"

"सरकार अपनी है तो सरकार का पक्ष ही देश-भक्ति है।"

"सरकार की गुलामी को देश-भक्ति कहते हो ?"

कुछ लोग तटस्थ थे। फिर भी तम्बाकू पीते समय त्रिमूर्ति की बात चल पड़ती। कोई कहता, "त्रिमूर्ति जाके रहेगी।"

"इसके लिए तो पंचायत होनी चाहिए।" पास से कोई सुझाव देता।

"पंचायत तो होगी ही।"

"नीलकण्ठ और अलवीरा को भी आना चाहिए।"

"आएँ तो अच्छा है।"

"गाँव-मुखिया को ऐसा नहीं करना चाहिए था।"

"अब तुम उसे उपदेश देने चले ?"

"सच्ची बात तो कही जा सकती है।"

"हमें कौनसा दूध देती है त्रिमूर्ति !"

"तो त्रिमूर्ति को जाने दें ?"

"त्रिमूर्ति नहीं जाएगी, भाई ! मैं कहे देता हूँ।"

"सरकार से टक्कर ले सकने का दम है लोगों में ?"

"त्रिमूर्ति स्वयं अपनी रक्षा करेगी।"

त्रिमूर्ति से सटे हुए मंच पर पंच जमकर बैठ गए। वे हैरान थे कि न मन्त्री महोदय आये, न दिल्ली से आया हुआ अधिकारी। पंचायत की कारगुज़ारी कैसे आरम्भ हो? पंच बीच-बीच में उठकर उपस्थित लोगों को धीर बँधा देते। पीपल के पत्तों से छन-छनकर सूरज की किरणें लोगों के चेहरों पर पड़ रही थीं। पीपल के पत्ते हवा में तालियाँ बजा रहे थे।

अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान की ओर से आने वाली हवा बाँसुरी की धुन साथ लिये आ रही थी।

भीड़ के किनारे बैठा एक बूढ़ा फतूही उतारकर जुएँ मार रहा था और साथ वाले ठठेरों के छोकरे से कह रहा था, "एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है।"

पास से किसी ने चिल्लाकर कहा, "हमें अभी से बुलाने की क्या दरकार थी, जब न मन्त्री मौजूद हैं न दिल्ली का अधिकारी, जो त्रिमूर्ति को चट्टान से काट ले जाना चाहता है, और न नीलकण्ठ और अलवीरा ही आये हैं।"

किसी ने ज्ञान बघारा, "खरी बात तो अपनी पहचान है, जिसके लिए प्राणी बार-बार जन्म लेता है।" और फिर किसी की हँसी गेंद की तरह

उछली, "अरे वाह ! बड़ा आया ज्ञानी ! जब तक पंचायत शुरू नहीं होती, भागवत् की कथा ही सुना दो न !"

जैसे भीड़ का शोर हर आवाज़ को गठरी में बाँध रहा हो। मंच पर किसी ने उठकर कहा, "मन्त्री महोदय अब दिल्ली के अधिकारी को लेकर आते ही होंगे।" यह थी वैद्यजी की आवाज़।

भीड़ में से कोई हँस पड़ा, "धत् ! क्या यह भी कोई दवा की पुड़िया है ? अरे थोड़ा-सा मीठा चूरण ही चटा दो, वैद्यजी !"

इतने में अलवीरा और नीलकण्ठ आ पहुँचे। नीलकण्ठ ने खादी की सफ़ेद धोती और कुरता पहन रखा था, और अलवीरा ने चौड़ी पीली किनारी की सफ़ेद साड़ी।

भीड़ के किनारे बैठा बूढ़ा बराबर अपनी फतूही की जुएँ निकालकर मार रहा था। उसने अपने साथ वाले से कहा, "यह नाटक और कब तक चलेगा ? ज़रा-सी बात है। पानी से मक्खन कैसे निकलेगा ?" साथ वाला हँस पड़ा, "क्यों फ़िज़ूल बात करता है, बाबा ? तू बैठा जुएँ मार ! तुझे क्या ? त्रिमूर्ति रहे चाहे जाए।"

"अपने राम को तो भूख लगी है।" वह बूढ़ा पेट बजाने लगा।

भीड़ में से कोई बोला, "पत्थर तो हमें भात देने से रहा ! छोड़ो मूर्तियों की बातें।" दूसरे ने उसकी ओर घूरकर कहा, "तेरा मतलब है, त्रिमूर्ति चली जाए ? मन्त्री को मनमानी करने दी जाएगी, तो वह यही समझेगा, वह साहब है और हम गुलाम !" फिर किसी ने पास से कहा, "शंख बजाने और आरती उतारने से बहरे देवता आज तक न पसीज सके। त्रिमूर्ति जाती है तो जाए, हमारी बला से।" फिर शोर उठा, "त्रिमूर्ति नहीं जाएगी। त्रिमूर्ति हमारी है। अरे भाई, कह दिया··· हज़ार बार कह दिया !"

मन्त्री और दिल्ली का अधिकारी आ पहुँचे। मंच के पास खड़े होकर जागरी ने नारा लगाया :

"जय त्रिमूर्ति ! जय आज़ादी !"

भीड़ में से किसी ने कहा, "यह भी मन्त्री की चाल मालूम होती है। हम त्रिमूर्ति नहीं देंगे, चाहे जागरी लाख जय बुलाए।"

कोई भी चुप नहीं रहना चाहता था। मंच से घोषणा की जा रही थी, "मन्त्री महोदय और दिल्ली के अधिकारी बाबू आ चुके हैं। अब पंचायत शुरू होगी।"

किसी ने पीछे वाले से कहा, "बाबा तो कहा करते थे, हम लन्दन से अपनी मूर्तियाँ वापस लाएँगे। यहाँ हमारी त्रिमूर्ति चट्टान से काटकर दिल्ली ले जाई जा रही है।" पीछे वाला बोला, "सारा कसूर तो गाँव-मुखिया बंशी का है। सरकारी दरबार से इनाम पाने के लालच में उसने गाँव की नाक काटने से हाथ नहीं रोका।" फिर किसी ने कहा, "मन्त्री की तो हम एक नहीं सुनेंगे। हम दबैल नहीं बसते। दिल्ली के बाबू की भी हम लल्लो-चप्पो नहीं करते।"

मन्त्री की रक्षा के लिए पुलिस भी आयी थी।

मंच पर खड़े होकर नीलकण्ठ ने कहा :

"त्रिमूर्ति गाँव की सम्पत्ति है, मेरी नहीं। गाँव की पंचायत चाहे तो दे सकती है।"

इसी का फैसला करने के लिए पंच बैठे थे।

पंचायत में शान्ति कम थी। भीड़ का शोर उभर रहा था। स्थिति गम्भीर थी। दंगा हो जाने का भय था। पर मन्त्री महोदय तो तूफ़ानी हवा का मुक़ाबला करने की क्षमता रखते थे।

गाँव-मुखिया बंशी ने मंच से उठकर कहा, "मेरा यही मत है कि हम त्रिमूर्त्रि देने में रोड़ा न अटकाएँ। सरकार हमारी है। सरकार को त्रिमूर्ति की ज़रूरत है। सरकार तो वैसे भी ले जा सकती है त्रिमूर्ति।"

गाँव-मुखिया की बात से जन-समूह में जोश की लहर दौड़ गई। भय था कि कहीं खून-खराबी न हो जाए।

मन्त्री महोदय ने लोगों की तालियों में उठकर कहा :

"त्रिमूर्ति आपकी है। सरकार का इस पर कोई अधिकार नहीं।

पर दिल्ली हमारे महान् देश की राजधानी है। यह त्रिमूर्ति दिल्ली ले जाई जाएगी, अगर आप देश के हित में यह कुर्बानी कर सकते हों। दिल्ली के राष्ट्रीय म्यूज़ियम में हमारे देशवासी इसे देखेंगे, देश-देश के यात्री इसे देखेंगे, इससे प्रेरणा लेंगे। युग-युग तक इसका नाम रहेगा..."

जागरी ने नारा लगाया, "जय त्रिमूर्ति ! जय आज़ादी !"

लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। पंच चुप थे। मन्त्री महोदय चित्र-लिखित-से खड़े थे।

नीलकण्ठ ने उठकर कहा :

"बाबा कहा करते थे—ब्रह्मा पत्थर की मूर्ति में भी प्राण डाल सकते हैं। यहाँ तो त्रिमूर्ति में प्राण नहीं पड़े। शायद दिल्ली के म्यूज़ियम में जाकर ही प्राण पड़ें।"

मन्त्री महोदय अवाक् खड़े जैसे कोई युक्ति सोचते रह गए।

"पूरा फैसला समझो," भीड़ में कोई अपने साथियों से कह रहा था, "त्रिमूर्ति नहीं देंगे।" फिर किसी ने कहा, "बंशी को देखो। सरकार की ठकुर-सुहाती न करे तो गाँव-मुखिया कैसे रहे ?"

पंच चुप थे। गगन महान्ती ने अपनी बूढ़ी आवाज़ में ज्ञान की बाती संजोई—"त्रिमूर्ति तो बनी ही थी बाहर जाने के लिए !"

जन-समूह को यह बात बड़ी विचित्र प्रतीत हुई। गगन महान्ती के सठिया जाने में किसी को सन्देह नहीं रहा। इधर-उधर से आवाजें उठीं :

"हो-हो-हो ! त्रिमूर्ति बनी ही थी बाहर जाने के लिए !"

"इसे पंचायत में किसने बुलाया ?"

"त्रिमूर्ति नहीं जाएगी।"

वैद्यजी गाँव-मुखिया बंशी की बगल में उकड़ूँ बैठे थे। वे दोनों हाथ फैलाकर बोले :

"राजा देश में पुजता है, विद्वान सब जगह। पर इसका यह भाव नहीं कि त्रिमूर्ति को अवश्य बाहर जाने दिया जाए। हस्तस्य भूषणम् दानम्। पर क्या हमें त्रिमूर्ति देकर ही यह सिद्ध करना होगा कि दान

हाथ का गहना है ?"

फतूही से जुएँ निकालने वाले बूढ़े ने घबराकर मंच की ओर देखा। अब तक कौन क्या-कुछ कह गया, इसका उसे पता ही नहीं चला था। उसने साथ वाले का कन्धा झँझोड़कर कहा, "पंचों की राय किधर है ?"

पास वाले ने हँसकर कहा, "इस तमाशे की बात छोड़ो, बाबा ! पुरी का रहने वाला वह कवि है न, जो यहाँ भी आया करता है। परसों भुवनेश्वर में मिल गया। बोला—मैंने वह काव्य पूरा कर लिया। अब वह उस काव्य को उठाए डोलता है, बाबा ! जैसे बन्दरिया मरे हुए बच्चे को छाती से चिपकाए रहती है।"

किसी ने वैद्यजी का नाम लेकर उन्हें 'उलटी खोपड़ी' की पदवी दी। फिर कहा, "कभी आपने दवा की पुड़िया भी दान में दी है, वैद्यजी ?"

जन-समूह जोश में उमड़ा पड़ रहा था। सबकी आँखों में गोलमाल तैर रहा था। भीड़ दो टोलियों में बँट गई। कुछ कहते थे—सरकार से डरो और त्रिमूर्ति दे दो। कुछ कहते थे—त्रिमूर्ति कदापि न दी जाए, सरकार हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

जागरी ने उठकर नारा लगाया :

"जय त्रिमूर्ति ! जय आज़ादी !"

लोगों की आँखें मंच से हटकर त्रिमूर्ति पर जम गईं।

मन्त्री महोदय हाथ जोड़कर बोले :

"सज्जनो, यह बात आप दिल से निकाल दें कि हम आपकी इच्छा के बिना त्रिमूर्ति ले जाना चाहेंगे।"

पुरी यात्रा से लौटा कोई साधु बाबा भी भुवनेश्वर से आकर भीड़ में आ घुसा था। उसने तरंग में आकर यह बोल अलापा :

माया जोर कहे मैं ठाकुर।
माया गए कहावे चाकर।
माया त्याग होय जो दानी।
कहि गोरख तीनों अभिमानी।

पास वाले लोग हँस पड़े, "वाह बाबा ! धन्य है गोरख-वाणी !"

किसी ने कहा, "पर दानी को तो अभिमानी बताया है।"

वैद्यजी मंच पर खड़े अपनी शिखा को गाँठ देते हुए कह रहे थे, "विद्या से नम्रता आती है। शास्त्र में कहा गया है, जहाँ रूप है वहीं शील है—यतो रूपम् ततः शीलम् ! मैं तो मन्त्री महोदय का रूप और शील देखकर मुग्ध हो गया। यह आज़ादी का युग है। पुलिस हमारी रक्षा के लिए है, हमें डराने के लिए नहीं। मन्त्री महोदय स्वयं कह चुके हैं कि सरकार की यह इच्छा कदापि नहीं है कि हमारी इच्छा के विपरीत त्रिमूर्ति को चट्टान से काटकर दिल्ली भेज दें।"

ज़ागरी ने नारा लगाया :

"जय त्रिमूर्ति ! जय आज़ादी !"

लगता था, भीड़ अपने ही फैसले पर तुली हुई है। लोग बार-बार 'जय त्रिमूर्ति' का नारा लगाने लगते। फतूही की जुएँ मारने वाला बूढ़ा अपने साथी से कहे जा रहा था, "जानते हो, छाया पुरुष की सिद्धि कैसे करते हैं ? हर रोज़ सूरज की ओर पीठ करके खड़े होकर अपनी छाया को ध्यान से देखना चाहिए। फिर सूरज की ओर घूमकर देखो। गगन पर तुम्हें अपनी बड़ी छाया दीखेगी। उस छाया का जो भी अंग खण्डित हो, उसी में रोग का प्रवेश समझ लो।" पीछे से किसी ने कहा, "छाया पुरुष की सिद्धि की ऐसी-की-तैसी ! बाबा, क्या इस ज्ञान के लिए यही मुहूर्त हाथ लगा ?"

मंच से उठकर नीलकण्ठ ने कहा, "भाइयो और बहनो, आप देख रहे हैं। गहरे नील गगन पर बादलों के सफ़ेद टुकड़े हाथियों की तरह सूँड़ उठा-उठाकर मानो पंचायत को प्रणाम कर रहे हैं···" और फिर मंच से कोई आवाज़ न आई।

किसी ने ऊँचे स्वर में कहा :

"पंच क्यों नहीं बोलते ?"

लगता था, पंच जन-समूह से डरे-सहमे बैठे हैं।

फतूही की जुएँ मारने वाले बूढ़े ने एक जूँ को एक अंगूठे के नाख़ून पर रखकर दूसरे अंगूठे के नाख़ून से उसके प्राण हरते हुए कहा, "दाँत के कीड़े से कोई कैसे बचे ? जबड़े तक को खोखला कर डालता है। उसे तो जूँ की तरह पकड़ना कठिन है।" और फिर उसने पंचों की ओर आँखें उठाकर कहा, "आज इन लोगों की बुद्धि किस वृन्दावन में घास चरने चली गई ? इतनी-सी बात और इतना चक्कर ! ये लोग तो एक भी जूँ न पकड़ सके !" वह स्वयं ही हँस पड़ा। पीपल के पत्ते भी मानो तालियाँ बजाकर हँसने लगे।

किसी ने कहा, "आज बाबा चतुर्मुख होते, तो त्रिमूर्ति कहीं न जाती।"

"अब भी कहीं नहीं जाएगी त्रिमूर्ति !" किसी ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा।

"नीलकण्ठ क्यों चुप है ? क्यों नहीं साफ़-साफ़ कह देता कि त्रिमूर्ति यहीं रहेगी, इसी पाथुरिया गली में ?"

जुएँ मारने वाला बूढ़ा आँखों पर ऐनक लगाए बैठा था। एक ओर की कमानी टूट गई थी। वह रस्सी बाँधकर काम चला रहा था। वह बोला, "यह ऐनक चतुर्मुख दादा की निशानी है। उन्होंने भेंट की थी। मायाधर दादा के सामने की बात है। अब तो मायाधर दादा नहीं रहे।"

"बाबा का और तुम्हारा नम्बर कैसे मिल गया ?" किसी ने पूछ लिया।

इस पर पास वाले लोग हँस दिए। किसी ने कहा, "जाने से पहले यह ऐनक मुझे भेंट करते जाना, बाबा !"

जुएँ मारने वाला बूढ़ा बोला, "अच्छा-अच्छा पहले बात सुनो। चतुर्मुख दादा यही कहा करते थे—आज़ादी मिलने के बाद हम लन्दन से अपनी मूर्तियाँ वापस लाएँगे, जिन्हें अंग्रेज ज़ोर-ज़बरदस्ती उठा ले गए। अब यह त्रिमूर्ति उठाई जा रही है। फिर कहा जाता है, हम आज़ाद हैं !"

साधु बाबा कह रहे थे, "चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घटियो नीर !"

किसी ने कहा, "बाबाजी, ग्राप भी डुबकी लगाइए दया नदी में !"

जागरी ने नारा लगाया, "जय त्रिमूर्ति ! जय ग्राज़ादी !"

लगता था, इस नाटक का नायक जागरी है। उसने मंच पर ग्राकर कहा, "पंच क्यों नहीं बोलते कि उन्होंने क्या फ़ैसला किया ?"

मन्त्री महोदय ग्रलबीरा के साथ गप लड़ा रहे थे, जैसे वे यहाँ इसी के लिए ग्राये हों।

दिल्ली से ग्राने वाले ग्रधिकारी ने नीलकण्ठ की बग़ल से उठकर कहा, "भाइयो ग्रौर बहनो, नीलकण्ठ ने विष-पान करते हुए महादेव की भंगिमा बहुत ही सुन्दर दरसाई है। वैसे ब्रह्मा ग्रौर विष्णु की भंगिमा भी त्रिमूर्ति के ग्रनुरूप है।..."

दिल्ली के ग्रधिकारी को ग्रपनी बात बीच में ही समाप्त कर देनी पड़ी, क्योंकि श्रोताग्रों में से किसी ने उठकर कहा, "हमें यह ठकुर-सुहाती नहीं चाहिए। ग्राप ग्रपना भाषण बन्द कर दें।"

पंचों ने मन्त्री महोदय का ध्यान खींचते हुए कहा, "मामला बड़ा ही टेढ़ा है। ग्राप ग्रलबीरा से प्रार्थना करें कि वह जनता को ग्रपने विचार बताए।"

मन्त्री महोदय ने मंच से घोषणा की, "ग्रब ग्रापके सम्मुख ग्रलबीरा देवी ग्रपने विचार रखेंगी।" ग्रौर श्रोताग्रों ने तालियाँ बजाकर इस घोषणा का स्वागत किया। मन्त्री महोदय ने साफ़-साफ़ कह दिया, "सरकार की ग्रोर से मैं कह सकता हूँ कि उनकी सलाह हम सिर-ग्राँखों पर रखेंगे। ग्राप लोगों को भी उनके विचार रुचिकर प्रतीत होंगे।"

लोगों की तालियों के बीच ग्रलबीरा उठकर खड़ी हुई।

ड्राई बैट्री से काम करने वाला माइक्रोफोन ख़राब हो गया था। इस बीच उसे भी ठीक कर लिया गया था।

ग्रलबीरा ने गूँजदार ग्रावाज़ में कहना शुरू किया :

"माननीय मन्त्री महोदय, धौली के पंच परमेश्वर ग्रौर सज्जनो ! मेरे लिए यह बहुत बड़ा सम्मान है, सरकार ग्रौर जनता दोनों की ग्रोर

से, कि मुझे यहाँ दो शब्द कहने का अवसर दिया गया।

"धौली के साथ बचपन से ही मेरा सम्बन्ध रहा है। मैं अपने डैडी के साथ यहाँ आया करती थी। मैंने इस चट्टान को तब भी देखा था, जब इस पर ब्रह्मा की ही मूर्ति बनी थी। फिर मेरे देखते-देखते विष्णु कि मूर्ति बनी। और फिर मैंने एक दिन त्रिमूर्ति को सम्पूर्ण रूप में देखा।

"अब यह समस्या है कि त्रिमूर्ति यहीं रहे या दिल्ली भेज दी जाए, हमारे राष्ट्रीय म्यूज़ियम में ?

"मुझे याद है, अपने जीवन-काल में मूर्तिकार चतुर्मुख मेरे डैडी से कई बार यह वाद-विवाद किया करते थे कि उड़ीसा की बहुत सी श्रेष्ठ मूर्तियाँ लन्दन ले जायी गईं। वे हमेशा इसके लिए चिन्तित रहे कि कब वह दिन आए, जब लन्दन से उड़ीसा की वे मूर्तियाँ वापस लायी जाएँ।

"लन्दन से उड़ीसा की वे मूर्तियाँ अभी तक नहीं मँगवायी गईं। उनके लिए हमने कोई आवाज़ भी नहीं उठायी। सरकार को और बहुत से काम करने हैं। उस काम का ध्यान भी एक दिन अवश्य आएगा।

"एक बात और। उड़ीसा की बहुत सी मूर्तियाँ उड़ीसा के बाहर कलकत्ता और दिल्ली के म्यूज़ियमों में भी हैं। आप कह सकते हैं, उन्हें भी वापस उड़ीसा में लाया जाए। मेरे विचार में वह बड़ा ही संकुचित दृष्टिकोण होगा। अगर हर प्रान्त यही कहेगा कि हमारी कला-कृतियाँ हमारे प्रान्त से बाहर न जाएँ, तो फिर भारत का नैशनल म्यूज़ियम कैसे उनका प्रतिनिधित्व करेगा ?

"इसी विशाल दृष्टि से हमें उन मूर्तियों के बारे में सोचना होगा, जो लन्दन के म्यूज़ियम में हैं। वहाँ तो अनेक देशों की कला-कृतियाँ हैं। लन्दन के म्यूज़ियम में क्या आप उड़ीसा की मूर्ति-कला का प्रतिनिधित्व बिलकुल नहीं चाहेंगे ?

"अब रही इस त्रिमूर्ति की बात। मेरे विचार में इसे यहीं रहना चाहिए..."

इस पर भीड़ ने तालियाँ बजाकर अलबीरा के विचार का समर्थन किया

ग्रौर ग्रलवीरा की ग्रावाज़ शोर में डुबकी लगाकर उभरी :

"हाँ, तो मैं कह रही थी, यह त्रिमूर्ति यहीं रहनी चाहिए। जैसे ग्रश्वत्थामा पर ग्रंकित सम्राट् ग्रशोक की राजाज्ञा यहाँ है ग्रौर उस शिला पर बना हाथी-मुख भी धौली को महिमाशालिनी बनाता ग्रा रहा है। जैसे भुवनेश्वर की ग्रनेक मूर्तियाँ भुवनेश्वर में हैं, जैसे कोणार्क का भग्न सूर्य-मन्दिर कोणार्क में है ग्रौर किसी भी सरकार से यह ग्राशा नहीं की जा सकती कि वह उन्हें···।

"झगड़ा व्यर्थ है। झगड़ा हम नहीं होने देंगे। गाँव-मुखिया वंशी ने जब पिछले साल दिल्ली में गणतन्त्र-दिवस के ग्रवसर पर सरकार को यह पत्र लिखकर दिया कि हम ग्रपनी त्रिमूर्ति नैशनल म्यूज़ियम में देने को तैयार हैं, तो यह उनका ग्रपना मत था। पर सरकार को सोचना होगा कि ग्राज जितने लोग उसके विरोध में यहाँ एकत्रित हुए हैं, उनकी भावना ग्रौर श्रद्धा को ठुकराकर त्रिमूर्ति को चट्टान से काटकर कैसे ले जाया जा सकता है?

"इसलिए मैं कहती हूँ कि त्रिमूर्ति यहीं रहनी चाहिए, क्योंकि नैशनल म्यूज़ियम में तो इसकी ग्रनुकृति या इसका मॉडल भी रखा जा सकता है।"

जन-समूह के जय-घोष के बीच ग्रलवीरा का भाषण समाप्त हुग्रा।

जन-समूह की ग्रोर से माँग की जाने लगी कि नीलकण्ठ भी ग्रपने विचार ग्रवश्य बताए।

मन्त्री महोदय ने घोषणा की, "ग्रब ग्रापके सम्मुख मूर्तिकार नीलकण्ठ ग्रा रहे हैं।"

नीलकण्ठ ने उठकर जन-समूह की तालियों के बीच में कहना ग्रारम्भ किया :

"सज्जनो, मैं त्रिमूर्ति के तीन मूर्तिकारों में से एक न होता तो ग्रपने विचार ग्रलवीरा के समान धारा-प्रवाहमयी भाषा में व्यक्त कर सकता था। ग्राप विश्वास रखें। जो मैंने कहना था, वह भी ग्रलवीरा ने कह

दिया। सार रूप में मुझे यह कहने का अधिकार अवश्य है कि सरकार धौली की त्रिमूर्ति को चट्टान से काटकर दिल्ली भेजने से पहले धौली की अश्वत्थामा को यहाँ से उठा ले जाने की व्यवस्था करे, क्योंकि उसका राष्ट्रीय महत्त्व दिल्ली के नैशनल म्यूज़ियम के लिए कहीं अधिक है। तब तक त्रिमूर्ति यहीं रहे। आशा है, त्रिमूर्ति के एक अकिंचन् मूर्तिकार के नाते मेरी बात अनसुनी नहीं की जाएगी।"

जन-समूह की तालियाँ रुकने में नहीं आ रही थीं।

मन्त्री महोदय ने उठकर कहा :

"सज्जनो, मैं पहले ही कह चुका हूँ। जनता की आवाज़ ही हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। हम आपको नाराज़ नहीं कर सकते। त्रिमूर्ति यहीं रहेगी।"

फिर तालियाँ बज उठीं।

भीड़ को चीरता हुआ एक बूढ़ा मंच पर आ पहुँचा। उसने फतूही पहन रखी थी। ऐनक की एक कमानी की जगह रस्सी लगी थी। उसने खड़े होकर माइक पर कहा, "सज्जनो, यह ऐनक जो मैंने पहन रखी है, चतुर्मुख दादा ने मुझे दी थी। उनकी आत्मा धौली में डोलती रहती है। मेरा पूर्ण विश्वास है। अलवीरा ने जो कुछ कहा, वह मैंने सुना। नीलकण्ठ के विचार भी मैंने सुने। एक बात याद रखिए। लन्दन से हम अपनी मूर्तियाँ लाकर ही दम लेंगे···" एक बार फिर से तालियाँ बज उठीं।

धौली में खुशी की लहर दौड़ गई, जैसे कोई देव-वरदान प्राप्त हो गया हो।

पर नीलकण्ठ की नौकरी चली जाने का दुःख तो त्रिमूर्ति के रह जाने से भी कम न हुआ।

गाँव वाले प्रसन्न थे कि मन्त्री महोदय और दिल्ली का अधिकारी अपना-सा मुँह लेकर चले गए। पुलिस भी जैसे आयी, वापस हो गई। बंशी के दिल की बात दिल ही में रह गई।

"ऐसी भूल फिर मत करना!" जागरी बंशी को राह चलते रोककर कहता, "त्रिमूर्ति में तो धौली के प्राण बसते हैं। ऐसा विचार फिर कभी मन में न लाना। त्रिमूर्ति चली जाती तो दादी के प्राण-पंखेरू उड़ जाते।"

"पंचायत में आने से तो दादी ने इन्कार कर दिया था।" बंशी पहलू बचाने की कोशिश करता।

"दादी को तुम जान नहीं सके। मैं तो सदा दादी के सत्य वचन सुनता रहता हूँ।"

वैद्यजी ने त्रिमूर्ति रह जाने की खुशी में गाँव में मिठाई बँटवाई, जैसे धौली की कथा में अछूता अचुम्बित स्वर जोड़ रहे हों। जैसे त्रिमूर्ति के

मूर्तिकारों की याद भी सजीव होकर पाथुरिया गली में चलने लगी हो। जैसे कोई भ्रमजाल उस कीर्ति-कथा को उलझा न सकता हो। वैद्यजी रोगी के हाथ में दवा की पुड़िया देकर कहते, "बंशी फिर कभी वैसी भूल नहीं करेगा। बंशी को क्षमा कर दो।"

ऐसा प्रतीत होता था कि सबका हाथ पकड़े धौली की कथा बढ़ रही है, जैसे घृणा और व्यंग्य के लिए उसमें कोई स्थान न हो। त्रिमूर्ति रह गई। धौली इसी से कृतार्थ है। जहाँ जिसका अड्डा है, चलता रहे। जैसे त्रिमूर्ति यही कह रही हो। त्रिमूर्ति यहीं रहेगी, धौली की कथा में वह अपनी साँसें मिलाती रहेगी।

कथा में तो रूपक का नाम भी जुड़ गया। उसने गुरुदेव का अड्डा सूना नहीं होने दिया। नौकरी की बात उसे छू भी नहीं सकी।

"तू बड़ा ज़िद्दी है, रूपक !" दादी ने कहा, "तू नौकरी करने बाहर नहीं जाएगा।"

"अब तो नीलकण्ठ काका भी यहीं आयेंगे, दादी ! गुरुदेव की मूर्ति-शाला के दिन फिरने वाले हैं।"

"अलवीरा उसे कब आने देगी, बेटा ?" दादी पोपले मुँह से हँस पड़ी। और फिर दादी ने गम्भीर होकर कहा, "नौकरी करनी हो तो बाहर रहे, नहीं तो धौली आकर रहे।"

"वह ज़रूर आयेगा, दादी !"

"मैं कब कहती हूँ, न आये ? मैंने तो उसे बहुत समझाया कि घर आ जाओ। वह क्या यह नहीं जानता कि मुझे उसके बाबा दिखायी दे जाते हैं और उनकी यही आवाज़ मेरे कान में पड़ती है—नील से कहो, घर लौट आए !"

"नील काका को आना होगा, दादी !"

"मेरे रहते आ जाए तो मैं सुखी रूप में ही भगवान् के पास जाऊँ। वह तो आ जाए, पर अलवीरा नहीं मानती होगी। मैंने कहा, कुछ दिन रूपम् को ही छोड़ दो मेरे पास। नील तो मान भी जाता, पर अलवीरा न

मानी। जब देखो सागर यही कहता है—रूपम् कब आयेगा ?''

''कथा में रूपम् का नाम भी जुड़ गया, जैसे सागर का !''

दादी की आँखों में वह झाँकी घूम गई, जब त्रिमूर्ति की पंचायत में नील और अलवीरा यहाँ आये और रूपम् भी साथ था। ''उस दिन सागर और रूपम् गले में बाँहें डाले गाँव के बच्चों के साथ अश्वत्थामा हो आए थे। अब कई दिन से सागर उधर नहीं गया।''

सागर ने बाहर से आकर पूछा, ''रूपम् कब आयेगा ?''

दादी बोली, ''मैं तो कहती हूँ, आज ही आ जाए।''

मूर्तिशाला में सागर को रोककर रूपक बोला, ''बैठो, मैं तुम्हारी मूर्ति बनाऊँगा।''

सागर मूर्तिशाला के एक कोने में पड़ी बड़ी-सी चौकी पर रखी बाबा की अधूरी मूर्ति को हाथ से छूकर देखने लगा। कभी वह फूल उठाकर सूँघता, जिन्हें दादी हर रोज़ उस मूर्ति पर चढ़ाती थी।

चौकी पर बाबा की छेनी-हथौड़ी पड़ी थीं। सागर उन्हें छू-छू कर देखता रहा। रूपक बोला, ''सागर बेटा, उन्हें हाथ मत लगाओ। अरे, दादी ने देख लिया तो मारेंगी।''

सागर सहमकर परे हट गया।

''रूपम् कब आयेगा, काका ?'' सागर ने डरते-डरते पूछा।

''पहले तुम अपनी मूर्ति बनवा लो,'' रूपक ने पुचकारते हुए कहा, ''फिर रूपम् भी अपनी मूर्ति बनवाने आयेगा।''

श्यामली को वह दिन याद आता है, जब वह अपूर्व से मिली। उसी वर्ष उसने मैट्रिक पास किया था। भला हो मिशनरियों का, जिनके कारण उसकी शिक्षा की गाड़ी मैट्रिक पार कर गई। उसे वह दिन भी याद आता है, जब वह अपूर्व के सम्पर्क में आयी। उसके हाथीदाँत वाले पीढ़े की कथा तो वह नहीं जानती थी। एकाएक वह उस पर जा बैठी। फिर उसे पीढ़े की कथा सुनने को मिली तो उसने स्वयं आग्रह किया कि वे जीवन-साथी बन जायें। कभी वह बालिका थी, फिर वह दुलहन बनी। फिर नीलकण्ठ के आग्रह से कटक के आर्ट स्कूल में भरती हो गई और वहाँ का कोर्स पूरा करके वहीं टीचर लग गई। फिर भाग्य ने करवट ली। कई प्रदर्शनियों ने उसकी मूर्तियाँ खूब सराहीं। सरकारी क्षेत्रों में भी उसकी धूम मच गई। उसे नीलकण्ठ की जगह प्रिन्सिपल बना दिया गया। यह घूँट बहुत कड़वा लगा, पर नीलकण्ठ की आज्ञा थी, वह पी गई।

उसकी मूर्तिकला में कन्ध-जीवन की शक्ति है। उसके हाथ ढीले नहीं पड़ सकते। कला में जन्म-जन्मान्तर के संस्कार कथा कह रहे हैं। सपना देखो और कथा कहो।

पुरातन कन्ध लोक-कथा कहती आई है कि राजा और प्रजा दो भाई

थे आदिकाल में। राजा था बड़ा भाई, प्रजा छोटा भाई। दोनों भाइयों को घुड़सवारी का शौक था। पर घोड़ा तो एक ही था। एक दिन बड़ा भाई घोड़े को हाँकने के लिए गाछ की टहनी तोड़ने गया, और इतने में छोटा भाई घोड़े पर सवार होकर हवा हो गया। उस दिन से छोटा भाई राजा बन गया, और बड़े भाई को प्रजा बनना पड़ा। बड़े भाई ने छोटे भाई का अपराध क्षमा कर दिया। कथा यही कहती आयी है।

पर श्यामली जानती है, क्षमा इतनी सहज नहीं। उसने मूर्तिकला के माध्यम से यही कथा कहने का यत्न किया है। बड़े भाई के मुख पर विद्रोह का भाव दिखाकर उसने कला का हक अदा किया है। घोड़े की भंगिमा को सबने सराहा है, जैसे कोणार्क का घोड़ा भी उसके सामने पानी भर सकता हो।

वेष-भूषा मूर्ति में प्राणों का संचार करती है या कन्ध-संस्कारों की युग-भाषा? मन-ही-मन श्यामली विचार करती है। नाम कमाने की बात पीछे छूट जाती है। कला दौड़ लगाती है अन्धकार से प्रकाश की ओर। उपनिषद् के ऋषि ने प्रार्थना की थी—तमसो मा ज्योतिर्गमय! मृत्यु से अमृत की ओर चलती है मूर्तिकार की छेनी। उपनिषद् के ऋषि ने कहा था—मृत्योर्मा अमृतंगमय! कला की महिमा छलछलाती है। धरती माता की पूजा। दुड़ुम-दुड़ुम बाजे ढोल। धर्म देवता। हाट बाजार। घर-देवता। वन-देवता। अतिथि का स्वागत। चैत पर्व का नाच। काँवर। मोर का शिकार। ये प्रसंग पत्थर पर उतर आए।

अपूर्व जानता है, आत्महत्या की बात कभी कन्ध के गले नहीं उतरती। "क्यों, श्यामली! यह ठीक है न कि जिसकी पत्नी को बाघ खा जाए, वह ऐसी विधवा से विवाह कर सकता है, जिसके पति को बाघ खा गया हो?" अपूर्व पूछ बैठता है। श्यामली गम्भीर होकर उत्तर देती है, "यही बात है।"

श्यामली को गाँव की याद सताने लगती है, जैसे चट्टानों के उस पार मोर आपस में बातें कर रहे हों। जो मर गया, वह तो मानो 'नमक

लादने चला गया'। विवाह के लिए रात के अँधेरे में ही पानी भरकर लाता है 'डिसारी' [पुरोहित]। पानी भरते समय उसे कोई देख ले तो पानी अपवित्र हो जाता है। पशु तो पशु, चिड़िया भी पानी में चोंच डाल दे, तो उस घाट का पानी विवाह में काम नहीं देता। न धरती माता सोती है, न धर्म-देवता झपकी लेते हैं। जितने प्रेतात्मा काया छोड़कर छाया बन गए—पुरखों के वे सब 'ढुमा' कन्ध देश में ही घूमते हैं। उसके रक्त में बह रही है यह कथा। 'ढुमा' पता रखते हैं कि कन्ध लोग अपने आदर्शों और संस्कारों पर ठीक-ठीक चल रहे हैं या नहीं। दुलहन को घाट पर ले जाकर गाँव की बहू-बेटियाँ प्रत्येक देवी-देवता को यह सुखद समाचार सुनाती हैं। विवाह में बारातियों को 'बन्दर पान्नी' कैसे नहीं कहा जाता है। गोल-गोल चक्करदार घुमावों में विवाह-नाच होता है।

कन्ध देश की याद आती है। वहाँ की कन्याएँ आज भी अन्धड़ देखकर द्वार पर हिरनियों की तरह कुलाँचें भरती होंगी। वे सखियों के संग आम चुनने जाती होंगी। पर जंगल तो सिमिट रहा है। तब तो पहाड़ गंजे हो जाएँगे। बचपन की कितनी सखियाँ नमक लादने चली गईं। कथा उड़ती फिरती है, जैसे सेमल की रुई। कथा संकेत करती है, जैसे पोले बाँस बीच हवा गुनगुनाये। घर-देवता घर की कथा कहेंगे, वन-देवता वन की। उनकी पूजा करने का मतलब। खाओ-खिलाओ। मुँहा-मुँही दो पाँतों बीच गाँव के घर। कितने घर, कितने मन, कथा के कितने पात्र। झरने का जल आरसी बन जाता था। वन-पर्वत की चैती दोपहरी। वह हवा बड़ी मीठी लगती होगी, अब भी। कन्ध देश की यही रीति है। लाल मिर्च बाँधकर, गाँव-गाँव सरकार की ख़बर पहुँचाते हैं। अमुक पर्वत का गँज मेटना होगा। नूतन गाछ लगेंगे। ढोल पर चलती है ख़बर।

सरकारी हुक्म के संग आती है बाहर की कथा। कन्ध उसे भी सुनते हैं। पर बाहर की कथा कहाँ टिक पाएगी? वहाँ वन-देवता, घर-देवता, सब एक विनती सुनते हैं।—संकट न आये, हम बचे रहें! फिर

हर सरकारी अफ़सर के सम्मुख, महाप्रभु की रट लगाते, झुक-झुक जाते हैं, जैसे आँधी में बाँस। अफ़सर की ठकुर-सुहाती कैसे नहीं करेंगे ?—आप हमारे ठाकुर, महाप्रभु !···तुम्हारा जूठा खा के हम वन में रहते हैं, महाप्रभु ! पराये देश में सिंहासन पर बैठने से अपने देश में भीख माँगना अच्छा है, महाप्रभु ! ये 'महाप्रभु' तो आते ही रहते हैं, जैसे बादल घिरने पर बाघ लगते हैं। बघलगी के मौसम में जाने किस-किसके नमक लादने की बारी आ जाती है।

कन्ध जीवन में दारू ढालने की बात आकर रहती है। तब धोई और बिनधोई मूली का भेद नहीं टिक पाता।

दो-दो दीये बालकर फूल चढ़ाती होगी कन्ध-नारी आज भी। देवता को 'जुहार' करती होगी, 'सब दिन दीये बालती रहूँ, देवता !' मेघ-देवता पानी दो, सड़े पत्तों की काली खाद फैला दो।

धर्म-देवता और धरती माता को साक्षी रखकर कन्ध न जाने क्या-क्या नेग देते-लेते हैं। गंजे पर्वत पर गाछ उग आते हैं। कन्ध बहू-बेटी कोकन्दा खोदने की बात नहीं भूलती। बाँस की कोंपलें भी जंगल ही में मिलती हैं। धरती माता लोरी देती है। धर्म-देवता की असीस भी मन की माटी में रचती रहती है। जाने वह कौनसा योग है, जब कन्ध डिसारी जंगल को मन्त्र से घेरकर कील ठोक देता है ? पर क्या इस उपाय से बाघ यह लक्ष्मण-रेखा लाँघ नहीं पाता ? कील ठोक चुकने के बाद डिसारी कहता है—तुम जानो, वन-देवता ! तुम्हारे हाथ में है रक्षा सबकी !···कहते हैं, भोर में आँख खुलने पर बाघ अपने हाथ देखता है ! आज शिकार मिलेगा या अनाहार ही रहना होगा ? शिकार मिलेगा तो कैसा ? यह सब अपने हाथ में देख लेता है, बाघ ! आदमी की गन्ध तो वह बीस कदम से चीन्ह लेता है।···श्यामली पत्थर पर छेनी चलते समय सोचती है, कन्ध देश के पर्वतों पर गंज पड़ रहे हैं और लोगों को बाघ चट कर जाते हैं। इस अन्धविश्वास पर हँसी आने लगती है कि महाबल को मार डालने से शिकारी का वंश डूब जाता है।

अपूर्व और श्यामली में कन्ध-देश की कथा चल पड़ती है। अपूर्व कहता है, "कथा में आदमी की भलाई की बात न हो तो बात नहीं बनती, श्यामली ! जैसे जूड़े में फूल न हो तो सिंगार अधूरा रहता है।"

"दस ओर से दस बातें आकर कथा में जुड़ जाती हैं कन्ध-देश की याद आती है, जैसे गलियारे में हँसी छलकती हो, जैसे मैं माँ के पास बैठी केशों में कंघी कर रही हूँ। धूप में बहते जल की याद चमकती है। मूर्ति की तरह हाथों-गढ़ी कथा नये संस्कार पाती है। देवता मारे सो मरे, देवता रखे सो रहे। क्या धर्म-देवता भूखे हैं ? धरती माता प्यासी है ? पूस आया तो माघ भी आयेगा। बारह पूजाएँ दिये बिना कैसे चलेगा ? जाने कहाँ का पानी कहाँ चला जाता है। कथा की मिट्टी से संस्कार उगते हैं। यादें पत्थर छीलती हैं।"

कभी-कभी श्यामली और अपूर्व साँझ को नीलकण्ठ से मिलने आते हैं। श्यामली कहती है, "मैं तो अब भी सोचती हूँ कि मैं मन्त्री महोदय के हाथ की कठपुतली क्यों बनी ? क्यों न मैं भी नौकरी छोड़ दूँ ?"

नीलकण्ठ कहता है, "तुम्हें नौकरी करनी होगी, श्यामली ! यह मेरा हुक्म है। ऊपर धर्म-देवता, नीचे धरती-माता। बीच में हमारी कथा चलती है।" और इसके उत्तर में श्यामली कुछ नहीं कहती।

घूम-फिरकर 'कथा' शब्द मुँह पर आये बिना नहीं रहता। नीलकण्ठ कहता है, "कन्ध-देश की कथा कहो, श्यामली !"

अन्नदा बाबू का विचार है कि कोइली की कविता में उड़िया भाषा महिमामयी हो उठी है।

"बात पूरी करने का उपाय नहीं है। शब्द खाली अर्थ के ही तो वाचक नहीं हैं। शब्द तो स्वयं आँसू या मुस्कान बनकर अपनी कथा कहते हैं।" कोइली ने बात चलाई।

"कथा की जाग तुम्हारी कविता को भी लग गई।" अन्नदा बाबू ने चतुर्मुख म्यूज़ियम की मूर्तियाँ देखते-देखते कहा, "वह किसी ने कहा है न, अच्छी कविता हमें अपना अर्थ बताने से पहले हम तक पहुँचती है और अपने स्पन्दन द्वारा हमें अभिभूत कर देती है।"

"यह तो मैं भी मानती हूँ, अन्नदा बाबू !" कोइली मुस्करायी, "जब मैं पैरों से रौंदी हुई घास की पत्तियों की बात कहती हूँ, तो शब्द नहीं घास की पत्तियाँ ही पेश करती हूँ। गगन के नील विस्मय की अचुम्बित कथा कहते समय शब्द नहीं, मैं स्वयं गगन की नीलिमा घोलती हूँ।"

"तुम बहुत शीघ्र सोचती हो, कोइली ! मूर्तियाँ देखो। बाबा ने सोचा भी न होगा कि कलकत्ते में प्रदर्शनी होगी और फिर कटक में चतुर्मुख म्यूज़ियम बनेगा। राजा साहब को यह काम करने की प्रेरणा

कुन्तल ने दी।"

"काश कुन्तल का विवाह अन्तराल से हुआ होता !"

"महाराजकुमार सूर्यदेव क्या उसके लिए अच्छे पति सिद्ध नहीं हुए ?"

"इसका उत्तर तो कुन्तल ही दे सकती है।"

"कई बार ऐसा होता है कि हमारा आदर्श नीचे गिरकर चकनाचूर हुई मूर्ति की तरह टूट जाता है। तुम अपनी बात भी सोचो जरा। अब देखो न, हरिपद बाबू को वकालत से अवकाश नहीं। क्या उन्होंने कभी पूछा, तुम्हारी कविता क्या कहती है ? उधर अपूर्व को लो, वह श्यामली की प्रत्येक मूर्ति में रस लेता है। जिस पीढ़े पर श्यामली जा बैठी थी, उस पर तुमने बैठने की बात सोची थी। क्या कभी वह याद नहीं कचोटती ?"

"क्यों नहीं ? वह कथा मैं कविता में कहती हूँ।"

"शायद इसीलिए हरिपद बाबू को उसमें रस नहीं आता।"

"यह बात तो नहीं।" कोइली ने पहलू बचाना चाहा, "हर आदमी कविता को समझता भी तो नहीं।"

"कवि का काम लोगों की रुचि बदलना भी तो है। और यह काम वह एक क्रान्तिकारी की तरह करता है। शब्द और अनुभूति ही उसके हथियार होते हैं। तुम्हारी कविता में कुन्तल को रस आता है या नहीं ? पहले यह बताओ कि महाराजकुमार सूर्यदेव और कुन्तल की गाड़ी कैसी चल रही है ?"

"देखने में ठीक ही मालूम होती है।"

"कविता में तुम अपूर्व को याद करती हो। कुन्तल भी कभी अन्तराल के लिए रोती होगी ?"

कोइली ने गम्भीर होकर कहा, "महाराजकुमार को सब जानते हैं। फिर भी वे कुन्तल को अन्तराल से मिलने से रोकते नहीं। पर अन्तराल स्वयं ही कन्नी काटे तो कुन्तल क्या करे ?"

"हरिपद बाबू भी तो तुम्हें अपूर्व से मिलने से रोकते नहीं। पर अपूर्व

जैसे तुम्हें पहचानता ही न हो। जैसे शुरू ही से वह श्यामली के लिए ही बना हो। पर धन्य है श्यामली, जो एक ही समय अपूर्व और नील में सन्तुलन बनाये रखना चाहती है।"

कोइली बोली, "अपनी भी कहो न! तुमने मेरी कविता का अनुवाद करते-करते मेरे मन में पहुँचने की सुरंग ढूँढ ली। क्या मैं ठीक नहीं कहती?" और इस पर दोनों हँस पड़े।

"लन्दन से मेरी कविताओं का अनुवाद छपकर आने में अब क्या देर है, अन्नदा बाबू?"

"पुस्तक छप गई। अब आती ही होगी।"

नीलकण्ठ मन्त्री महोदय के स्वेच्छाचार को पी गया। बाबा की आवाज़ मन के तार हिलाती प्रतीत होती---मैंने कब चाहा था नील, कि तुम नौकरी करो ? वह मन-ही-मन कहता---बाबा, अब मैं नौकरी नहीं करूँगा।

किसी-किसी दिन वह घण्टों चतुर्मुख म्यूज़ियम में बैठा रहता और क्यूरेटर के साथ मिलाकर मूर्तियों को सजाने के निमित्त एक जगह से दूसरी जगह सरकाने-बदलने की सलाह देता रहता।

कभी वह कन्ध-देश की यात्रा पर निकल जाता, और कभी कोणार्क में पड़ा रहता, जैसे कटक की छाया से बचने का यही उपाय हो सकता हो। कटक में राह चलते मित्र उसे रोककर प्राय: यही प्रश्न किया करते—"आजकल क्या कर रहे हैं ?"

कुछ दिन से यह ख़बर गरम थी कि चतुर्मुख म्यूज़ियम का प्रबन्ध सरकार पूरी तरह अपने हाथों में ले रही है। यह ख़बर सच निकली। म्यूज़ियम में अन्तराल क्यूरेटर बनकर आ गया।

अन्तराल की इस पद के लिए नियुक्ति में कोइली का बहुत हाथ था।

जब से कोइली की कविताओं का अंग्रेज़ी संस्करण लन्दन से छपकर आया था, अन्नदा बाबू और कोइली को मन्त्री महोदय कई बार रात के

खाने पर बुला चुके थे। भले ही वे दोबारा श्यामली की जगह नीलकण्ठ को आर्ट स्कूल का प्रिन्सिपल बनाने को तैयार न थे, पर अपने स्वेच्छाचार पर परदा डालने की दृष्टि से वे चतुर्मुख म्यूजियम के क्यूरेटर के रूप में नीलकण्ठ को पहले वेतन पर लेने को तैयार हो गए। नीलकण्ठ ने लिख भेजा, "अब मैं नौकरी करना ही नहीं चाहता।" फिर कोइली की राय से यह निश्चय किया गया कि अन्तराल की सेवाएँ टूरिस्ट विभाग से म्यूजियम में बदल दी जाएँ। यह थी अन्तराल के क्यूरेटर बनाने की कथा।

वैसे कुछ लोग यह खबर उड़ा रहे थे कि अन्तराल की नई नियुक्ति में कुन्तल का हाथ है।

फिर यह भेद खुलने में भी देर न लगी कि श्यामली भीतर-ही-भीतर कोइली से आग्रह करती रही थी कि क्यूरेटर के रूप में अपूर्व की नियुक्ति हो जाए।

महाराजकुमार सूर्यदेव और कुन्तल ने एक दिन नीलकण्ठ को साथ लिया और म्यूज़ियम पहुँचकर अन्तराल को बधाई दी। इतने वर्षों बाद इतने निकट से कुन्तल को देखकर अन्तराल अकूल विस्मय में डूब गया।

अब तो कुन्तल ने यही नियम बना लिया कि नीलकण्ठ को साथ लेकर वह म्यूज़ियम पहुँच जाती, और अन्तराल से आलाप करते समय वर्षों की खाई को पाटने लगती।

"प्रेम, सुख, शान्ति, यह सब किसे नहीं चाहिए ?" एक दिन कुन्तल ने मुस्कराकर कहा।

"मैं सोचता था, तुमने मुझे भुला दिया होगा, कुन्तल !" अन्तराल चुप न रह सका।

"क्या तुम्हें उस क्षण की याद है, जब पहली बार कोणार्क में हमारा परिचय हुआ था ?" कुन्तल ने पूछ लिया।

पास से नीलकण्ठ ने कहा, "कोणार्क में जिनका प्रथम परिचय हुआ, उनकी महिमा कोई कैसे बखानेगा ?"

"आप बखानिए न !" कुन्तल हँस पड़ी, और फिर गम्भीर होकर

बोली, "इतने वर्ष बीत गए, पर लगता है, वह क्षण आज भी वहीं खड़ा है।"

"तो हारी हुई बाज़ी अब जीत लो न !" नीलकण्ठ ने गम्भीर स्वर में कहा, "बाबा की मूर्तियाँ हमारी बातें नहीं सुन सकतीं। पर बाबा की आत्मा यहीं कहीं डोल रही होगी। बाबा सब देख रहे हैं, सब सुन रहे हैं।"

"तब तो डैडी की आत्मा भी यहीं कहीं डोल रही होगी।" कुन्तल ने मुस्कराकर कहा, "डैडी तो बाबा की कला के प्रशंसक थे और ममी..."

"और ममी अन्तराल को बेटे से बढ़कर मानती थीं।" नीलकण्ठ ने जैसे कुन्तल की दुखती रग पर हाथ रख दिया।

अन्तराल ने कहा, "अब इन बातों में क्या रखा है ? कभी कोणार्क चलिए न !"

"अवश्य !" कुन्तल जैसे इसी सुझाव की प्रतीक्षा में इतने दिन से चतुर्मुख म्यूज़ियम आती रही हो।

"मैं स्वयं यही सोच रहा था," नीलकण्ठ ने मुग्ध स्वर में कहा, "कोणार्क की अवाक् गरिमा शत-शत स्नेह-कथाएँ एक साथ कहती आई है।"

उस दिन घर जाकर कुन्तल घण्टों उदास रही। बैठी सोचती रही, "किसी को भूल जाना सहज नहीं। यह याद जी के साथ चलेगी। हम करना क्या चाहते हैं, कर कुछ और ही बैठते हैं ! मैं तो तुम्हें कभी इतना सुखी न कर पाता। अन्तराल के मुख पर मानो यही बात लिखी थी। कोई पूछे, पिछली बातें कैसे भुला दी जाएँ ? आदमी पत्थर नहीं है। पत्थर को तो किसी से भेंट नहीं करनी होती। पत्थर को प्यार नहीं करना होता। महाराजकुमार की तरह गुस्से में लाल-पीला नहीं होता पत्थर, न शराब पीकर गाली देता है। फिर भी बहुतों से अच्छे हैं महाराजकुमार। वे तो यही कहते रहे—तुम अन्तराल से खुलकर मिलो, तुम्हें कोई बाधा नहीं।...हाय रे, यह बाधा न होने की घोषणा भी तो काँटे-सी चुभती है ! समय के साथ कितने बदल गए महाराजकुमार ! राजा नहीं, एम० एल० ए०—मेम्बर ऑफ़ लेजिस्लेटिव असेम्बली। फिर भी दिमाग़ से यह

बात नहीं जाती कि उनकी रगों में सूर्यवंशी रक्त बहता है और वे राजा न होकर भी उड़ीसा सरकार के किसी मन्त्री महोदय से कहीं अधिक गौरव रखते हैं। आगे से हमेशा यही सुनना चाहते हैं—हुक्म कीजिए, हजूर ! जैसे आज भी उनकी आवाज़ सुनकर धरती काँप उठती हो। मैं समझाती हूँ—समय के साथ बदलना ही ठीक है। इससे क्या लाभ कि कल अमुक मन्त्री महोदय का मज़ाक उड़ा रहे थे, आज अमुक मन्त्री महोदय का !…"

कुन्तल जानती है कि महाराजकुमार को उस नर्तकी की कथा प्रिय है, जो नाचते-नाचते ओंठ से सोने की मुहर उठा लेती थी।

कुन्तल कहती है, "शराब छोड़ दो।"

महाराजकुमार उत्तर देते हैं, "यही तो वह सीढ़ी है, जिस पर चढ़कर पुरानी यादों की दहलीज तक पहुँचा जा सकता है। तुम्हारा मतलब है, एकदम पत्थर बन जाऊँ ?"

महाराजकुमार के इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाती, कुन्तल। गहने-कपड़े की कमी नहीं। अच्छे-से-अच्छा भोजन स्वयं तो क्या छोड़ेंगे, महाराज-कुमार तो कुन्तल को भी शराब पीने को कहते हैं। बहुत ज़िद्द करते हैं, "एक पेग ले लो।"

नशा चढ़ने के साथ दिमाग़ और तरह काम करने लगता है। मदहोश होने पर स्वर और भी बदल जाता है।

"यह अच्छी चीज़ नहीं।"

महाराजकुमार कहते हैं, "इस सुधा-पान से तो स्वर्ग की उर्वशी भी न बची होगी।"

होश में रहने पर महाराजकुमार कहते हैं, "सुधा-पान के बाद सौ रास्ते सूझते हैं। तब मालूम होता है, आदमी पत्थर नहीं है मन की खिड़की खुल जाती है।"

नशे में झूमकर महाराजकुमार कहते हैं, "मैं तो आज भी राजा हूँ, कुन्तल ! तुम अपने को पहचानो। तुम तो स्वर्ग की उर्वशी हो, डार्लिंग ! आज तो तुम भी धुत हो जाओ। मुझे पत्थर की उर्वशी नहीं चाहिए…"

अगले दिन रात की बातें याद नहीं रहतीं। कुन्तल याद दिलाती है तो मुस्कराकर रह जाते हैं महाराजकुमार सूर्यदेव एम० एल० ए०।

नशे में अन्तराल की बात भी ले बैठते हैं। कभी महिमा, कभी निन्दा। उनके मन का भेद नहीं मिलता। मुझे विश्वास का एक शब्द दो।

चतुर्मुख म्यूजियम में कुन्तल का मन रमता है। पर क्या ये मुलाकातें अमृत की बूंद बन सकती हैं ?

"तो फिर किस दिन चल रहे हो कोणार्क ?" कुन्तल ने शीशे के पेपर-वेट से खेलते हुए कहा।

"जिस दिन भी कहो।" अन्तराल की आँखों में मूर्च्छित-सी दृष्टि सिहर उठी।

कुन्तल की सन्दली कलाइयों पर सोने की चूड़ियाँ बज उठीं।

कुन्तल ने मुस्कराकर पूछा, "तेरहवीं शताब्दी में कोणार्क का मन्दिर बनाने में क्या बारह सौ पाथुरिया कारीगरों को बारह साल लग गए थे ? यह बारह का हिसाब भी विचित्र है। बारह सौ कारीगर और बारह साल का समय !"

कुन्तल का प्रश्न अनजान नाव-सा बह गया। "तो फिर कब चला जाए कोणार्क ?" अन्तराल ने पूछ लिया।

कई दिन की प्रतीक्षा के बाद कोणार्क का कार्यक्रम बना। अन्तराल ने नीलकण्ठ को साथ लेना आवश्यक समझा। कोणार्क के भव्य मन्दिर की ओर निहारते हुए नीलकण्ठ ने कहा, "पेट की आग पत्थर छीले, आत्मा की हूक देवता को भाव दे, पर प्राणों के सत्य की प्रतिष्ठा होगी ही।"

"वही तो जीवन का सम्पूर्ण रूप है।" कुन्तल मुस्करायी।

नीलकण्ठ ने कहा, "कोणार्क की पहली यात्रा मैंने पुरी से बैलगाड़ी पर की थी। फिर तो भुवनेश्वर से बस पर कई बार आया। इस बार कुन्तल साथ है, नहीं तो खाक मज़ा न आता, अन्तराल!"

अन्तराल ने उत्तर दिया, "जब मैं टूरिस्ट विभाग में था, तो जाने कितनी बार यात्रियों के साथ कोणार्क आने का अवसर मिला।"

"मूर्तियाँ दिखाते-बताते तुम अनेक कहानियाँ सुना जाते होगे, जैसे यात्रियों के लिए वे भी जरूरी हों। तुम रसिक और 'बोर्न' गाइड हो अन्तराल! भले ही अब तुम म्यूज़ियम के क्यूरेटर हो।" कुन्तल खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

कुन्तल के मुँह से 'रसिक' और 'बोर्न गाइड' की उपाधियाँ सुनकर अन्तराल झूम उठा। बोला, "नौकरी का मामला था। लोग आ जाते

ग्रौर मैं गाइड बन जाता।"

"कोरगार्क ग्राने वाली सड़क तो सदा खुली रहती है।" सोने की चूड़ियों के साथ कुन्तल की हँसी बज उठी। वह कहती गई, "कोरगार्क की एक ही सीख है कि हम प्यार के लिए बने हैं। यही बताया करते होगे तुम यात्रियों को।"

ग्रन्तराल ने गम्भीर मुद्रा में कहा, "नर-नारी का जोड़ा ग्रादि-काल से चला ग्राया है। कोरगार्क के पत्थर पुकार-पुकारकर यही बात बोल रहे हैं।"

वे कोरगार्क पहुँचे तो दोपहर ढल चुका था। सवेरे ही चले थे। रास्ते में कई जगह रुकना पड़ा। पीछे से ग्राने वाले किसी बड़े नेता की कार गुज़रने वाली थी। सड़क पर ही कई जगह भीड़ के सम्मुख राष्ट्रीय नेता ने भाषरग देना था। इस बाधा के काररग उन्हें रास्ते में तीन घण्टे से ग्रधिक देर हुई। नेता के साथ उड़ीसा सरकार के एक मन्त्री महोदय भी यात्रा कर रहे थे। वे दोनों महानुभाव ग्रभी तक कोरगार्क नहीं पहुँचे थे।

ग्रन्तराल ने मन्दिर के एक कोने में लम्बे केशों वाले योगी की मूर्ति दिखायी ग्रौर हँसकर कहा, "योगी की दाढ़ी कुछ कम लम्बी नहीं।"

"पास ही नारी भी खड़ी है।" नीलकण्ठ चुप न रह सका।

"वही सनातन नर-नारी का जोड़ा!" कुन्तल खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर थोड़ी खामोशी के बाद उसने माथे पर ग्राई लट को हाथ से हटाते हुए कहा, "नील, तुम किस सोच में डूब गए?"

नीलकण्ठ ने पीछे की ग्रोर संकेत किया। एक युवक एक युवती का फोटो ले रहा था।

ग्रन्तराल वोला, "चलो, ऊपर चलें। ऊपर से सागर दिखायी देगा। ग्रस्त होते सूर्य की मूर्ति भी देखेंगे।"

"मूर्तिकार ने सूर्यदेव के मुख पर थकान का भाव पूरी तरह उजागर किया है।" कुन्तल ने माथे पर हाथ रखकर कहा।

"ग्रौर सूर्यदेव का घोड़ा भी लगता है जैसे थक गया है।" ग्रन्तराल

ने थाप लगाई ।

वे ऊपर चले तो नीलकण्ठ ने पीछे की ओर देखकर कहा, "वह युवक उस युवती को लिये ऊपर आ रहा है।"

अन्तराल ने ध्यान से उसे देखा, फिर सहसा बोला, "इससे कहीं अधिक सुन्दर थी कुन्तल उस समय !"

कुन्तल की हँसी चूड़ियों की झंकार में खो गई।

वे ऊपर की ओर बढ़ते गए। "नीचे मन्दिर के आँगन में खड़े यात्री कितने छोटे-छोटे लग रहे हैं !" कुन्तल चुप न रह सकी, "मैं भी इसी तरह मन्दिर देखने आयी थी।" उसने एक ओर नर-नारी की युगल मूर्ति देखी और फिर अपनी आँखें अन्तराल पर गड़ा दीं। थोड़ी खामोशी के बाद बोली, "ध्यान रखो, पानी जब गिरता है तो नीचे की ओर ही जाता है।" वह दोनों हाथों से अपना गोल जूड़ा ठीक करने लगी।

नीलकण्ठ कुछ कहते-कहते चुप हो गया और फिर सँभलकर बोला, "कौन था वह लेखक ?—हैवलाक एलिस। अपनी पुस्तक लिखने से पहले कहीं उसने हमारा कोणार्क देखा होता···"

"तो उसने कई अध्याय और जोड़े होते।"

अन्तराल ने हँसकर कुन्तल और नीलकण्ठ की आँखों में कुछ ढूँढने का यत्न किया।

अन्तराल बोला, "वह देखो, उस युवक को गाइड की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं गाइड बन गया है, उस लड़की का, जैसे मैं कुन्तल का गाइड बन गया था पहली मुलाकात में। फिर जिन दिनों मैं टूरिस्ट विभाग में काम करता था यहाँ कोणार्क में युवक-युवतियों के ऐसे कितने ही जोड़े देखने को मिलते। तब कुन्तल की याद हो आती थी।"

नीलकण्ठ ने गम्भीर स्वर में कहा, "कोणार्क की मिथुन मूर्तियाँ देखते आरम्भ में युवक-युवती के हर जोड़े को संकोच होता होगा। फिर वे समझ जाते होंगे कि मूर्तिकार ने पत्थर में स्नेह की कथा कही है।"

वे अब एक युगल मूर्ति के सामने खड़े थे।

"मूर्तिकार ने पत्थर को मोम बना दिया," कुन्तल मुस्करायी।

चुम्बन की झाँकी मुँह से बोल रही थी। अन्तराल कहता गया, "कुन्तल से पहली मुलाकात में मैंने ग्रेटा गार्बो की कथा कहना ज़रूरी नहीं समझा था। धन्य था वह फ़िल्म डायरेक्टर जिसने गाँव की उस मुग्धा को लकड़ी ढोते देखा और उसे उठाकर ग्रेटा गार्बो बना दिया..."

"जैसे रामचन्द्रजी ने अहिल्या को उठाकर खड़ा कर दिया था।" नीलकण्ठ चुप न रह सका।

अन्तराल अपना प्रिय गीत गुनगुनाने लगा :

न कर अविश्वास पराण-सहि, कुआँर पुनिअकु आसिबि मुहिं।

नव जुवती तुहि वेश होइण, वसिणथिबु वाटकु अनाइण।

[अविश्वास न कर, प्राण-सखी ! कुआर-पूर्णिमा को मैं आऊँगा। ओ री नव-युवती, सजकर रहना और बैठकर मेरी बाट जोहना।]

सूर्य अस्त हो रहा था। अन्तराल का गीत भी किरणों के साथ डूबता गया। पर गीत की भाव-भूमि तीनों मित्रों के सम्मुख उभर रही थी।

नीलकण्ठ ने उस युवती की ओर संकेत करते हुए कहा, "उसे शायद विश्वास नहीं होगा कि साजन कुआर-पूर्णिमा को लौट आएगा।"

बगल में खड़ी कोई कन्या गुनगुना रही थी :

दुलि करे कें कट
दुलिकु देवि मुँ सोना मुकुट
दुलि न कर तु कें कट, मो दुलि रे।

[झूला कट-कट स्वर करता है। मैं झूले को स्वर्ण-मुकुट दूँगी। ओ रे झूले, तू कट-कट स्वर मत कर !]

उनके पीछे खड़े यात्री कोणार्क के विशालकाय घोड़ों की सजीवता सराह रहे थे, जैसे उनका झूले को स्वर्ण-मुकुट देने के प्रस्ताव से दूर का भी वास्ता न हो।

कुन्तल ने मुस्कराकर कहा, "अन्तराल, मैं तो यहाँ की मूर्तियाँ देखकर इस परिणाम पर पहुँची कि..." कहते-कहते वह रुक गई।

"कहो न !" नीलकण्ठ ने जैसे कुन्तल के मन की बात बूझते हुए कहा, "तुम यही कहने जा रही थीं न कि नारी सदा संस्कारों पर आधारित नई सृष्टि करती है। सच पूछो तो वह परम्परागत को ही प्राणदान करती नहीं चलती। इसी तरह तुम अन्तराल के जीवन में आयीं, कुन्तल ! मेरे जीवन में भी एक आयी थी। अलवीरा से विवाह करने से बहुत पहले वह कहीं की राजकुमारी न थी। उसका नाम राजकुमारी था।"

"अलवीरा जानती है क्या तुम्हारी वह कथा ?" कुन्तल ने गम्भीर होकर पूछा।

"वह नहीं जानती। मैंने उससे कभी नहीं कही वह कथा।" जैसे अधवसना-सी सौन्दर्यानुभूति का अंचल छूते हुए कहा, अन्तराल ने, "मैं सोचता हूँ, ये कोणार्क की मिथुन मूर्तियाँ उन मूर्तिकारों की कुण्ठाओं की ही अभिव्यक्ति हैं क्या ?"

नीलकण्ठ ने अन्तराल का कन्धा झंझोड़कर कहा, "मुझे तो लगता है ये कलाकृतियाँ उन मूर्तिकारों के आन्तरिक सुख की प्रतीक हैं। पत्थर पर छेनी चलाते-चलाते नर ने नारी को समझने की चेष्टा की है।"

कुन्तल ने जाने क्या सोचकर पूछा, "क्यों अन्तराल, यहाँ तो बड़े-बड़े समाज-सुधारक और नेता भी आते होंगे ?"

"क्यों नहीं ? आज ही आ रहे हैं हमारे एक नेता और उड़ीसा सरकार के एक मन्त्री महोदय।"

"सब आते हैं," अन्तराल ने लम्बी साँस लेकर कहा, "और अपनी छाप छोड़ जाते हैं। ऐसे ही मेरे जीवन में तुम आयीं, कुन्तल ! यहीं हमारा प्रथम साक्षात्कार हुआ था।"

कुन्तल बोली, "वह कथा तो बहुत पहले की है। मैंने पुरी में महाप्रभु के सम्मुख तुमसे वचन लिया था कि तुम मुझे स्वीकार करोगे। तुम तो मानते ही न थे। यही कहते रहे—मैं अकिंचन, तुम राजकुमारी !···मैं तुम्हें अपनी स्टेट में ले गई।···"

हवा में ठण्ड थी। बूढ़ा बरगद जैसे अन्तराल और कुन्तल को

पहचानता हो और पत्तों के ओंठ हिलाकर स्वागतम् कह रहा हो।

अन्तराल ने कहा, "वह कथा आज प्रिय लगती है। अकिंचन् को महान् बनाना ही तो प्रेम का सबसे बड़ा चमत्कार है। यही क्या कुछ कम गौरव है, कुन्तल, कि तुम्हारे मन पर उन दिनों की याद बनी हुई है?"

कुन्तल ने पूछा, "क्या कला वास्तव में घुटन का विस्फोट होती है?"

नीलकण्ठ ने अपनी ही बात छेड़ दी, "मैं भी अपनी उस राजकुमारी को अभी तक नहीं भूला। इतने वर्ष पूर्व मैं बैलगाड़ी पर पुरी से कोणार्क आया था। एक आर्ट स्कूल की पार्टी आ रही थी। उसी के साथ हो लिया था। आदमी जो कुछ करता है, जैसा रूप वह धारण करता है, उसका निर्णय उसी के हाथ में रहता है क्या?"

कुन्तल बोली, "विस्तार से कहो वह कथा।"

"यह तो तुम भी मानोगी, कुन्तल!" नीलकण्ठ कहता चला गया, "बहुत सी बातें मिलकर हमारी कथा को आगे-पीछे ले जाती हैं। मैं तो इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मैं आज जिस रूप में हूँ, उसमें बहुत-कुछ हाथ उसी राजकुमारी का है। हमारी वह राजकुमारी तो श्यामवर्ण थी, जैसी रवीन्द्रनाथ की श्यामकली रही होगी।

कुन्तल ने उस कविता का बोल सुना दिया :

> कृष्ण कलि आमि तारेइ बलि,
> कालो तारे बले गाँयेर लोक।
> मेघल दिने देखे छिलाम माठे,
> कालो मेयेर कालो हरिण-चोख।

"तीन बैलगाड़ियों पर हम लोगों ने रात-भर यात्रा की। मुझे राजकुमारी वाली बैलगाड़ी पर स्थान मिला। राजकुमारी के साथ उसकी कोई रिश्ते की बहन भी अपने भाईसहित उसी बैलगाड़ी में थी। कैसे उन्होंने मुझे भी संग ले लिया, यह संयोग की ही बात थी।"

"मेरी कथा भी ऐसी ही समझो—संयोग की कथा!" कुन्तल चुप न रह सकी।

"वे तीनों देर तक मेरी बातें सुनते रहे। राजकुमारी ही अधिक रस ले रही थी। मेरी एक-एक कथा आहुति बनती गई।"

"हाथ तो नहीं जल गया था होम करते ?" अन्तराल हँस पड़ा। फिर गम्भीर होकर बोला, "अधिकार, धन, ख्याति, सब व्यर्थ हैं, यदि प्रेम न मिले। प्रेम ही जीवन का आदि-काव्य है, और यही है शेष काव्य।"

"सुनो तो !" नीलकण्ठ कहता चला गया, "सोते में कई बार मेरी देह राजकुमारी को छू गई होगी। अब इसमें दोष रहा भी हो तो बैल-गाड़ी के धचके ही उसके लिए ज़िम्मेवार थे। यहाँ पहुँचकर मूर्तियाँ देखते समय बार-बार मैं राजकुमारी की आँखों में कुछ पढ़ने की चेष्टा करता रहा। आज सोचता हूँ, अपनी उस कोणार्क-यात्रा को नैतिकता के काँच-पत्थरों की ऐनक लगाकर देखूँ ही क्यों ? वह यात्रा क्या राजकुमारी को भी याद आती होगी ? वह जाने किस सिन्दूरी नाव में जा बैठी होगी ! पर पहले प्यार के गन्ध-सन्देशे वाले उन अन्धे आलिंगनों की डगमग याद उसे भी कैसे नहीं आती होगी।"

वे मन्दिर के ऊपर वहाँ आ पहुँचे थे, जहाँ से पूर्वी सागर दिखायी देता था।

नीचे मन्दिर के आँगन में खड़े विशालकाय बरगद से अस्त होते सूर्य की अन्तिम किरणें आँख-मिचौनी खेल रही थीं।

"राजकुमारी के सपने चन्दन की पालकी में बन-ठनकर बैठते होंगे। याद आती है उसकी चितवन, कानों में सोने के कुण्डल, आँखों में काजल के मेघ। मानो पत्थर की मूर्ति बोल रही हो—हम प्यार के लिए बने हैं..." कहते-कहते नीलकण्ठ चुप हो गया।

साँझ घिरने लगी। पर कोणार्क की मूर्तियों के विलुप्त होने में देर थी। लगता था, उन मूर्तियों में लुकती-छिपती किरणें भी जैसे उनकी वेदना-संवेदनाओं की तरह व्यापक विस्तार का सपना देख रही हों।

"जीवन के सम्पूर्ण सत्य को समझने के लिए कोणार्क को समझिए।" अन्तराल ने कथा का तार निकाला, "कुन्तल जानती है, हम कितने निकट

सम्पर्क में रहे। कैसा पुण्य स्पर्श था वह? फिर हमारी कथा चर्चा का विषय बन गई, तो हमें दूर कर दिया गया। पास-पास रहते भी हम पत्र लिखते थे। उन पत्रों में हमारे प्यार की अटूट साँसें रहती थीं। क्यों कुन्तल!"

कुन्तल खड़ी मुस्कराती रही।

"अन्तिम किरणों के नरम तारों में लिपटे कोणार्क के ये खण्डहर तो और भी सजीव हो उठते हैं।" कहते हुए नीलकण्ठ ने अन्तराल और कुन्तल की तरफ़ देखा। उनके खुले नयन मानो किसी पूजा-भाव में मौन हो गए थे।

पर एक आलिंगन-मूर्ति पर कबूतर-कबूतरी का जोड़ा चोंच-में-चोंच डाले बैठा था, जैसे पत्थर में डूब रही काम-गन्ध की यह व्याख्या वे युग-युग से करते आए हों।

अन्तराल ने नीलकण्ठ के कन्धे पर हाथ रखा और अलसाए-से स्वर में बोला, "एक बार चार गुजराती लड़कियाँ कोणार्क देखने आयीं। उनमें एक कथा की शौकीन थी। मैंने उसे कुन्तल की कथा सुनायी, तो वह देर तक प्रश्न-पर-प्रश्न करती रही। अब मैं उसे कैसे बताता कि कुन्तल रेशमी गुलनार आलिंगनों पर विस्मृति की धूल डालकर सूर्यवंशी रक्त के रथ में जा बैठी। और मैं भी सपने के मधु-कुंज से निर्वासित होकर एक माटी की शैली में गढ़ी गई मूर्ति के साथ सप्तपदी वाला सम्बन्ध जोड़कर अपनी वंशावली को आगे खेने के लिए पतवार चला रहा हूँ।"

लगता था, अन्तराल के मुख पर किसी ने युग-युग की कुण्ठा उभार दी है। उसे देखकर कुन्तल की हँसी भी डूब गई। साँझ उतर आई थी।

नीलकण्ठ ने उपयुक्त अवसर देखकर कहा, "मुझे तो आज भी लगता है, पुरी से चली वह बैलगाड़ी अभी कोणार्क नहीं पहुँची और मेरी देह पास पड़ी सोती राजकुमारी से छू-छू जाती है। अब तो जैसे वे गन्ध-उन्मत्त स्पर्श मन की झील में बाँसुरी-मुग्ध नाव खे रहे हों। कभी लगता है, वह कथा रेल की तरह मीलों लम्बी सुरंग में चली जा रही है और

सुरंग समाप्त नहीं हो रही ।"

सहसा उनकी दृष्टि उस युगल-मूर्ति पर पड़ी, जिसमें नर-नारी के मुखों पर कुण्ठा नहीं, प्यार की तृप्ति और जीवन की दीप्ति खिल रही थी। नीलकण्ठ ने कहा, "लगता है, यह युगल-मूर्ति मेरी ही बात को सत्य कर रही है। सचमुच कोणार्क की मूर्तियों में उन मूर्तिकारों का प्यार साँस ले रहा है ।"

"इनमें सदा प्यार का दर्शन होता है ।" कुन्तल के मुख पर सहज मुस्कान खिल उठी और मुख पर झुकी अलक को परे हटाते हुए कहा, "मैं जब भी कोणार्क आयी, जाने किस-किसकी मिलन-यामिनी मेरी कथा को छू गई ।"

"मैं भी यही कहने जा रहा था ।" अन्तराल ने कुन्तल की ओर देखकर कहा, "मेरे लिए भी न जाने किस-किस मूर्ति से तुम्हारी वह लाज-न्हाई मुख-मुद्रा झाँक जाती है । और ये पत्थर बोलते हैं तो खरी बात, रूप और प्यार की बात ।"

सागर की ओर से आती हवा के स्पर्श में उनके तन-मन सिहर उठे ।

इतने में एक अपरिचित यात्री ने पास आकर कहा, "क्या आप लोग मुझे मूर्तिकार बिशु के बारे में कुछ बता सकते हैं, जिसकी देख-रेख में यह मन्दिर बना था ?"

अन्तराल ने कहा, "मैं कहता हूँ, कोणार्क की चेतना-चुम्बित कथा के महान् नायक महाशिल्पी बिशु, और मैं सोचता हूँ···" कहते-कहते अन्तराल चुप हो गया ।

"बारह वर्ष तक इस मन्दिर का निर्माण होता रहा," कुन्तल उस अपरिचित यात्री की ओर भावावेश में हाथ उछाल-उछालकर कहती चली गई, "बारह सौ मूर्तिकार बिशु के साथ जुटे थे । फिर यह समस्या आयी कि राजा के मन्त्री की घोषणा के अनुसार बारह वर्ष पूरे होने से दो-चार दिन पहले ही कलश टिका दिया जाए, नहीं तो बारह सौ मूर्तिकार बिशु सहित अपने हाथ कटवाने के लिए तैयार रहें । मन्दिर का कलश टिकाने

में बहुत दिन से सफलता नहीं मिल रही थी। एक दिन एक युवक ने आकर कहा—'मेरा नाम धम्मपद है। यह काम मैं कर सकता हूँ।'...कलश और मन्दिर के भीतर वाली सूर्य-प्रतिमा में चुम्बक पत्थर का प्रयोग किया गया था, जिससे प्रतिमा धरा से ऊँची निराधार ही स्थापित की जा सके। पर चुम्बक के प्रयोग में कहीं ऐसी भयंकर भूल हो गई कि कलश चढ़ाते समय मन्दिर का मुख्य भाग गिर पड़ा और धम्मपद दबकर मर गया। बाद को धम्मपद की माला देखने पर बिशु ने पहचाना कि धम्मपद तो उसी का पुत्र था। एक कन्ध-कन्या से बिशु का प्यार..."

"प्यार!" प्रभाव के जादू में हठात् अन्तराल उस हतप्रभ-से अपरिचित यात्री की ओर देखकर बोला, "प्यार के लिए ही तो हम बने हैं। कोणार्क के रूप में बिशु कहीं उस कन्ध प्रेयसी का ही तो अभिनन्दन नहीं कर रहा था, जिसे वह राज्यादेश पर गर्भावस्था में ही छोड़ आने को बाध्य हुआ था?"

अपरिचित यात्री ने कहा, "यह तो आपने ठीक कहा—हम प्यार के लिए ही बने हैं।"

नीलकण्ठ और कुन्तल ने एकटक सागर की ओर देखा। अन्तराल ने अपरिचित यात्री को सम्बोधित करते हुए कहा, "और देखिये। प्यार को प्यार की अपेक्षा नहीं होती। मैं कहता हूँ, प्यार में ढले पत्थर भी अमर हैं। प्यार ने ही इस जीवन को दिशा और गति दी, प्यार ही इन पत्थरों का प्राण है। यदि कुन्तल भी यही सोचती है, तो मैं धन्य हूँ।"

कुन्तल कुछ न बोली, जैसे अन्तराल की कथा की कुन्तल कोई और हो।

नीलकण्ठ ने कहा, "सपने में मुझे कोणार्क का मन्दिर सूर्य-रथ के रूप में चलता हुआ प्रतीत होता है, जैसे मैं भी इस रथ में बैठा हूँ, जैसे उस बैलगाड़ी ने ही सूर्य-रथ का रूप धारण कर लिया हो।"

कुन्तल और अन्तराल एक-दूसरे की ओर देखने लगे। वह अपरिचित यात्री एक युगल-मूर्ति की ओर घूम गया।

बस का हार्न उन्हें पुकार रहा था। वे शीघ्र ही नीचे उतरे और मन्दिर के प्रांगण से बाहर आकर उन्होंने एक दुकान से चाय पी। अब जैसे कहने को कुछ न रह गया हो।

बस चली तो जान-में-जान आई। जगह-जगह रात के अँधेरे में बैलगाड़ियों की पाँत उनका ध्यान खींच लेती। रोशनी के लिए हर गाड़ीवाले ने गाड़ी के नीचे लालटैन बाँध रखी थी। "जैसे रात्रि-यात्रा पर चली जा रही ये बैलगाड़ियाँ भी किसी सूर्य-रथ से मिलने चल पड़ी हों।" कहते-कहते कुन्तल ने पहले अन्तराल की ओर देखा, फिर नीलकण्ठ की ओर।

नौकरी से मुक्त होकर भी नीलकण्ठ ने कटक में ही क्यों धूनी रमा रखी है, यह बात धौली वालों की समझ में नहीं आती। दादी के लिए समय पर मनीऑर्डर आ जाता है, पर वह तो पोते और पड़पोते को देखने को तरस गई।

"नारायण ने तो कभी मेरी सुध नहीं ली," दादी पोपले मुँह से शिकायत करती, "तीन लोक से मथुरा न्यारी। उसकी मथुरा है कलकत्ता। अब नीलकण्ठ ने कटक को मथुरा बना लिया।"

भुवनेश्वर से पुरी जाने वाली पक्की सड़क उसी तरह दया नदी के पुल पर से गुज़रती है। धौली को सड़क से मिलाने वाला रास्ता पहले की तरह कच्चा है। मन्दिर में मंगल शंख बजता है। माघ आता है। दूधिया कतकी पूनम छिटकती है। रूपक मूर्तिशाला में बैठकर मूर्ति गढ़ता है। उसने गुरुदेव का अड्डा सूना नहीं होने दिया। पाथुरिया गली की लाज रख ली।

दादी की मटमैली साड़ी देखकर सोना कहती, "मनीऑर्डर के रुपये बचाकर क्या करोगी, दादी ? कहो तो नई साड़ी ला दें ?"

दादी हँसकर कहती, "अब तो मरघट में ही नई साड़ी पहनूँगी"

दादी को वे दिन याद आने लगते हैं, जब दोनों कलाइयों पर एक-एक मोरनी गुदाई थी।

"अब तो ये मोरनियाँ भी मरघट में मेरे साथ जलेंगी, सोना बेटी !" दादी बार-बार यह विचार दोहराती।

गाँव-मुखिया बंशी को सोना ने घोड़े की उपाधि देते समय जाने क्या सोचा था। दादी समझाती, "आदमी की जात घोड़े से ऊँची है, बेटी !" बात यहाँ आ पहुँचती है कि घोड़ा कितने कोस दौड़ सकता है।

सोना कहती, "बंशी ने ही तो चाहा था कि त्रिमूर्ति दिल्ली चली जाए। वह घोड़े की तरह हिनहिनाता है, आँखें भी घोड़े-जैसी हैं।"

जागरी छेड़ता, "बंशी का गंजा सिर तो घोड़े के सिर से बिलकुल नहीं मिलता।"

रूपक ने बंशी की मूर्ति मूर्तिशाला में रख छोड़ी है। वह कहता, "गाँव-मुखिया की मूर्ति की धूल साफ़ करते-करते मेरे हाथ रह गए।"

वैद्यजी की दुकान पर अब रूपक भी आ बैठता है। यह असम्भव है कि बाबा का प्रसंग न चले। जागरी गाँजे का दम लगाकर कहता, "वैद्यजी, धौली की कच्ची सड़क कब पक्की बनेगी ? आज़ादी आये इतने साल हो गए। बाबा होते तो पक्की सड़क बनवाकर छोड़ते।"

पास से बंशी कहता, "सरकार को हमारा भी ध्यान आएगा एक दिन। पक्की सड़क न बनी तो मेरा नाम बंशी नहीं।"

वैद्यजी भी चुप नहीं रहते, "हमारी सड़क कच्ची ही सही, पर अश्वत्थामा के लेख के कारण धौली सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। और सोना को जिन देशों ने नर्तकी के रूप में देखा, उन्होंने धौली का नाम कैसे नहीं सुना होगा ?"

कोई अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान का बखान करता, कोई त्रिमूर्ति का, कोई विशाल कौशल्या पुखरी की कथा ले बैठता।

धौली का दुनिया में नाम हो न हो, पर यहाँ उसी तरह धान उगता है, उसी तरह गन्ने में रस भरता है। वैसे ही अमराई में बौर आता है।

वैसे ही बाँस-कुंज में बाँस लहराते हैं। वैसे ही नागफनी मुँह चिढ़ाती है। वैसे ही केवड़े के फूल काँटों और पत्तों में छिपकर खिलते हैं। वही वर्जनाएँ, वही बन्धन, वही आवेग-संवेग। पर जो कल्पना धौली की मटमैली कथा में सोने-चाँदी के द्वार लगा जाती है, वह है नूतन भुवनेश्वर की रंग-स्थली की चर्चा, जो आरती दीप-सी जल उठती है।

नूतन भुवनेश्वर में लक्ष्मी का निवास है, वैभव का सम्मोहन है। वहाँ मन्त्री महोदय रहते हैं। बड़े मन्त्री, छोटे मन्त्री। उन्हीं के संकेत पर चलती है सरकार। उन्हें यह देखने का अवकाश नहीं कि धौली का आँचल कितना मैला है।

वैद्यजी कहते, "धौली जिस पुण्य-गन्ध के लिए हाथ फैला रहा है, वह तो नूतन भुवनेश्वर से आएगी ?"

"धन्य है धौली, जहाँ चतुर्मुख-जैसा मूर्तिकार हुआ !" गगन महान्ती अपना स्वर मिलाते।

"नीलकण्ठ का नाम क्यों नहीं लेते ?" जागरी भी चुप नहीं रहता।

"वह तो कटक का हो गया।" गुरुचरण गाँठ लगाता।

"और हमारा अन्तराल भी तो कटक का हो गया।" वैद्यजी कहते।

फिर किसी रियासत की बात चल पड़ती है। वैद्यजी कहते, "खबर-कागज़ में सारा हाल छपा था। उन दिनों रियासतों को देश की यूनियन में मिलाने का बीड़ा उठया गया। राजा लोग आसानी से मानने वाले नहीं थे। सरदार पटेल ने इसके लिए बहुत सी रियासतों का दौरा किया।"

पास से गगन महान्ती कह उठते, "वही तो मैं कह रहा था, वैद्यजी ! आँखों-देखी कथा कहता हूँ। सोने-चाँदी के रथ में बैठे थे राजा साहब और सरदार पटेल। सूर्य-रथ की तरह सात घोड़े उसे खींच रहे थे। रथ के आगे-आगे रियासत का बैंड विजय-गान की धुन अलापता जा रहा था। वह जलूस मुझे याद रहेगा। बाज़ारों को झण्डियों से सजाया गया था। खिड़कियों और छतों से स्त्री-पुरुष आनन्दपूर्वक राजा साहब और सरदार पटेल पर फूल बरसा रहे थे। रियासत की राजधानी के बड़े

चौक में रथ रुक गया और राजा साहब ने घोषणा की—'आज से हमारी रियासत में हमारी नहीं, बल्कि सरदार पटेल के मन्त्रालय की हुकूमत होगी।' इसके उत्तर में सरदार पटेल ने कहा—'माननीय राजा साहब, बहनो और भाइयो ! हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हमारे मन पर राजा साहब की उदारता की छाप सदा लगी रहेगी। राजा साहब बड़े गुणी पुरुष हैं। उनकी उदारता से कटक में धौली के सुविख्यात मूर्तिकार चतुर्मुख की स्मृति में एक म्यूज़ियम स्थापित किया गया। कटक के आर्ट स्कूल की स्थापना में भी राजा साहब का ही हाथ था। और भी बड़े-बड़े कामों में राजा साहब सदा आगे रहे हैं। हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि रियासत में कानून की व्यवस्था हम ढीली नहीं होने देंगे। राजा साहब की महिमा के लिए हमारी सरकार उनके खर्च का पूरा प्रबन्ध करेगी। इसके लिए हम वचनबद्ध रहेंगे।' इस घोषणा का स्वागत अपार हर्ष-ध्वनि द्वारा किया गया।"

"राजा साहब तो कभी के चल बसे। उनकी एकमात्र सन्तान है राजकुमारी कुन्तल। महाराजकुमार सूर्यदेव एम० एल० ए० की पत्नी।"

"कुन्तल तो यहाँ भी आ चुकी है।"

"हमारी कच्ची सड़क को पक्की बनाने के लिए तो कुन्तल की जेब भी काफ़ी हो सकती है, मास्टरजी !"

"अब वह बात कहाँ, वैद्यजी ! राजा साहब से प्रार्थना की होती, तो हमारी मनोकामना पूरी हो जाती।"

एक दिन लाठी टेकती हुई दादी वैद्यजी की दुकान पर आकर बोली, "बेटा, नील को चिट्ठी लिख दो कि वह रूपम् को मेरे पास छोड़ जाए। उसे लिख दो, सोना का बेटा उसे याद करता है। और यह भी लिख दो कि अब तो भगवान् मुझे बुलाने वाले हैं…"

वैद्यजी चिट्ठी लिखने बैठ गए।

"स्कूल के लड़के मुझे गोरा कहकर क्यों चिढ़ाते हैं, डैडी ?" रूपम् ने पूछा, और कोई उत्तर पाए बिना ही जागरी से सीखा हुआ गीत गाने लगा :

देखो मेरी जान कम्पनी निशान
बीबी गई डमडम उड़ी है निशान
बड़ा सा'ब छोटा सा'ब बाँका कप्तान
सा'ब गया डमडम उड़ी है निशान
आगरा लूटा दिल्ली लूटा, लूटा मुल्तान
सा'ब गया डमडम उड़ी है निशान

अलवीरा ने पास आकर कहा, "देखो, बेटा ! मैं समझाती हूँ। बंगाल आर्टिलरी का सदर मुकाम डमडम ले जाने पर यह गीत बना था। अंकल जागरी आयें तो उन्हें बताना। वे कहेंगे—रूपम् बहुत समझदार होग या !"

नीलकण्ठ ने मूर्ति गढ़ते हुए कहा, "पहले क्या रूपम् बेसमझ था ?"

रूपम् ने अलवीरा के गले में बाहें डालकर कहा, "व्हाई डैडी मेक्स सो बिग-बिग स्टेच्यू ?" [डैडी इतनी बड़ी मूर्ति क्यों बनाते हैं ?]

अलवीरा ने रूपम् को चूम लिया। नीलकण्ठ ने उसे अलवीरा से छीनकर कन्धों पर उठा लिया और कमरे में चक्कर लगाने लगा।

"व्हाई डैडी मेक्स सो विग-विग स्टेच्यू ?" रूपम् कहता जा रहा था।

रूपम् बचपन से ही डैडी को मूर्ति गढ़ते देखता आया था। अलवीरा तो चाहती थी कि वह स्कूल का काम छोड़कर डैडी की कला में इतना रस न लिया करे।

हाथ उठाकर जब भी रूपम् कहता, 'व्हाई डैडी मेक्स सो बिग-बिग स्टेच्यू ?' तो अलवीरा सोचती, रूपम् मूर्तिकला का मज़ाक उड़ा रहा है।

अलवीरा चाहती थी कि रूपम् को धौली की याद न सताए। पर रूपम् को सागर की बातें तो भुलाए न भूलतीं। धौली के बच्चे पंछियों की बोलियाँ बोलते थे। वहाँ जाकर वह भी ममी का 'जंगल प्रिन्स' बन जाता था और अश्वत्थामा से आगे धौलगिरि के बेंत-वन में जाने की बात तो वैसी ही लगती, जैसे कथा का राजकुमार दूर देश का सपना देखता था।

कई बार कलकत्ते हो आया था रूपम्, जहाँ नारायण बाबा उसे मिठाई खिलाते थे और अंकल अन्नदा 'बीबी गई डमडम उड़ी है निशान' वाला गीत सुनाने को कहते थे, और बदले में अंकल जागरी की यह कथा सुनाते थे :

'एक बार जागरी सागर-स्नान के बाद जगन्नाथजी के मन्दिर की ओर जा रहा था। सागर की ओर से तेज़ हवा चल पड़ी। उसके लम्बे बाल झट सूख गए और उड़-उड़कर आँखों पर पड़ने लगे। आँखों से बाल हटाते-हटाते जागरी तंग आ गया।

'जागरी ने हवा से कहा—हवा-हवा, तुम अपना रास्ता बदल लो। हवा बोली—मैं नहीं बदलती अपना रास्ता। जागरी ने कहा—हवा-हवा, तू अपना रास्ता नहीं बदलती तो मैं अपना रास्ता बदल लेता हूँ। और वह मन्दिर जाने की बजाय फिर सागर की ओर चल पड़ा।'

अंकल जागरी की यह कथा रूपम् डैडी को सुनाने लगता। कभी

वह डैडी को वह बोल गाकर सुनाता जो उसने पुरी में एक बार एक साधु बाबा से सुना था :

हद्द टप्पे औलिया बेहद्द टप्पे पीर
हद्द बेहद्द दोनों टप्पे ओहदा नाँ फकीर

जागरी ने रूपम् को साधु बाबा के बोल का अर्थ समझा रखा था। फिर भी नीलकण्ठ उसे दोबारा समझाता, "बिलकुल ठीक है, रूपम् ! जो हद उलाँघता है, वह हुआ औलिया। जो बे-हद उलाँघे, वह पीर। जो हद-बेहद दोनों उलाँघे, उसका नाम है फ़कीर।"

एक दिन जागरी कटक आया तो रूपम् ने हवा वाली कथा शुरू कर दी, और फिर उसकी कल्पना की गाड़ी 'देखो मेरी जान कम्पनी निशान' वाली पटरी पर शंट करने लगी।

नीलकण्ठ ने रूपम् को चुप कराते हुए जागरी से कहा, "धौली की पक्की सड़क बननी मन्जूर हो गई। मन्त्री के ऑर्डर हो गए। पाथुरिया गली के बीच से होती हुई दया नदी के पुल से पक्की सड़क अश्वत्थामा तक जाएगी।"

"यह तो खुशी की बात है।" जागरी खुशी से उछल पड़ा, "काम कब शुरू हो रहा है?"

नीलकण्ठ ने उसे विश्वास दिलाया कि अब अधिक देर नहीं होगी। उसने बताया कि सरकार की समझ में यह बात आ गई है कि बहुत से टूरिस्ट भुवनेश्वर, पुरी और कोणार्क देखकर ही लौट जाते हैं। अधिक-से-अधिक भुवनेश्वर की समीपवर्ती खण्डगिरि और उदयगिरि की यात्रा कर लेते हैं, क्योंकि ये स्थान पक्की सड़क के दोनों ओर पड़ते हैं। पर धौलगिरि की अश्वत्थामा तक तो विरले यात्री ही पहुँचते हैं। अब पक्की सड़क बन जाने से हर कोई अश्वत्थामा भी हो आया करेगा।

जागरी ने कहा, "यह सड़क तो आज़ादी मिलते ही बन जानी चाहिए थी। चलो, सरकार को इसका ध्यान तो आया।"

रूपम् एक बार फिर ज़ोर से चिल्लाया—"देखो मेरी जान कम्पनी

निशान !"

नीलकण्ठ और अलवीरा ने उसे डाँट पिलाई ।

"जागरी, एक बात कहूँ । नौकरी चली जाने का मुझे गम नहीं । छेनी चलती रहे ।" नीलकण्ठ ने मूर्ति गढ़ते हुए कहा, "सबसे बड़ी बात है कि काम में विश्वास न हो तो सब बेकार है ।"

अलवीरा ने न जाने क्या सोचकर कहा, "जागरी, धौली जाकर दादी से कहना कि हमारा रूपम् तो आर्टिस्ट नहीं बनेगा ।"

"अभी से चिन्ता करने की क्या ज़रूरत है, डार्लिंग !" नीलकण्ठ ने मुस्कराकर कहा, "वह तो उधर ही जायेगा, जिधर उसके संस्कार ले जाएँगे ।"

"यही तो मैं भी कहती हूँ," अलवीरा ने व्यंग्यपूर्वक कहा, "मैं कहे देती हूँ कि वह तुम्हारी छेनी-हथौड़ी से मित्रता करने से रहा ।"

"तुम्हें पछतावा हो रहा है, डार्लिंग ! मैं यह नहीं मान सकता ।" नीलकण्ठ ने छेनी चलाते हुए कहा ।

जागरी बोला, "दादी पूछ रही थी, आप लोग धौली कब आ रहे हैं ?"

"यह तुम अलवीरा से पूछो, जागरी ! मैं तो कहता हूँ, अब के छुट्टियाँ धौली में ही गुज़ारी जाएँ । यह नहीं मानती । इसीलिए दो-तीन साल से मैं धौली जाकर रहने की साध पूरी नहीं कर पाया । दादी चिट्ठियाँ लिख-लिखकर हार गई । अलवीरा सुनती ही नहीं ।"

अलवीरा बैठी मुस्कराती रही ।

रूपम् ने पास आकर पूछा, "एक बात बताओ, ममी ! क्या सचमुच कोणार्क के ट्वैल्व हण्डरैड आर्टिज़न्ज़ ट्ल्वैव हण्डरैड साल तक काम करते रहे थे ?"

"देखो न, रूपम् !" अलवीरा ने पुचकारकर कहा, "कथा तो यही कहती है ।"

जागरी एकटक रूपम् को देखता रहा, जो अब जाने किस कथा का सपना देख रहा था । रंग गोरा, एकदम विलायती, आँखें अलवीरा की

तरह नीली। बाल नीलकण्ठ की तरह काले घुंघराले। चेहरे के 'कट' में अलवीरा और नीलकण्ठ के चेहरों का सम्मिश्रण। यही सब देखकर जागरी मुस्करा रहा था।

रूपम् बोला, "क्या यह सच है ममी, कि धर्मपद कोणार्क के चीफ़ आर्टीज़न विशु का बेटा था?"

"यस, रूपम्!" अलवीरा ने मुस्कराकर कहा, "यह कथा छोड़ो। जाकर स्कूल का काम करो।"

रूपम् ने फिर पूछा, "क्या धर्मपद कलश गिरने से पत्थरों के नीचे दबकर मर गया था, ममी?"

नीलकण्ठ बोला, "तुम यह प्रश्न अंकल जागरी से पूछो, रूपम्!"

अलवीरा ने समझाया, "अभी जाकर खेलो, बेटा! माई स्वीट रूपम्! हमें बात करने दो।" और वह उठकर रूपम् को बाहर ले गई।

जागरी ने गम्भीर होकर कहा, "बाबा की मूर्ति तो नारायणगढ़ के लाल पत्थर की बनाते। श्यामवर्ण मुगनी पत्थर क्यों चुना इसके लिए?"

"रंग की ही तो बात नहीं।" नीलकण्ठ ने छेनी चलाते हुए कहा, "यह बताओ, बाबा की भंगिमा कैसी लगती है?"

बाहर से आकर अलवीरा बोली, "वाह, डार्लिंग! तुमने दो हाथ चलाकर ही पत्थर में प्राण डाल दिए।"

"यह तुम इसलिए कह रही हो कि यह बाबा की मूर्ति है।" नीलकण्ठ मुस्कराया, "बाबा सचमुच महान् थे। बाबा मेरे मन में बसते हैं। वे अपनी पीढ़ी के महान् मूर्तिकार थे। आज मैं बाबा की मूर्ति बनाता हूँ, तो लगता है, सभी पीढ़ियों के मूर्तिकार अपना-अपना पत्थर लेकर मूर्ति गढ़ रहे हैं। जैसे पिछली पीढ़ियों के मूर्तिकारों की सम्पूर्ण प्रतिमा मेरे हाथ में आ गई हो। जैसे हमारे रूपम् के पीछे हमारी सम्पूर्ण सभ्यता साँस ले रही हो।"

अलवीरा ने अपनी ही हाँकी, "तुम कुछ भी कहो, डार्लिंग! मैं बिलकुल नहीं चाहती कि रूपम् आर्टिस्ट बने।"

सोना कहती, "दादी, सारी दुनिया पथ-भ्रष्ट हो रही है।" और जब दादी कहती, "मैं समझी नहीं, बेटी !" तो सोना बात टाल जाती।

सोना कैसे कहती कि कोइली कटक के वकील हरिपद से विवाह करके भी न अपूर्व को छोड़ सकती है न अन्नदा बाबू के चक्कर से ही निकल पाती है।

एक दिन सोना ने कहा, "कुन्तल अब भी अन्तराल के चक्कर में है, दादी ! परसों मैं जब कटक गई तो म्यूज़ियम में अन्तराल कुन्तल के साथ कोणार्क-यात्रा का किस्सा सुना रहा था कि ऊपर से कुन्तल आ गई।"

"मिलने में तो कोई बुराई नहीं है, बेटी ! बुराई होती तो कुन्तल का पति उसे रोकता।"

"पति की कौन सुनती है शहरों में !" सोना हँस पड़ी।

"तो क्या अलबीरा भी नीलकण्ठ के कहने में नहीं है ? मेरा पत्र तो उन्हें दे दिया था न ?"

"दे दिया था, दादी !" सोना ने मानो किसी नृत्य-मुद्रा में कहा, "लो नागमती आ रही है।" और वह जैसे नागमती के स्वागत में उसी का प्रिय बंगला गीत गाने लगी :

चाँपा फूल चाई ना, बेला फूल दाओ।
जाई दिले जूई दिले, कीआ फूल दाओ।
ए गाले ते चूमा खेले, ओ गाले ते खाओ।
चाँपा फूल चाई ना, बेला फूल दाओ।

नागमती बैठी हँसती रही। बोली, "तुम तो मेरा यह गीत बाहर के देशों में भी गा आई हो, सोना !"

सोना ने आँखें मटकाकर कहा, "अब फिर जाऊँगी तो गाऊँगी।"

"अब के जागरी को भी ले जाना। मृदंग तो बजा ही सकता है वह भी। तुम कहोगी तो गुरुचरण की मजाल नहीं कि इन्कार कर दे।"

बाहर से आकर सागर ने पूछा, "माँ, रूपम् कब आयेगा ?"

"जब उसे छुट्टियाँ होंगी।" सोना ने सागर को गले से लगाकर कहा, "परसों मैं उनके घर गयी तो वह कह रहा था—आण्टी, सागर को साथ क्यों न लाई ?"

सागर बोला, "हम तुमसे बात नहीं करेंगे, माँ ! हम दादी से बात करेंगे।"

दादी ने पुचकारा, "मास्टरजी मारते तो नहीं ?"

नागमती ने पूछा, "बड़े होकर क्या बनोगे, सागर ?"

दादी ने गम्भीर स्वर में कहा, "क्या तेरा अन्तराल जानता था कि बड़ा होकर क्या बनेगा ? कभी इतना ही बड़ा था नीलकण्ठ, जब वह मेरे आस-पास डोलता था। अलवीरा को पाकर वह मुझे भूल गया। उसके बाबा की अधूरी मूर्ति पर फूल चढ़ाते समय कई बार यह सोचकर मेरा दिल भर आता है।"

बाबा की वह अधूरी मूर्ति मूर्तिशाला के एक कोने में चौकी पर रखी थी। थोड़ी ख़ामोशी के बाद दादी बोली, "जब मैं मूर्तिशाला में जाने लगती हूँ, तो मुझे कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि नील के बाबा उस चौकी पर बैठे मुझे हाथ के संकेत से बुला रहे हैं।"

सोना और नागमती कुछ न बोलीं।

दादी ने पोपले मुँह से कहा, "अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान की ओर जाती हूँ, तो लगता है नील के बाबा दूर से चले आ रहे हैं। मेरे लिए तो वे आज भी जीवित हैं। मैं तो उन्हें हरदम देखती हूँ।"

नागमती ने कहा, "यह बात मूर्तिकार पर ही लागू नहीं होती। जब हम नहीं होंगे, तब हमारी कथा चलेगी।"

"मैंने तो भविष्य के बारे में सोचना ही छोड़ दिया है।" सोना चुप न रह सकी।

नागमती ने व्यंग्य किया, "तुम आँखें बन्द रखोगी, तो क्या भोर नहीं होगी ?"

दादी की आँखें भर आईं। एक-दो आँसू उसकी आँखों से टपक पड़े। बोली, "मैंने नील के बाबा को जाने कितनी बार बुरा-भला कहा था !"

सोना बोली, "आदमी की कदर तभी होती है, जब वह चला जाता है।"

दादी सोच-विचारकर बोली, "क्या अलवीरा ने नीलकण्ठ को हमेशा के लिए मुझसे छीन लिया ? मैंने भी उसके बाबा को छीन लिया था। जहाँ भी रहते हैं, खुश रहें। रूपम् को ही भेज देते चार दिन।"

मन्त्री महोदय के इन्तजार में तीन घण्टे देर से काम शुरू हुआ।

वैद्यजी ने गाँव वालों की ओर से मन्त्री महोदय को धन्यवाद दिया, तो उन्होंने कहा, "बहनो और भाइयो, धौली तो दुनिया के नक्शे पर उसी दिन आ गया था, जिस दिन सम्राट् अशोक ने अश्वत्थामा पर अपनी राजाज्ञा खुदवाई थी। आज स्वतन्त्र भारत में हम इस पक्की सड़क का समारम्भ करते हुए सम्राट् अशोक द्वारा अभिनन्दित अश्वत्थामा का पुनः अभिनन्दन कर रहे हैं···"

धूल उड़ाती हुई मन्त्री महोदय की कार चली गई, तो ठेकेदार को लगा, अब वह अपने काम का मालिक है।

सड़क का काम आगे बढ़ने लगा, जैसे लोक-कथा में राजकुमार का घोड़ा आँधी-पानी की परवाह न करते हुए आगे बढ़ता है। सड़क बनाने वाले मज़दूर जाने कैसे-कैसे बोल हवा में बिखेरते रहते। कोई कहता, "गाँठ में पैसा न हो, तो वही रथ-यात्रा है। अपना मर्द नहीं तो जूड़े पर फूल लगाने का क्या लाभ ?" कोई काला पहाड़ की कथा शुरू करते हुए पूछता, "काला पहाड़ की कथा सुनी है ? बताओ उसने कितनी मूर्तियों की नाक तोड़ डाली थी ?"

यह कथा सभी जानते थे कि काला पहाड़ मुसलमान बनने से पहले एक पण्डित था। उस पर किसी नवाबज़ादी का मन आ गया। पण्डितों ने विवाह की आज्ञा न दी। जाति-धर्म छोड़कर वह बदला लेने पर तुल गया।

वैद्यजी अपना काम छोड़कर सड़क के किनारे बैठे रहते। खाना भी वहीं आ जाता और काला पहाड़ की कथा सुनाने के लिए वह ठेकेदार से ज़िद करने लगते।

एक दिन सागर ने आकर कहा, "रूपम् की चिट्ठी आई है। लिखा है दादी से पूछो, सब मूर्तियाँ तो कटक के म्यूज़ियम को दे दीं, फिर चार-पाँच मूर्तियाँ अपने पास क्यों रख छोड़ी हैं?"

वैद्यजी ने समझाया, "बेटा, यह बात दादी से न कहना।"

"अच्छा बाबा! रूपक काका अपनी मूर्तियाँ म्यूज़ियम में क्यों नहीं भेजते?"

पास से रूपक ने हँसकर कहा, "बेटा, मेरी मूर्तियों में अभी ब्रह्मा ने प्राण नहीं डाले।"

"रूपक काका ठीक कहते हैं, बेटा!" वैद्यजी मुस्कराये, "लो दादी भी लाठी टेकती इधर ही आ रही हैं। जाओ बेटा, दौड़कर दादी को सहारा दो।"

सागर दौड़कर दादी के पास जा पहुँचा।

दादी पास आयी तो वैद्यजी बोले, "आराम से घर में बैठा करो, काकी!"

दादी बोली, "नीलकण्ठ धौली नहीं आता, तो मुझे कटक छोड़ आओ, बेटा! सोचा था, जीते-जी धौली नहीं छोड़ूँगी। अब तो छोड़ना पड़ गया।"

वैद्यजी बोले, "काकी, मेरे बैठे यह नहीं हो सकता।"

"अच्छा बेटा, एक चिट्ठी और लिख दो नीलकण्ठ को।" कहते हुए दादी लाठी टेकती हुई वापस चली गई। और उसकी लाठी की आवाज़ सड़क बनाने वाले मज़दूरों की आवाज़ में डूब गई।

● ● ●

पक्की सड़क से धौली की रौनक़ बढ़ने लगी। अब यात्री अधिक संख्या में अश्वत्थामा देखने आने लगे। और इसी हिसाब से बाहर के समाचार भी यहाँ अधिक पहुँचने लगे। हर समाचार की मानो यही टेक हो—यह तो आगे जाने का मार्ग है न ! ये समाचार युग-युग की कथा में समाहित होते रहते।

दादी का दिल रूपम् के लिए तरसता रहता। सागर आकर बार-बार पूछता, "दादी, रूपम् कब आ रहा है ?"

सागर आँगन में उछल-कूद मचा रहा होता, तो दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर बैठी रहती। उसे लगता, धरती काँप रही है। वह सोचती, रूपम् आये और वह भी उछल-कूद मचाए तो देखूँ कि तब भी धरती इसी तरह काँप उठती है या नहीं। वह बार-बार सागर को नाचने के लिए कहती, जैसे वह भी रूपम् का ही दूसरा रूप हो। दोनों हाथ धरती पर टेके रखती, जैसे धरती का कम्पन युग-युग की कथा कह रहा हो।

कोई समाचार गंजेड़ी की लाल आँखों की तरह लगता, तो कोई मन्दिर के घण्टे की तरह बज उठता। दादी दोनों हाथ धरती पर रखे बैठी रहती और सोचती रहती, 'किस-किस युग की रास-लीला ! नटखट वाणी ! अधूरी मूर्ति !' उदास पगली की तरह दादी यही सोचती रहती। अनेक समाचार आपस में टकरा जाते। धारावाही कथा कभी न रुकती। धूप पाथुरिया गली से खिसक जाती। कथा फिर भी चलती रहती। दादी सोचती, 'कथा की अमरावती में भी कितनी वेदना है ! राजाओं की जय-पराजय की कथा। आस-निरास की आँख-मिचौनी ! स्वर्ग का पथ क्या इसी पाथुरिया गली से होकर जाता है ? नील के बाबा कहा करते थे—'कथा का नशा ही सबसे बड़ा नशा है।'

"सात समुद्र तेरह नदियाँ पर से आई थी अलवीरा। आकर यहाँ की बन गई।" यह बात धौली में किसी-न-किसी के मुँह से अवश्य सुनायी

दे जाती।

सागर को पास बिठाकर दादी वह कथा कहने लगती, "राजपुत्र को कोई न रोक सका। वह उस द्वीप में जा पहुँचा, जहाँ दुर्जय दैत्य ने उस राज-कन्या को वन्दी बना रखा था। जंगल में खड़ा राजकुमार सोच रहा था—मैं दैत्यपुरी से उस राज-कन्या को अवश्य छुड़ाकर लाऊँगा।...." कभी दादी की कथा में बच्चों के उस खेल की कथा उभरकर सामने आ जाती :

'किसकी किसके साथ लड़ाई ?'....'उड़ीसा के साथ अशोक की।'... 'किसकी जीत, किसकी हार ?'....'उड़ीसा की जीत, अशोक की हार।'...

सागर कहता, "पर मास्टरजी तो कहते हैं, उड़ीसा की हार हुई थी, दादी !"

दादी हँसकर कहती, "बच्चों के खेल का कथा अपनी जगह सच है, बेटा !"

और फिर यह प्रसंग बीच में छोड़कर सागर कहता, "रूपम् कब आयेगा, दादी ! हम उड़ीसा और अशोक का खेल खेलेंगे।"

दादी दोनों हाथ धरती पर रखे बैठी रहती, जैसे धरती के कम्पन में कोई अशोक-कालीन कथा सुनने की कोशिश कर रही हो।

पाथुरिया गली के बीच से जाने वाली पक्की सड़क पर चलने वालों की आवाज़ें कुछ-कुछ बदल गई थीं। उन बदली हुई आवाज़ों में भी दादी धरती की कथा सुनने की चेष्टा में लीन रहती, जब वह लाठी टेकती हुई सड़क के किनारे-किनारे चलकर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान की तरफ़ चल पड़ती या वैद्यजी की दुकान के सामने से होती हुई त्रिमूर्ति के सामने जा खड़ी होती।

कभी दादी सोना से कहती, "अपना वह प्रिय बंगला गीत गाकर सुनाओ, सोना ! 'माटिर प्रदीपखानि' वाला गीत।" और सोना गाने लगती :

माटिर प्रदीपखानी आछे माटिर घरेर कोले,
सन्ध्या तारा ताकाय तारी आलो देखबे ब'ले ।
सेई आलोटि निमेष-हत प्रियार व्याकुल चाओआर मतो,
सेई आलोटि मायेर प्राणेर भयेर मतो दोले ।
सेई आलोटि नेवे ज्वले श्यामल धरार हृदय तले,
सेई आलोटि चपल हाओआय व्यथाय काँपे पले-पले ।
नामल सन्ध्यातारार वाणी आकाश हते आशिस आनि,
अमर शिखा आकुल होलो मर्त शिखाय उठते ज्वले ।

[माटी का दीया माटी के घर की गोद में है । सन्ध्या-तारा ताक रहा है—उसका आलोक देखेगा । वही आलोक प्रिया की व्याकुल दृष्टि के समान । वही आलोक माँ के भय के समान डोलता है । वही आलोक श्यामल धरती के हृदय-तल में जलता-बुझता है । वही आलोक चपल हवा में व्यथा से पल-पल काँपता है । सन्ध्या-तारा की वाणी आकाश की आशिष लेकर उतरी । अमर शिखा आकुल हो उठी, मर्त्य शिखा में जल उठने को ।]

घर में दीया जलाते समय इस गीत के भाव दादी को छू-छू जाते । दोनों हाथ धरती पर टेककर वह फिर धरती का कम्पन सुनने की कोशिश करने लगती ।

एक दिन जागरी कटक से लौटा तो वैद्यजी के लिए एक विचित्र समाचार लाया कि कोइली हरिपद को छोड़कर कलकत्ते चली गई। पर जब जागरी ने बताया कि वह अपने पिता के पास नहीं गई बल्कि अन्नदा बाबू के पास गई है, तो वैद्यजी भौंचक्के-से बैठे रहे, जैसे उन्हें विश्वास न हो रहा हो।

"यह कैसे हो सकता है?" वैद्यजी ने जागरी की आँखों में झाँककर कहा।

"अनहोनी बात भी घट जाती है। मैं तो स्वयं नहीं समझ पा रहा। पर ख़बर सच्ची है, ज़रा भी झूठ नहीं।"

"अच्छा तो यह बात है!" वैद्यजी सोच-सोचकर बोले। और वे भीतर से वह पुस्तक उठा लाए जिसमें कोइली की 'कोणार्क' शीर्षक कविता छपी थी। पुस्तक खोलकर बोले, "इसकी ख़बर तो कोइली ने पहले ही दे दी थी। हम लोगों के समझने में ही भूल हुई।"

जागरी ने कहा, "इस कविता में तो कोई ख़बर नहीं हो सकती।"

"तो अब इस दृष्टि से यह कविता सुनो।" और वैद्यजी वह कविता उच्च स्वर से पढ़कर सुनाने लगे :

कल्पना की झिलमिली के पार,
प्यास पत्थर की हुई साकार,
खुल गये हैं रूप-लीला की कथा के द्वार।

तिमिर-युग का छोड़कर सपना,
धड़कते रेख-मुकुलित प्राण
केतकी के, दिक्-विदिक् व्यापें सुरभि के भार।

देवता का रथ गगन पर,
स्नेह-चुम्बित प्रात-वेला,
अब कहो यह अग्नि-पथ भी है तुम्हें स्वीकार ?

धन्य आदिम काल का रवि उग रहा,
धन्य पत्थर की शिराएँ,
रक्त-कण में भी वही क्या आदि-तप संचार ?

किस महूरत की प्रतीक्षा में खड़े,
देव-रथ के चक्र छबि-अंकित जड़े ?
साँस की मनुहार न्यौछावर करूँ सौ बार !

सर्व-ग्रासी काल मुँह बाये खड़ा है द्वार,
चुक न जाये मिलन-वेला,
पुण्य-पावन क्वार।

आह पत्थर मूक हैं !
हैं स्तब्ध बन्दनवार !
ज्ञान से भी है चिरन्तन उर्वशी का प्यार !

वैद्यजी बार-बार कहते रहे कि इस कविता में कोइली ने मन की बात पहले ही कह दी थी। पर जागरी इस विवाद में न पड़कर कोइली को कलकत्ते से वापस लाकर हरिपद के उजड़ते घर को बसाने का उपाय ढूंढने लगा।

कोइली को हरिपद के साथ ऐसा क्या कष्ट था, जागरी यह नहीं समझ पा रहा था। अब वह दादी के पास जाकर कैसे यह दुःख-भरी ख़बर सुनाए। यह तो बड़ी विकट समस्या थी। उसने कहा, "यह ख़बर दादी से छिपाई भी नहीं जा सकती! ख़बर तो पहुँचकर रहती है।"

"अपनी कथा को यह मोड़ देने की कोइली को ऐसी क्या चिन्ता थी ?" वैद्यजी ने सोच-सोचकर पूछा। पर जागरी के पास इसका कोई उत्तर न था।

वैद्यजी ने कहा, "कोई नहीं जानता कि किस समय कथा किधर को मुड़ जाएगी।"

कोइली की कथा का यह मोड़ बहुत रहस्यमय था। जागरी को याद आया कि अपनी एक कविता में कोइली ने लिखा था—हमारी कथा तो मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा होने की कथा है। तो क्या इस तरह पति का घर छोड़कर ही वह अपनी मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा कर पाएगी ? जागरी मन मारे बैठा रहा। वैद्यजी कोइली की एक कविता की ये पंक्तियाँ पढ़-कर सुनाने लगे :

हाय मीठे चुम्बनों की यह कथा
ढल गई आलिंगनों में,
गीत ममता ने लिखा।

रूपसी के ओंठ क्यों पथरा गए ?
चाँद पीछे से उगा,
स्नेह पत्थर ने ठगा।

गन्ध बोली छन्द में—
कोख मेरी कब भरी ?
मुझसे अच्छी है शिला ।

बाल-पगध्वनियाँ न जागीं
पुष्प-आँगन में अभी ।
घर की देहरी है अनमनी ।

छन्द नीरव क्यों रहा ?
गीत की भाषा उदास !
कोख की कविता निरास ।

जागरी बैठा सोचता रहा कि पत्नी ने पति को क्यों छोड़ दिया । क्या कोइली अब लौटकर नहीं आयेगी ? उसे अन्नदा बाबू से ऐसी आशा नहीं थी कि वे किसी का घर उजाड़ना पसन्द करेंगे ।

वैद्यजी का विचार था कि कोइली कुछ दिन बाद लौट आएगी । यह तो वे सोच ही नहीं सकते थे कि अन्नदा बाबू जैसे सज्जन के हाथों हरिपद का घर उजड़ जाएगा ।

"तो मैं दादी को यह ख़बर सुना दूँ ?"

"तुम न सुनाओगे तो कोई और सुना देगा ।"

"दादी को कितना दुःख होगा !"

"हम क्या कर सकते हैं ?"

"आज बाबा होते तो उन्हें कितना दुःख होता !"

"सचमुच यह ख़बर नील की दादी को तेज़ हवा की तरह झकझोर जाएगी । पर इसका कोई उपाय नहीं ।"

दादी ने यह ख़बर सुनी तो उसे बहुत दुःख हुआ। पड़ोसिनें आकर मुँह-आई बातों से सहानुभूति जताने लगीं, जैसे वे अंगारों पर चलकर आई हों। यह ख़बर जैसे चट्टानों को चीरती आई हो। दादी का बस चलता तो अपनी आँखें गरम सलाखों से दाग़ लेती।

दादी ज़िद करने लगी, "मुझे कलकत्ते ले चलो।" पर वैद्यजी बराबर यही कहते रहे, "रेल की यात्रा में तुम्हें बहुत कष्ट होगा, काकी! कोइली कोई बच्ची तो नहीं है! हरिपद से पूछकर गई होगी। तुम घबराओ मत। हम पता चलायेंगे। कलकत्ते जाना होगा तो नीलकण्ठ जा सकता है।"

"नीलकण्ठ नहीं जायेगा, बेटा!"

"तुम ऐसा क्यों सोचती हो, काकी?"

"सोचूँ कैसे नहीं? मेरा मन यही कहता है, बेटा!"

"नहीं काकी, जाना ही पड़ा तो नीलकण्ठ ज़रूर जायेगा।"

"मैं क्यों न जाकर कोइली को समझाऊँ?"

और फिर दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर बैठ गई, जैसे धरती का कम्पन सुनकर इतनी दूर से कलकत्ते में बैठी कोइली की बात समझने की कोशिश कर रही हो। दादी मुँह से कुछ न बोली, जैसे वह सोच

रही हो कि सृष्टि के आरम्भ में केवल शब्द था। जैसे आज भी वही शब्द सब-की-सब शंकाओं पर हावी हो। जैसे दादी सोच रही हो कि शब्द ही हमारा आदि-मित्र है और वही आदि-शत्रु। पालने की लोरी उसी शब्द की आशिष लिये रहती थी। दोनों हाथ धरती पर टेककर बैठी दादी जैसे आज भी उसी लोरी का ध्यान कर रही हो।

वैद्यजी का फ़ैसला था कि दादी को कलकत्ते नहीं जाने देंगे।

• • •

धौली में जिसने भी यह ख़बर सुनी, वही दुःख से हाथ मलने लगा। गाँव-मुखिया बंसी आकर बोला, "दादी, चल मैं तुझे कलकत्ते ले चलूँ।"

गगन महान्ती की भी यही राय थी कि नील की दादी को कलकत्ते हो आना चाहिए। पर गुरुचरण और जागरी दोनों वैद्यजी की राय पर चलने वाले थे। वे दादी को समझाते रहे कि कलकत्ते जाना व्यर्थ है। उनका विचार था कि इस समस्या के सुलझने में जितना समय लगेगा, उतने दिन दादी का कलकत्ते में रहना ठीक न होगा। साथ ही वैद्यजी की यह दलील भी उन्हें ज़ोरदार प्रतीत हो रही थी कि जब कोइली के माता-पिता कलकत्ते में मौजूद हैं तो हमें इतना घबराने की क्या आवश्यकता है।

दादी कुछ भी समझ नहीं पा रही थी कि क्या करे। सोना और नागमती की राय थी कि उसे कलकत्ते जाना चाहिए।

दादी के पास बैठकर वैद्यजी समझाने लगते, "तुम इस दुःख को भूल जाओ, काकी! मैं कटक जाकर हरिपद से मिल आया हूँ। वह कह रहा था कि उसके घर के द्वार सदा कोइली के लिए खुले रहेंगे।"

आखिर वैद्यजी की राय से गुरुचरण और जागरी मिलकर कलकत्ते पहुँचे। उन्हें पूरी आशा थी कि कोइली मान जाएगी। पर तीसरे दिन वे असफल ही वहाँ से लौट आये।

कोइली ने वापस आने से साफ़ इन्कार कर दिया।

वैद्यजी अब भी यही कह रहे थे, "सारा मामला समय पाकर ठीक हो जाएगा।"

दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर धरती का कम्पन सुनने की कोशिश करने लगती।

वैद्यजी ज़ोर देकर कहते, "इतनी कविता लिखती है कोइली। उसे यह भूल नहीं करनी चाहिए थी।"

"भाड़ में जाये कविता !" दादी हाथ उठाकर बड़े दुःख-भरे स्वर में कहती।

सागर गुरुचरण को घोड़ा बनाकर आँगन में 'चल मेरे घोड़े !' की रट लगाने लगता तो सोना और जागरी हँस पड़ते। यह देखकर नागमती को भी हँसी आ जाती।

दादी एकदम उदास हो जाती, जैसे वह अन्तिम साँसें गिन रही हो।

उसका चिन्ताशील चेहरा कुछ-कुछ पथरा चला था।

गुरुचरण बैठकर सागर को सात सागर तेरह नदियाँ पार जाने वाले राजकुमार की कथा सुनाने लगता। दादी बार-बार टोकती, "यह कथा बन्द कर दो।" पर कथा तो किसी के रोके रुक नहीं सकती थी—एक कभी समाप्त न होने वाली कथा। महानदी से भी लम्बी। समुद्र से भी गहरी। कथा के अपने प्रकाश-स्तम्भ हैं। कथा की महिमा युग-युग से चली आई है। भाग्यहीन का सहारा है कथा, भक्त की निष्ठा, अलसाये की नींद, अज्ञानी का ज्ञान। दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर धरती का कम्पन सुनती हुई कहती, "यह कैसी कथा है जो हमें भीतर-ही-भीतर कचोट रही है!"

"काकी, धीरज रखो!" वैद्यजी समझाते, "कोइली वापस आ जाएगी अपने ठिकाने। वह बच्ची तो नहीं।"

दादी कहती, "अब वह नहीं आयेगी। आना होता तो जागरी और गुरुचरण के साथ आ न जाती। मैं कहती हूँ, मेरे जीवन का दरवाज़ा बन्द हो जाए। मेरी दृष्टि चली जाए। मेरी स्मृति चुक जाए।"

"अभी तो हमें तुम्हारी ज़रूरत है, काकी!"

"यह दुःख देखने से पहले ही मैं क्यों न मर गई? मुझे डर लगता है, बेटा! कहीं मैं पागल न हो जाऊँ।"

"भगवान् का नाम लो, काकी! हम तुम्हें पागल नहीं होने देंगे।"

• • •

अपनी दुकान पर बैठकर वैद्यजी ने जागरी और गुरुचरण से पूछा, "तो कोइली बिलकुल न मानी?"

"मानती तो आ न जाती।" उन दोनों ने एक स्वर होकर उत्तर दिया।

"आखिर उसकी क्या दलील थी?"

जागरी बोला, "वह कह रही थी—अब मैं कटक में पैर नहीं रखूँगी। हरिपद के पास इतना अवकाश ही नहीं कि कभी मेरी कविता में रस ले सके।"

"सब पत्नियाँ कवयित्रियाँ तो नहीं होतीं। क्या यह काफ़ी नहीं कि उसे कविता का अन्नदा बाबू-जैसा प्रशंसक मिल गया?"

"वह बोली, अब मैं अन्नदा बाबू के साथ ही जीऊँगी, उन्हीं के साथ मरूँगी।"

"अन्नदा बाबू भी कुछ बोले?"

"वे तो अन्त तक समझाते रहे कि उसे कटक चले जाना चाहिए।"

"तो फिर वह क्यों न आई? अन्नदा बाबू को चाहिए था कि उसे बाँह से पकड़कर कहते—वहीं जाकर रहो जहाँ तुम्हारा घर है।"

"ऐसा करने को तो वे तैयार नहीं। उनका कहना है, पहले भी तो अनेक बार कोइली मेरे पास आकर ठहरी है। अब आ गई तो क्या हो गया? अन्नदा बाबू ने हरिपद को जो चिट्ठी लिखी, उसमें साफ़-साफ़ लिख दिया था कि वे चाहें तो कलकत्ते आकर रजामन्दी के साथ कोइली को मनाकर ले जायें।"

"तब तो कोइली आ जाएगी।"

● ● ●

दादी ने कटक से हरिपद को बुलवाकर बहुत समझाया कि वह कलकत्ते जाकर कोइली को ले आए। पर वह अन्त तक यही कहता रहा, "उसे आना होगा तो स्वयं ही आयेगी। मैं बिलकुल इस काम के लिए कलकत्ते जाने को तैयार नहीं।"

हरिपद कुछ समय धौली में ठहरकर वापस चला गया। दादी यह न समझ सकी कि दोनों में किसका दोष अधिक है।

हवा उदास थी। धूप उदास थी। फूल उदास थे।

रूपक मूर्तिशाला में बैठा मूर्ति गढ़ता रहता, जैसे उसके काम में किसी भी ख़बर से बाधा न पड़ सकती हो। जैसे वह हर कथा की थाह ले चुका हो।

जागरी ने आकर कहा, "रूपक, तुम कोशिश कर देखो। शायद कोइली तुम्हारे साथ आ जाए। नहीं तो तुम हरिपद बाबू को मनाओ, वे जाकर उसे ले आयें।"

रूपक ने कहा, "तुम तो कहा करते हो, काका कि कथा समुद्र से भी गहरी होती है। मैं कहता हूँ, कथा में गहराई आने दो। कोइली एक दिन खुद ही आ जाएगी।"

"तुम क्यों नहीं मान जाते ? दो दिन मूर्ति नहीं बनाओगे तो कौन-सा अन्तर पड़ जाएगा ?"

"मैं अपना काम नहीं छोड़ सकता।"

"दो दिन की मज़दूरी मुझसे ले लो।"

"मैं यह सौदा नहीं करना चाहता।"

"इस बहाने कलकत्ते की सैर कर आओगे।"

"मुझे नहीं चाहिए कलकत्ते की सैर।"

"बाबा कहा करते थे, पत्थरों को गढ़ने वाले पाथुरिया इन्सानों को भी गढ़ सकते हैं।"

"मैं वैसा पाथुरिया नहीं हूँ।"

"तुम पत्थर के छन्द उगा सकते हो तो यह मामूली-सा काम क्यों नहीं कर सकते ? तुम यह काम कर दिखाओ तो तुम्हारा नाम पाथुरिया गली के इतिहास में चढ़ जाएगा।"

रूपक ने कहा, "गुरुदेव कहा करते थे, कितने राजवंश गिर गए, जिनके सिक्के धरती के नीचे गड़े हुए हैं। हमारी इस धरती पर अशोक ने चढ़ाई की थी एक दिन। उसके घोड़ों की टापों की आवाज़ किसे याद है आज ? पर पत्थर आज भी पाथुरिया को बधाई देते हैं। गुरुदेव कहा करते थे, अतीत के कन्धे पर चढ़कर कथा हँसती है। कवियों को

भाट बनते देखकर कथाकार दाँत पीसता है ।"

"बात तो कोइली की हो रही थी ।"

"शायद कोइली ने ठीक क़दम उठाया हो ।"

"तुम इसे ठीक कहते हो ?"

"मेरी बात ठीक है या नहीं यह तो कथा बताएगी । मैंने उस दिन वैद्यजी से खबर-कागज़ में छपा हुआ एक लेख सुना था ।"

"उसमें क्या लिखा था ?"

"उसमें लिखा था कि अब ऐसा कानून बन गया कि पति-पत्नी में से कोई भी चाहे तो ठीक कारण होने पर दूसरे को छोड़ सकता है ।"

"तुम्हारा मतलब है, कोइली के पास ठीक कारण होंगे ?"

"हो सकता है ।"

"हम तो ऐसा नहीं मानते ।"

"मुझे भी अपनी राय रखने की आज़ादी है ।"

"यह अच्छी आज़ादी है !"

"यही तो आज़ादी है, काका ! अपनी आज़ादी तो हर कोई चाहता है, दूसरे की आज़ादी किसी को भी अच्छी नहीं लगती ।"

पास ही दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर बैठी थी, जैसे वह धरती का कम्पन सुनकर कथा का रास्ता ढूँढ रही हो ।

रूपक बैठा मूर्ति गढ़ता रहा ।

सागर आकर रूपक की पीठ पर सवार हो गया ।

"हम तुम्हें घोड़ा बनायेंगे ।"

"तो बनाओ बड़े शौक से ।"

वही रूपक, जो अब तक काम छोड़ने को तैयार नहीं था, सागर के लिए घोड़ा बनकर इधर-उधर फुदकने लगा ।

दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर धरती का कम्पन सुनते हुए न जाने किस अपार विश्वास के साथ बोली, "धरती बोल रही है, जागरी बेटा ! कोइली लौट आयेगी ।"

अलवीरा के कॉलेज में छुट्टियाँ हुईं तो नीलकण्ठ ने बाबा की विशाल-काय मूर्ति बीच में ही छोड़ दी ।

नीलकण्ठ से कहीं अधिक रूपम् ही धौली जाकर दादी से मिलने को उत्सुक था। नीलकण्ठ ने दादी से वादा किया था कि अब की छुट्टियों में ज़रूर धौली आयेंगे । सवेरे-सवेरे पति-पत्नी में बहस चल पड़ी। अलवीरा कहती जा रही थी, "रूपम् मूर्तिकार नहीं बनेगा ।" और जैसे उसे चिढ़ाने को नीलकण्ठ कहता गया, "रूपम् ज़रूर मूर्तिकार बनेगा ।"

रूपम् तालियाँ बजा रहा था । नीलकण्ठ ने डिब्बे की खिड़की से बाहर देखते हुए कहा, "अब तो कटक में मन नहीं लगता । धौली की याद बहुत सताती है ।"

गाड़ी भुवनेश्वर के स्टेशन पर पहुँची, तो डिब्बे की खिड़की से जागरी और गुरुचरण नजर आ गए । "बोलो, अंकल जागरी गुड-मार्निंग ! अंकल गुरुचरण गुड-मार्निंग !" अलवीरा ने रूपम् को समझाया ।

अगले ही क्षण रूपम् खिड़की के रास्ते अंकल जागरी के कन्धे पर जा बैठा और जोर से तालियाँ बजाने लगा ।

बैलगाड़ी मिलते देर न लगी, और वे पुराने भुवनेश्वर से होते हुए

दया नदी के पुल पर जा पहुँचे, जहाँ धौली की पक्की सड़क सूरज की किरणों में मुस्करा रही थी। नीलकण्ठ ने कहा, "अपने गाँव-जैसा कोई गाँव नहीं हो सकता।"

पानी पर तैरती हुई नाव की तरह बैलगाड़ी नई सड़क पर आगे-ही-आगे बढ़ती चली गई। वैद्यजी की दुकान के सामने गाड़ी रुकवाकर नीलकण्ठ नीचे उतरा और बोला, "वैद्यजी, प्रणाम !"

"जाकर दादी की आँखों में सुधा बरसाओ, बेटा !" वैद्यजी खुशी से उछल पड़े। उन्होंने उठकर गाड़ी में बैठी अलवीरा के सिर पर प्यार से हाथ फेरा। रूपम् को गोद में लेकर प्यार किया।

नीलकण्ठ बोला, "वैद्यजी, कटक में धौली की याद ऐसे आती है जैसे कमल खिलता है।"

बैलगाड़ी मूर्तिशाला के सामने जाकर रुकी तो रूपक ने बाहर आकर नीलकण्ठ और अलवीरा का अभिवादन किया। उसने रूपम् को उठाकर कहा, "हमारे तो नाम भी मिलते हैं। तुम रूपम्, मैं रूपक। क्या डैडी ने तुम्हें पत्थर पर छेनी चलानी सिखाई है ?"

दादी को खबर मिली तो उसके पैर जैसे खुशी से ज़मीन पर न पड़ते हों। बोली, "मेरे तो पाप कट गए बेटा, जो तुम आ गए।"

नीलकण्ठ और अलवीरा ने दादी के पैर छूकर प्रणाम किया।

सोना बोली, "मेरे लिए तो जैसे स्वर्ग का द्वार खुल गया।"

सागर को रूपम् मिल गया, जैसे दो सपने जाग उठे हों। सागर बोला, "अब हम तुम्हें नहीं जाने देंगे।"

खाने से फुरसत पाकर सागर और रूपम् गाँव के बच्चों के साथ अश्वत्थामा की ओर निकल गए।

अलवीरा और सोना को जैसे अपनी कहानियों से फुरसत न हो। वे दादी के दोनों तरफ बैठी थीं। लगता था, उन्हें आज बहुत-कुछ कहना है।

रूपक हर रोज़ की तरह मूर्तिशाला में अपने अड्डे पर बैठा मूर्ति

गढ़ता रहा।

नीलकण्ठ, जागरी और गुरुचरण मिलकर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान के पास गये, और बिशु तथा उसकी कन्ध प्रेयसी की कथा ले बैठे।

नीलकण्ठ बोला, "मैं अपनी छेनी किसी बिशु के हाथ में भी नहीं दे सकता, क्योंकि मुझे तो अपनी ही उर्वशी की मूर्ति गढ़नी है, अपना ही दर्द बताना है।"

फिर वे त्रिमूर्ति के पास पहुँचे, तो अपनी रचना पर मुग्ध होकर नीलकण्ठ बोला, "बरसों बाद एक महान् मूर्तिकार जन्म लेता है, जब युग-युग के संचित संस्कारों को भाषा मिलती है। मूर्तिकार से कहीं अधिक मूर्ति ही महान् होती है। भुवनेश्वर और कोणार्क के मूर्तिकारों ने मूर्ति के नीचे अपना नाम लिखने की बात कभी सोची भी न थी।"

वैद्यजी की दुकान पर चाय का दौर चला। बाबा का नाम बार-बार सामने आने लगा। वैद्यजी धीरे-धीरे बात करते, जैसे पत्थरों पर जमी हुई काई के कारण धीरे-धीरे चलने पर मजबूर हों। नीलकण्ठ को वे दिन याद आ गए, जब बाबा के अड्डे पर वैद्यजी और गगन महान्ती बड़ी तेज़ आवाज़ से बहस किया करते थे। मायाधर अब नहीं रहे। वैद्यजी और गगन महान्ती भी उठ जाएँगे; और एक दिन दादी भी नहीं होगी।

सामने पीपल के पत्ते डोल रहे थे। वैद्यजी जैसे नई सड़क के कारण सरकार की प्रशंसा करने पर मजबूर हों। पर गगन महान्ती बढ़ती हुई मँहगाई की शिकायत करने से कब चूकने वाले थे।

आँखों-ही-आँखों में नीलकण्ठ, जागरी और गुरुचरण ने यहाँ से उठ चलने की सोची और वे वहाँ से उठकर मूर्तिशाला की बगिया में आ बैठे, जहाँ घने वृक्षों की छाया में दादी, नागमती, सोना और अलबीरा की गोष्ठी चल रही थी। तीनों मित्र घास पर बिछी चटाइयों पर आ बैठे। दादी तकिये के सहारे चौकी पर बैठी थी।

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "सात मूर्तियाँ हो गईं। अपनी-अपनी कथा कहो, मूर्तियो! और मेरे साथ गाँजे का दम लगाओ।"

● ● ●

सबकी निगाह बगिया की दीवार पर टिक गई, जहाँ कहीं-कहीं पुराने विचारों की तरह काई जमी हुई थी। दीवार के एक सूराख में एक चिड़िया ने घोंसला बना रखा था। चिड़िया घोंसले से निकलकर अपनी बोली में जाने क्या कहने लगी।

दादी ने धरती पर दोनों हाथ टेककर कहा, "बोल, धरती माता, कोइली अपने घर लौट आयेगी या नहीं ?"

घोंसले से निकलकर चिड़िया न जाने क्या बोल उठी। दादी ने कहा, "बोल चिड़िया, कोइली घर लौट आयेगी या नहीं ?" उत्तर में चिड़िया ने 'हाँ' कहा या 'नहीं', इसका कुछ पता न चल पाया।

नीलकण्ठ ने कहा, "कोइली अब नहीं आयेगी, दादी ! उसके संस्कार उसे घर से दूर ले गए।"

दादी ने दोबारा धरती पर दोनों हाथ टेककर कहा, "बोल धरती माता, कोइली लौट आयेगी या नहीं ?" और फिर दादी ने धरती पर कान लगाकर कहा, "धरती माता, सच-सच बता दे।" और फिर थोड़ी खामोशी के बाद दादी बोला, "धरती माता ने मुझे बता दिया। कोइली लौट आयेगी।"

फिर दादी सब शिकायतें भूल गई। उसका झुर्रियों वाला चेहरा खिल गया। बोली, "बेटा नीलकण्ठ, जब तुम्हारी याद आती है, तो कुछ दिन और जीने को मन होता है। पर मैं कितने दिन बैठी रहूँगी ?"

गुरुचरण ने हँसकर कहा, "तुम क्या सोच रहे हो, जागरी ?"

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "बाबा कहा करते थे, हमारी कथा हमेशा परछाईं के समान हमारे साथ-साथ चलती है।"

गुरुचरण ने अविश्वास के स्वर में कहा, "बाबा तो चले गए, अब तुम जो चाहो उनके मुँह से कहलवाते चलो, प्यारे !"

"तो मैं कुछ झूठ कह रहा हूँ !" जागरी थोड़ा गरम हो गया।

"लड़ते क्यों हो ?" नीलकण्ठ ने समझाया।

गुरुचरण ने कहा, "बाबा एक कथा सुनाया करते थे। उनका-सा स्वर और लहज़ा तो मैं कहाँ से लाऊँ ! बात बस इतनी-सी है कि ब्रह्मा ने अधिक सृष्टि रचनी चाही, क्योंकि उनकी अपनी रचना काफ़ी नहीं थी। ब्रह्मा ने यही फैसला किया कि पत्थर के इन्सान गढ़कर उनमें प्राण डाले जाएँ, और प्राण डालना ब्रह्मा के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं था। फिर कथा में एक मोड़ आता है, जब ब्रह्मा ने पत्थर के आदमी गढ़-कर उनसे कहा—तुम भी मूर्तियाँ गढ़ो, प्राण मैं डालता रहूँगा।…फिर एक और मोड़ आता है—"

"वही न, जब ब्रह्मा के शिष्यों ने अपने काम के दाम माँगे।" जागरी ने शह दी, "क्यों गुरुचरण ?"

"ब्रह्मा ने बात टालनी चाही।" गुरुचरण कहता चला गया, "और फिर ब्रह्मा के उन शिष्यों ने जल-भुनकर ख़राब मूर्तियाँ बनानी शुरू कर दीं। ब्रह्मा उनमें बराबर प्राण डालते रहे। यहाँ एक और मोड़ आता है—"

"यही न कि अन्धे, लूले-लंगड़े, कुरूप और बिना दिमाग़ के लोग, जो ब्रह्मा के असन्तुष्ट शिष्यों की रचना हैं, ब्रह्मा से पूछते हैं—हमें बताया जाए, हमारा क्या अपराध है, जिसके लिए हमें असहाय और कुरूप होकर इतना गम उठाना पड़ रहा है ?" अपनी बात ख़त्म करके जागरी ने गाँजे का दम लगाया।

अलबीरा ने हँसकर कहा, "तुम कथा में इतनी बड़ी बात पैदा कर सकते हो, तो क्या तुम गाँजा नहीं छोड़ सकते, जागरी ?"

"जय श्री एक सौ आठ गाँजा भगवान् !" जागरी ने हँसकर कहा, "जय महादेव, जय बम भोला !"

नागमती ने चुटकी ली, "इसे तो सोना ने ही सिर चढ़ा रखा है, नहीं तो यह कभी का गाँजे से छुट्टी पा चुका होता।"

"मैं कब चाहती हूँ कि यह गाँजा पिये ?" सोना मुस्करायी।

दिन का काम समाप्त करके रूपक बाहर जाने लगा तो उसे रोककर

दादी नीलकण्ठ से बोली, "तुम्हारे पीछे रूपक ही मेरा ध्यान रखता है बेटा ! कहता है, पाथुरिया गली में ही जीऊँगा और यहीं मरूँगा।"

"मेरी बहुत सी मूर्तियों में धौली का प्रेम साँस लेता है, दादी !" रूपक ने अपनी बात छेड़ दी, "मैं ब्रह्मा का असन्तुष्ट शिष्य नहीं हूँ।"

जागरी ने थाप लगाई, "गाँजा पीकर मूर्ति गढ़ा करो रूपक, तो जल्दी काम हो जाया करे।"

अलवीरा ने नीलकण्ठ की ओर देखकर कहा, "मुझे तो लगता है, मैंने पत्थर के आदमी से अपना आँचल जोड़ लिया। तुम्हें छूती हूँ नील, तो लगता है पत्थर के आदमी को छू रही हूँ। तुम्हारे पास मेरे लिए क्या कभी समय रहा है ?"

"मेरा काम मुझे हमेशा घेरे रहता है, डार्लिंग !" नीलकण्ठ ने सफ़ाई दी, "मैं अपने पीछे हज़ारों सफल और असफल, सन्तुष्ट और असन्तुष्ट मूर्तिकारों की प्रेरणा लेकर चल रहा हूँ। पीछे अतीत है, आगे भविष्य, यह मार्ग कब पूरा हुआ ?"

"इसीलिए तो मैं कहती हूँ, रूपम् को मैं मूर्तिकार नहीं बनने दूँगी, जिससे उसकी उर्वशी को मेरी तरह लम्बी शिकायतें न करनी पड़ें।"

नीलकण्ठ बोला, "एक बात सुनोगी, अलवीरा ! जब भगवान् बुद्ध का अन्त-काल समीप आया तो वे उठकर एक गाछ के सहारे खड़े हो गए। गगन में पूनम का चाँद उग आया था। उनका उदास चेहरा देखकर उनका महाशिष्य आनन्द रोने लगा। भगवान् बुद्ध भी रो दिए। आनन्द ने कहा—मेरे लिए क्या आज्ञा है ? भगवान् ने कहा—अपना दीया स्वयं जलाओ। सो अलवीरा, मैं कहता हूँ, हमारा रूपम् भी स्वयं अपना दीया जलायेगा।"

दादी मूर्तिशाला के द्वार की तरफ़ देखकर हड़बड़ा-सी उठी, "नीलकण्ठ बेटा, तुम्हारे बाबा आ गए !"

"दादी, अब बाबा नहीं आयेंगे।" जागरी ने गम्भीर मुद्रा में कहा, "गये सो गये।"

"दादी की यह बात हमारी समझ से परे है कि बाबा आ गए।" अलवीरा मुस्करायी, "मुझे लन्दन की उस बुढ़िया की याद आ रही है, जिसने शेक्सपीयर का 'हेमलेट' देखकर कहा था—इसमें कौनसा कमाल है ? ऐसे बोल तो मैं किचन में हर रोज़ बोलती हूँ। फिर लोग शेक्स-पीयर की इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं ? शेक्सपीयर ने तो हमारी किचन की भाषा में नाटक लिखे हैं।"

यह कहना कठिन था कि अलवीरा ने लन्दन की उस बुढ़िया का ताल-मेल दादी के साथ कैसे मिलाया।

अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान की तरफ़ से बच्चों की किलकारियाँ उभर रही थीं, जिन पर सागर और रूपम् की आवाज़ें तैरती आ रही थीं।

नीलकण्ठ बोला, "पाथुरिया गली इन आवाज़ों को कहाँ तक याद रखेगी ? इस पाथुरिया गली से उठकर न जाने किस युग में कौन-कौन

पाथुरिया पुरातन सार्थवाहों के साथ ताम्रलिप्ती बन्दरगाह से पूर्वी सागर के रास्ते बोरोबदर जा पहुंचे थे, जहाँ की मूर्तियों में उनके संस्कार आज भी बोल रहे हैं। आदमी चला जाता है। उसकी याद बनी रहती है।"

दादी ने पुकारा, "रूपम् ! ओ रूपम् !"

जागरी और नीलकण्ठ की ओर देखकर दादी बोली, "नीलकण्ठ बेटा, तुम्हारे बाबा कहा करते थे, स्वर्ग के देवता भी इस देश में जन्म लेने की लालसा रखते हैं।"

जागरी ने हँसकर कहा, "स्वर्ग के देवता स्वर्ग में ही रहें तो अच्छा है। यहाँ बेकारों की गिनती पहले ही कुछ कम नहीं है। अभी उस दिन एक यात्री ने कथा सुनायी। स्वर्ग में भगवान् से कहा गया, यहाँ भी जनतन्त्र चलायेंगे..."

"तो भगवान् ने क्या जवाब दिया ?" गुरुचरण चुप न रह सका।

"भगवान् ने हाँ कर दी।" जागरी कहता चला गया, "झट आम चुनाव कराने पड़े। देवता अलग-अलग दलों में बँट गए। भगवान् स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए। सरकार पुराने देवताओं ने ही बनायी। बेचारे भगवान् की ज़मानत भी जब्त हो गई। मन्त्री बनना तो दूर, वे संसद के सदस्य भी न बन पाए। बोल श्री एक सौ आठ गाँजा भगवान् की जय !"

नीलकण्ठ ने प्रसंग बदलकर कहा, "जब मूर्तिकार मूर्ति गढ़ता है, वह मूर्ति का ब्रह्मा होता है। जब वह संसार से चला जाता है, उसकी मूर्ति उसकी कथा कहने को शेष रह जाती है।"

"और भी जो कहना है कह लो, "अलबीरा ने बलपूर्वक कहा, "पर मैं रूपम् को मूर्तिकार नहीं बनने दूँगी। वह तो लन्दन पढ़ने जायेगा।"

दादी ने फिर पुकारा, "रूपम् ! ओ रूपम् !"

रूपम् दौड़ता हुआ आया और दादी की टाँगों से लिपट गया। बोला, "सागर मुझे छोड़ता ही नहीं था, दादी ! अब कहता है, तू अकेला क्यों भाग आया था, अश्वत्थामा से ?"

"और क्या कहता है ?" दादी ने साँझ के गुलाबी प्रकाश में कहा।

"कहता है—तुम यहीं रहना। छुट्टियों के बाद यहीं स्कूल में भरती हो जाना।"

"तुमने क्या कहा ?"

"मैंने कहा, दादी से पूछ लूँगा।"

दादी बोली, "रूपम् बेटा, तू अब धौली में ही रहना मेरे पास। मैं तुझे नहीं जाने दूँगी।" और फिर नीलकण्ठ को सम्बोधित करते हुए उसने कहा, "नीलकण्ठ बेटा, या तो रूपम् को यहाँ छोड़ जाना या मुझे भी कटक ले जाना।"

सोना बोली, "हम तुम्हें पाथुरिया गली से कहीं नहीं जाने देंगे, दादी !"

"लन्दन की वह बुढ़िया, जिसने कहा था कि शेक्सपीयर ने अपना 'हेमलेट' किचन की भाषा में लिखा है, किसी भी शर्त पर लन्दन छोड़ने को तैयार नहीं थी।" अलवीरा ने गम्भीर होकर कहा

"अपनी गली-जैसी कोई चीज़ नहीं," सोना ने मानो नृत्य-मुद्रा में रंग भरते हुए कहा, "यही बात शायद उर्वशी को वापस स्वर्ग ले गई थी।"

सहसा जागरी ने चिल्लाकर कहा, "लो कोइली आ गई, दादी !"

दादी ने कहा, "क्यों मजाक करते हो, बेटा ?"

इतने में किसी ने आकर दादी के पैरों पर नरम-नरम हाथ रख दिए।

अलवीरा ने कहा, "कलकत्ते से कब चली थी, कोइली ?"

कोइली कुछ न बोली। सब समझ गए कि उसके संस्कार उसे कलकत्ते से वापस ले आए। नीलकण्ठ ने कहा, "कोइली, मैं तुम्हें घर लौट आने पर बधाई देता हूँ ! एक कवयित्री से लोग उच्च आचार की आशा रखते हैं।"

कोइली सिर झुकाए खड़ी रही। दादी उसके सिर पर हाथ फेरते हुए धरती पर बैठ गई। दोनों हाथ धरती पर टेककर दादी ने कहा, "धरती माता को मेरे सौ-सौ प्रणाम, जो मेरी कोइली को सन्मार्ग पर लौटा लाई। मुझे यही आशा थी। वैद्यजी से हरिपद ने यही बात कही थी कि

उसके घर के द्वार कोइली के लिए खुले रहेंगे।"

नीलकण्ठ ने कहा, "सब ठीक हो जायेगा, दादी ! तुम घबराओ नहीं। हरिपद से मेरी भी बात हो चुकी है। सुबह का भूला शाम को घर आ गया। कोइली दोबारा ऐसी भूल नहीं करेगी।"

दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर बैठी रही। वह बोली, "मैं धरती का कम्पन सुन रही हूँ। धरती प्रसन्न है।"

अलबीरा ने कोइली के गले में बाँहें डालकर कहा, "अन्नदा बाबू से मुझे यही आशा थी। उन्होंने मुझे अपने पत्र में लिखा था कि वे तुझे समझा रहे हैं और शीघ्र ही तुझे वापस आने के लिए राज़ी कर लेंगे।"

दादी लाठी टेककर खड़ी हो गई। उसने कहा, "अब भगवान् मुझे पाथुरिया गली से ले जाएँ। अब मैं और नहीं जीना चाहती।"

"रूपम् ! ओ रूपम् !" दादी ने पुकारा। रूपम् दौड़ता हुआ आकर दादी की टाँगों से लिपट गया।

पाथुरिया गली में अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान के पीछे से सोने के थाल-जैसा चाँद मुस्करा रहा था।

अलवीरा मुस्कराकर बोली, "कोइली पाथुरिया गली का चाँद देखने चली आई। मैं बहुत खुश हूँ।"

दादी हड़बड़ाकर बोली, "नीलकण्ठ बेटा, तुम्हारे बाबा आ रहे हैं, लाठी टेकते हुए। तुम्हारे बाबा यहीं घूमते रहते हैं। जहाँ भी छेनी की ठक-ठक होती है, वहीं बैठकर वे छेनी की धार लगाने लगते हैं। नये शिष्यों का हाथ पकड़कर छेनी चलाना सिखाते हैं। पाथुरिया गली में छेनी की ठक-ठक कथा के बीज बोती आई है। आँखों पर ऐनक, हाथ में वही लाठी। तुम्हारे बाबा तो तुझे भी कथा सुनाने बैठ जाते हैं…"

दादी ने पीछे मुड़कर देखा। रूपम् नज़र न आया। उसे अपने ऊपर झुँझलाहट हुई। उसे पता न चल सका कि रूपम् कहाँ गया।

भीतर से ठक-ठक की आवाज़ आ रही थी।

अलवीरा ने नीलकण्ठ से कहा, "कहीं रूपम् कोई मूर्ति तो खराब नहीं

कर रहा है ?"

नीलकण्ठ ने कहा, "वह तो सागर के साथ बाहर खेलने चला गया ।"

बच्चों की किलकारियाँ नये संस्कारों को कोमल मांसल विश्वास दे रही थीं । और जैसे चाँद बाबा चतुर्मुख की मूर्तिशाला को प्रणाम कर रहा हो ।

दादी लाठी टेकती हुई मूर्तिशाला के बरामदे में चली गई ।

खिड़की से यह देखकर वह भौंचक्की-सी रह गई कि रूपम् आराम से बाबा की चौकी पर बैठा उन्हीं की छेनी-हथौड़ी, उन्हीं की अधूरी मूर्ति पर चला रहा है ।

दादी चुपके से नीचे उतर आई, और लाठी टेकते हुए मूर्तिशाला के द्वार की ओर चल पड़ी, जहाँ नीलकण्ठ और अलवीरा के पास जागरी और गुरुचरण खड़े न जाने किस बात पर हँस रहे थे ।

सोना और नागमती में अलग नोक-झोंक हो रही थी ।

दादी उनके पास आकर बोली, "नीलकण्ठ बेटा, इधर आओ सब । तुम्हें दिखाऊँ, रूपम् क्या कर रहा है ?"

वे सब दादी के साथ दबे पाँव आकर बरामदे में खड़े हो गए ।

वे एकटक देखते रहे । बिलकुल बाबा की तरह बैठा था, रूपम् ! घुटने टेककर । और उन्हीं की तरह छेनी चला रहा था ।

सहसा दादी के मुँह से निकला, "अधूरी मूर्ति का ब्रह्मा आ गया ।"